[वर्ष ४ ; खंड १] पौष, ३०२ तुलसी-संवत [संख्या ६ ; पूर्ण संख्या ४२

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ७॥) छमाही मूल्य ४)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ मे छपकर प्रकाशित

मस्तिष्क ठंढा रखे
बाल भी सुंदर बनावे
जवाकुसुम तैल
६८६
मे० के० सेन ऐंड कंपनी लिमिटेड—२९ कोलूटोला, कलकत्ता।
BARMAN ADVT. AGENCY, CALCUTTA

नवीन हिंदुस्तानी १० इंची डबल साइड

प्रत्येक का मूल्य ३॥) **"हिज़ मास्टर्स वाइस" रिकार्ड** Rs 3/8/- each.

माहिरान फन मौसी की — आलातरीन गानेवाले

रिकार्ड	गाना		
P. 7032. मिस दुलारी	आज दिलवर को गले से लगायँगे	...	दादरा
	फिर धड़का है दिलेज़ार खुदा ख़ैर करे	...	ग़ज़ल
P. 7033. खुरशीद जान	मुझसे नाराज़ हो बे सबब क्यों	...	,,
	वह भड़की इश्क़ की आतिश कि दोनों घर जला डाले		,,
P. 7034. अनवर	सोते हो क्या बेख़बर उठकर हो हुशियार		चौ० जम्ना
	राजा को आचन गए	...	चौबोला मोरध्वज
P. 7035. भाई छैला	मेरे ख़्वाजा अजब हैरान हूँ मैं	भाग १	पीलू
	,, ,,	भाग २	,,
P. 7036. आग़ा फ़ैज़	इक़रार से ऊँ हूँ कभी इंकार से ऊँ हूँ	... ...	पीलू
	अगर बैठे जिगर पर ऐ सनम ये तीर होते हैं	... ...	,,
P. 7037. पं० नत्थूलाल	राम[illegible]-अयोध्याकांड-राम और सीता का संवाद	भाग १ ...	चौपाई
	[illegible] ,, ,, ,,	भाग २ ...	,,
P. 7038. पियारू क़व्वाल	है [illegible] फ़ना जो हदफ़े तीरे नज़र है	... ...	ग़ज़ल क़व्वाली
	वाइज़ बड़ा मज़ा हो अगर यूँ न अज़ाब हो	... ...	,,
P. 7039. मास्टर राहत	फिरता है नज़र में रुख़े ज़ेबए महम्मद	... ...	नात
	नगहत बदो आलम ज़े रूए मुहम्मद	... ...	,,
P. 7040. भाई वलायत	दर्द मंदे हिज्र हूँ मेरी दवा पर्दे में हो	... ...	भैरवी
	फ़ना बग़ैर बक़ा का पता नहीं मिलता	... ...	पहाड़ी
P. 7041. पं० वासुदेव	कब तलक बैठे रहोगे कृष्णजी रूठे हुए	... ...	भजन
	रात दिन जपती रहो माला पती के नाम की	... ...	,,

सिंधी रिकार्ड

रिकार्ड	गाना		
P. 7042. गुलाम हुसेन	बाग़े उल्फ़त जो मज़ो यारबिन दें दो रहो	... ...	पहाड़ी
	याद गरी यार जी में रात गुज़ारी थई वन्झे	... ...	तिलंग

नोट — यह बिलकुल नवीन भरे हुए उम्दा रिकार्ड तैयार हैं। जल्दी अपने पासवाले हमारे बाज़ाब्ता डीलर के पास जाकर सुनें और पसंद करें। बड़ी फ़ेहरिस्त नीचे-लिखे पते से मँगावें।

दी ग्रामोफ़ोन कंपनी लिमिटेड, पोस्टबॉक्स नं० ४८, कलकत्ता (शाख) बंबई
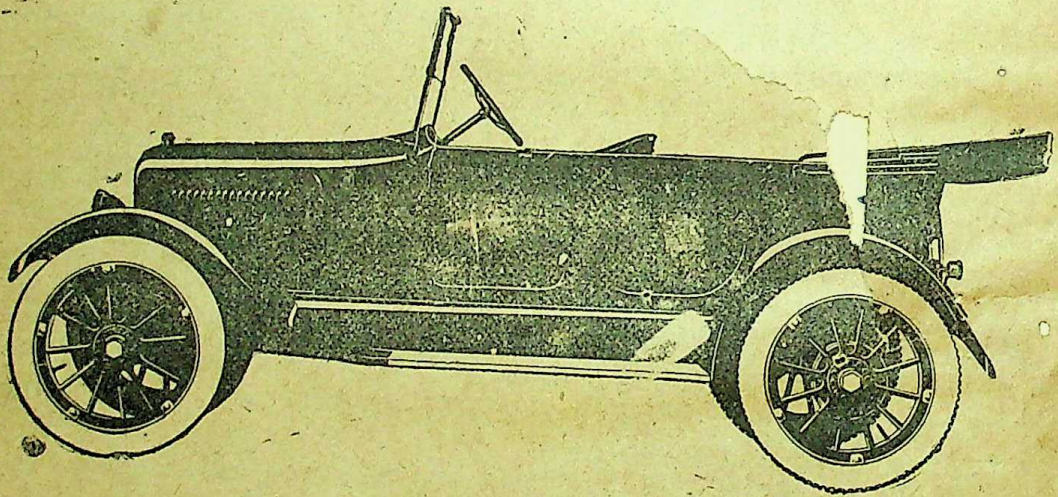
५१२

हमारे लिखने के विरुद्ध हो तो वसूली से २४ घंटे के अंदर वापिस कर दें

१९२९ का नया उपहार

एक पंथ पाँच काज
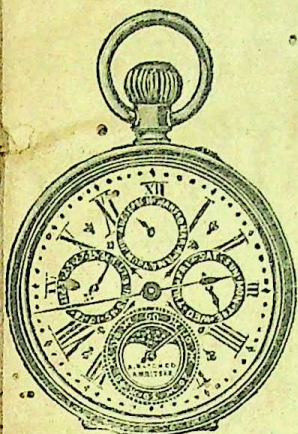
अद्भुत कैलंडर क्लॉक—मेज़ पर रक्खें या दीवार के साथ लटकाएँ। फ़ैंसी शेप के निहायत सुंदर बने हैं। मशीन बढ़िया व मज़बूत, चाबी २४ घंटा। इसमें यह ख़ास गुण है कि टाइम के सिवाय साल, दिन और तारीख़ भी साफ़-साफ़ बताती है और गर्मी की हरारत का दर्जा भी ठीक ठीक दिखाती है। इतने गुणों के होते हुए भी मूल्य केवल १०) गारंटी ६ वर्ष। शीघ्र मँगावें। नहीं तो समाप्त हो जाने पर पछताना होगा। तीन लेने से एक मुफ़्त इनाम।

कैलंडर पाकेट वाच—यह घंटा, मिनट, सेकंड, दिन, तारीख, साल इत्यादि के सिवाय चाँद का घटाव-बढ़ाव भी ठीक-ठीक बताती है। निहायत सुंदर शेप बढ़िया मशीन। चाबी २४ घंटा। गारंटी १० वर्ष। मूल्य १६), १७), १८) तीन लेने से एक मुफ़्त।

New Novelty **बिजली** Superior Quality

बिजली के सेफ़्टी पिन और सुंदर रंगीन फूल—इनको श्रीमान कोट पर और श्रीमतियाँ साड़ी व बालों में धारण करती हैं। बिना रोशनी के भी सुंदरता की शोभा को दुगना करते हैं लेकिन ज़रा-सा बटन दबा दो, फिर क्या बात है। अनजान समझेगा कि पिन में सच्चे हीरे जड़े हैं, जो रोशनी कर रहे हैं। फूल ख़रीदें या पिन, दाम एक ही है। मय पूरा सामान २॥), ३॥), ४), ५)

बिजली के बटन—कमीज़ में लगाकर बटन व रोशनी दोनों का काम लें। सच्चे हीरों की शान से चमकते और इशारे से जलते-बुझते हैं। फ़ी सेट ६), ५), ४)

बिजली के सुनहरे बुंदे—जो गुण बिजली के बटनों में है, वही इनमें भी है; दाम पूरा सेट ५), ६), ७)

बिजली के ब्रेकेट—अद्भुत दीवारगीर दाम ३॥), ५)

बिजली के स्टैंड—मेज़ के सुंदर शमादान ५), ६), ७)

हैंडलैंप—सर्च लाइट जैसी रोशनी ७), १०)
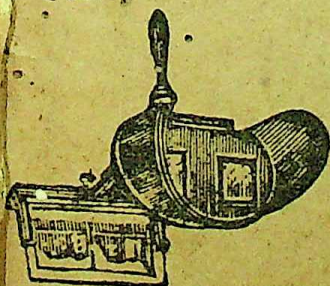
साइकिललैंप-हैंडलैंप की-सी तेज़ रोशनी ५॥), ७॥)

बिजली की कलगी—बच्चों की टोपी में लगाकर इसकी शोभा देखिए। मूल्य ४), ४॥), ५)

पाकेटलैंप—२॥), ३), ४) तिरंगी रोशनी ३), ४), ५)

स्पेअर बैट्री—१), ॥।), ॥) बल्ब ॥), ।)

हैंड कार्पेट मेकिंग मशीन—इस मशीन से स्त्रियाँ व कन्याएँ ग़लीचे, आसन इत्यादि घर की सजावट का सामान बड़ी सुगमता से और थोड़ी लागत से तैयार कर लेती हैं। रेशमी, ऊनी आदि बहुमूल्य कपड़े जब फट जाते हैं तो फेंक दिए जाते हैं लेकिन यदि यह मशीन घर में हो तो उनमें से छोटे-छोटे साफ़-साफ़ टुकड़े निकालकर काम आ सकते हैं। दाम केवल ४)
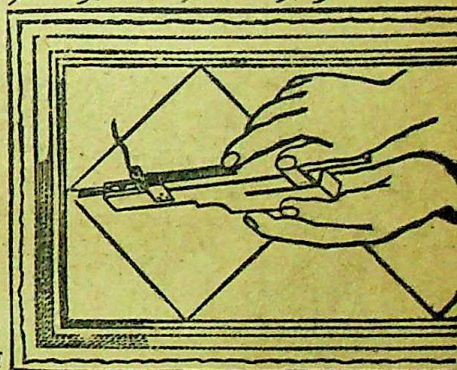
अद्भुत सैरबीन या पाकेट बायस्कोप—इसमें लेन्स बहुत बढ़िया और साफ़ लगे हैं। जिससे हरएक नज़र का मनुष्य फ़ोटो के दृश्य को साफ़-साफ़ देख सकता है मानो वह स्वयं देशांतर में पहुँचा हुआ सचमुच प्रकृति की सैर कर रहा है। दुनिया-भर की बिल्डिंगों, प्राकृतिक दृश्यों, लेडियों इत्यादि के सौंदर्य-पूर्ण व हाफ़ नेकिड (नग्न) फ़ोटो के एक दर्जन चित्र साथ मिलेंगे। मूल्य बढ़िया ५), ४), ३॥), अलग फ़ोटो २) व २॥) दर्जन। छोटी सैरबीन ४० फ़ोटो सहित मूल्य १॥।) उपर्युक्त दृश्योंवाली सचित्र सुनहरी अँगूठी या चंदन के होल्डर फ़ी ॥।), दर्जन ७)

पता—जी० सी० आहूजा ऐंड संस, नं० १३, कटरा घनईयाँ, अमृतसर।

सुंदर बढ़िया मज़बूत व सच्चा टाइम देनेवाली घड़ियाँ इन दामों पर अन्यत्र न मिलेंगी

अनेक प्रशंसापत्र प्राप्त] Our Motto Honesty and Cheapness. [आज़मायश की शर्त
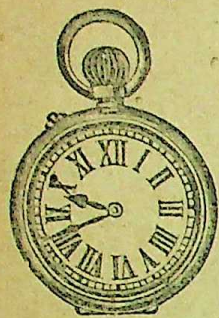
रेल्वे रेगुलेटर लीवर वाच — गारंटी १२ वर्ष। यदि थोड़े दामों में बढ़िया घड़ी ख़रीदना चाहें तो इसको इन रिआयती दामों पर ख़रीदने का सुअवसर मत चूकें। निकिल चाँदी का केस, सुंदर शेप, साइज़ सुडौल, पक्के डायल पर रेल्वे रेगुलेटर आदि छपा हुआ और एंजिन का स्टांप निहायत शोभायमान दिखाता है। देखने में पूरे २५) की मालूम देती और टाइम में सेकंड का भी फ़र्क़ नहीं। किसी भी सवारी में बिगड़ने का ज़रा भय नहीं। चाबी ३० घंटा। इन्हीं गुणों के कारण रेल, तार, डाक आदि कुल सर्कारी महकमों में इसी को पसंद किया जाता है। सबके लाभार्थ मूल्य केवल ६) व सेकंड काँटेवाली ६॥) कर दिया है। साधारण क्वालिटी ५) सेकंडवाली ५॥), इसी मुक़ाबले की बढ़िया फ़ुल जूल पाकेट वाच २०), १५), १२॥)
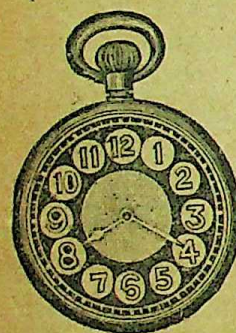
नई ईजाद की अद्भुत घड़ी — इस घड़ी की मशीन ऐसी बनाई गई है कि जो छत पर से गिरकर भी टूटती या बिगड़ती नहीं और टाइम की सचाई में भी अद्वितीय साबित हुई है। शेप सुंदर, साइज़ सुडौल, सेकंड-काँटा भी है और रेडियम डायल, मिट्टी-गर्द के बचाव और शीशे की रक्षार्थ प्रोटेक्टर लगाकर भेजी जाती है। गा० १२ वर्ष। दाम ७॥), बिना रेडियम ६॥)

हर घड़ी के साथ सुंदर चेन, तस्मा या चूड़ी मुफ़्त और ३ लेने से चौथी मुफ़्त।

८ दिन की चाबी की असली घड़ी, गारंटी २५ वर्ष, दाम ११) १०॥) दूसरे दर्जे की बढ़िया घड़ी ६) चाँदी की १८) बंद केस चाँदी की २१) कलाई व जेब की १२॥) चाँदी की २०॥)

ज़िम्मेदारी का गारंटी-फ़ार्म हस्ताक्षर-सहित हर घड़ी के साथ भेजा जाता है।

सीप केस की बढ़िया रिस्टवाच — इसकी चमक चाँदी को भी मात करती है जो कभी भी मैली न होगी। मशीन पक्की टाइम पूरा चाबी २४ घंटे गा० ८ वर्ष दाम केवल ७॥), ६॥), १२॥)

फ़ुल जूल पाकेट लीवर वाच गा० १२ व० १७) व १५), चाँदी की २०), १८) रोल्ड गोल्ड २५), रास्कोप वाच चाबी २६ घं० गा० ८ व० ४॥), ५॥),

मनमोहन इंगलिश रिस्टवाच — देखने में सुंदर, समय की सच्ची, मशीन की मज़बूत, चाँदी-सी उज्ज्वल, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सबके मन को लुभानेवाली। रेडियम डायल की (अँधेरे में भी वक़्त बतानेवाली) एकदम भारी स्टाक आ जाने के कारण केवल ८॥) में दी जायगी। मुक़ाबला करने से पता चलेगा कि यह दूसरी जगह इन दामों में कदापि न मिलेगी। यही घड़ी लीवर फ़ुल जूलवाली १५); यही बिना रेडियम लेने से फ़ी घड़ी २) कम और ख़ालिस चाँदी की लेने से २) तथा सुनहरी लेने से १) फ़ी घड़ी अधिक लगेंगे। तस्मा या चूड़ी मुफ़्त मिलेगी। गा० १४ वर्ष।

हंटिंग पाकेट वाच — यह सोने व चाँदी को मात करनेवाली सुनहरी व रुपहली निहायत शानदार बेल-बूटेवाले बंद केस की घड़ियाँ देखने में १००) की मालूम होती हैं। बहुत मज़बूत और टाइम भी सच्चा देती हैं। गा० १० साल। दाम मय सुंदर चेन ६) १०) व ११) चाँदी की २५) रोल्ड गोल्ड ३०)

न्यू जर्मन बी टाइमपीस जो सुंदरता व टाइम की सचाई में १०) के टाइमपीस को मात करती है, क़ी० २॥) बढ़िया ४) ६) अलार्म टाइमपीस ४॥) व ६॥), दो घंटी का ७॥), १५ मिनट की घंटी का १२॥)

कैलेंडर वाच — यह घंटा, मिनट, सेकिंड दिन, मास और चंद्रमा का घटाव-बढ़ाव सब एकसाथ दर्शाती है— घड़ी क्या है, आयु-भर का पाकेट पंचांग है। मूल्य १६), १७), १८) गारंटी १० वर्ष।

सुंदर शृंगार वाच

यह घड़ी सोने के कंकण को मात करती और सुंदरता की शोभा को दोबाला करती है। इसके होते हुए कलाई में दूसरे ज़ेवर की आवश्यकता नहीं है। मशीन पक्की और टाइम की सच्ची है। मज़ा यह कि कलाई चाहे कितनी मोटी या पतली हो, सब पर फ़िट आती है। सिवा स्त्रियों के पुरुष भी पहनते हैं। दाम कुल ८॥); नक़ली जवाहरात जड़ी हुई १०) यही अलग चूड़ी की सादी मगर बढ़िया ७), ६) रोल्ड गोल्ड १३), १५), १८), २०) सोने की ३३), ३८)

कलाई व जेब दोनों काम देनेवाली ८॥) चाँदी की १०)

पता—प्रोप्राइटर दी आहूजा वाच कंपनी, M. E कटरा, घनईयाँ, अमृतसर।

अवश्य पढ़ें !] बीसवीं शताब्दी के जर्मन चमत्कार [लाभ उठावें !!

गृह-शृंगार हैंड ऐंब्रायड्री मशीन [नक़ल से सावधान]
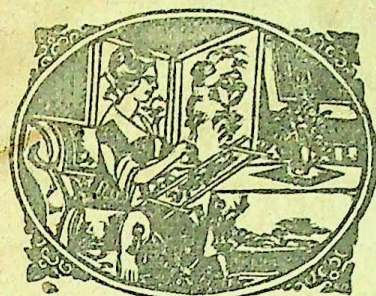
इस छोटी मशीन से स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध, लड़के, लड़कियाँ रूमाल, साड़ियाँ, टोपियाँ, शाल, कालीन, स्लीपर और परदे आदि तथा दूसरे हर प्रकार के कपड़े पर चिकन और कशीदाकारी का और भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे फूल, पत्ते, बेल, बूटे, अक्षर और मोर, तोते, मृग, हस्ती, सिंह आदि बनाने का घंटों का काम बड़ी उत्तमता और सुगमता के साथ मिनटों में कर लेती है। क़ीमत रिआयती २॥); दर्जा दोम ४); सचित्र विधि-पुस्तक मुफ़्त। हर रंग के रेशमी लच्छे फ़ी दर्जन १।=)
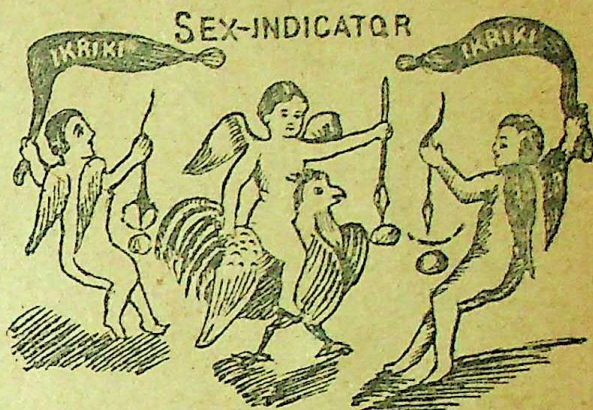
पाकेट-दूरबीन—थिएटर, घोड़दौड़, मैच आदि तथा मीलों के प्राकृतिक दृश्य, जंगल, पहाड़ आदि देखने के लिये मज़ेदार तोहफ़ा है। मूल्य २॥), बढ़िया ५), ७), १०), १२), बीस मील की २०), २५), ३०)

थर्मामीटर-आधे मिनट में ज्वर नापनेवाला बढ़िया क्वालिटी १॥)

हाई क्लास सेफ़्टी रेज़र—मय १२ ब्लेड्स २॥)

हर प्रकार के मज़बूत, बढ़िया, सुरीले व सस्ते हारमोनियम लेना चाहें, तो हमारे साथ पत्र-व्यवहार करके ख़रीदने का फ़ैसला करें।

देखो, नर है या मादा ?

यह छोटा-सा यंत्र जर्मनीवालों ने अभी साइंस के उसूलों पर तैयार किया है। इसके ज़रिए से आप आध मिनट में देख सकते हैं कि गर्भ में कन्या है या पुत्र ? गाय, भैंस, घोड़ी आदि के गर्भ में बच्चा नर है या मादा ? अंडे में मुर्ग़ी है या मुर्ग़ा ? आज़मायश के लिये किसी मित्र के अंग पर लगाइए या किसी फ़ोटो-चित्र पर लगाने से बतावेगा नर का है, या मादा का ? और अनेकों चमत्कार इससे प्रकट होते हैं। क़ीमत २), ३ के ५), ६ के ६), १२ के १६॥); सचित्र सेवन-विधि साथ देंगे।

आला-ए-सेहत जेबी—केवल सूँघने-मात्र से ख़ाँसी, सिरदर्द, नज़ला, ज़ुकाम, दिमाग़ी कमज़ोरी इत्यादि अनेकों रोगों को नाश करता है। एक-आध मिनट के रोज़ाना सेवन से किसी प्रकार के रोग होने का भय नहीं रहता। मूल्य २), दर्जन १५)

गुप्त देवी हैंड केमरा—तसवीर न खिंचे, तो वापसी की शर्त। यदि आप किसी निकम्मे केमरे को ख़रीदकर धोका खा चुके हों, तो एक बार हमारे इस केमरे को भी ख़रीदकर आज़मावें। इसमें फ़ोकस मिलाने की

ज़रूरत नहीं। जिस समय चाहें उड़ते जानवरों, दौड़ती रेलगाड़ी, लड़ती फ़ौज, बहते दरिया, चलते-फिरते तथा बैठे हुए स्त्री-पुरुषों और हर प्रकार के सीन की फ़ोटो क्षण-भर में बड़ी आसानी से खींच सकते हैं। सलाईड और शीशा मुफ़्त मिलेगा। दाम $2\frac{1}{2}\times1\frac{3}{4}$ का २॥) व $2\frac{1}{2}\times2\frac{1}{2}$ का ७), डाक-ख़र्च अलग। सचित्र सेवन-विधि साथ देंगे, जिससे अनजान-से-अनजान भी सहज ही सीख जाता है। ३ लेने से डाक-ख़र्च माफ़।

बिजली की असली शक्तिशाली अष्टधाती अँगूठी—इस अँगूठी में बिजली का ऐसा प्रभाव भरा गया है कि बाएँ हाथ में पहनने से असाध्य रोग भी साध्य हो जाते हैं और छूत की बीमारियाँ भी दूर भागने लगती हैं। आध्यात्मिक शक्ति को उत्पन्न करती है और किसी प्रकार के भय को पास फटकने नहीं देती। कठिन-से-कठिन कार्य भी इसके पहनने से सुगम होने लगते हैं। अँगूठी क्या है, जादू है। ज्वर, अंतरा, प्रदर-रोग, प्रमेह, स्वप्न-दोष और बवासीर आदि रोगों में तो विशेषतया लाभ पहुँचाती है। दाम रिआयती केवल ।॥), ३ के २), दर्जन के ६); डा० ख० १ से १२ तक ।=)

 पता—जी० सी० आहूजा ऐंड संस, नं० १३, M. कटरा घनईयाँ, अमृतसर।

इसे पढ़ने से लाखों का भला होगा

महाशय, न तो मैं डाक्टर हूँ, न हकीम, न वैद्य। मैं तो केवल एक मामूली व्यक्ति हूँ। मैं अभाग्यवश एक महाकठिन भयंकर रोग में फँस गया था अर्थात् मुझको बाल्यावस्था में कुसंगति के कारण एक बुरी आदत पड़ गई, जिसके द्वारा मैंने अपनी जवानी पर अपने हाथों कुल्हाड़ी चलानी आरंभ कर दी, तथा उसी रोग के कारण मेरे शरीर में कई और प्रकार के रोग अर्थात् शिरशूल, नेत्र संबंधी विकार, सुस्ती, निर्बलता आदि रोगों ने भी अपना डेरा डाल दिया। चेहरे का रंग फीका पड़ता देख मेरे इष्ट मित्रों ने पूछा; परंतु मैं उनको क्या उत्तर दे सकता था? मगर अंदरूनी तौर से इश्तिहारी हकीमों की औषधियाँ मँगवाकर सेवन करता रहा; परंतु सब निष्फल हुईं। अंत में तंग आकर हरिद्वार चला गया और अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि यदि कोई संत संन्यासी मिल गए तो बच जाऊँगा अन्यथा प्राण त्याग दूँगा। एक दिन जब कि मैं ऋषीकेश के एक रमणीय जंगल में जा रहा था, तो एक साधु महात्मा के दर्शन हुए। उनको नमस्कार कर पास बैठ गया। बातों-बातों में महात्माजी के पूछने पर अपना वृत्तांत कहा, जिसको सुनकर उन्होंने कहा—बेटा घबराओ नहीं। यह दवाएँ जो कि जंगली बूटियों के इकट्ठा करने से बनेंगी, लिखे देता हूँ, इनको ४० दिन सेवन करो। मैंने उनकी आज्ञा पालन की, जिससे फिर मैं दुनिया में रहने योग्य हो गया। ५०६)

महाशय, मैं ईश्वर को साक्षी जानते हुए कहता हूँ

कि मुझे इन औषधियों से बिलकुल आराम हो गया। मेरा चेहरा गुलाब के फूल की भाँति चमकने लगा; और मेरी सारी निर्बलता नाश हो गई। फिर मैंने अपने शहर में वह दवाई कई ऐसे रोगियों को खिलाई, जिससे वह भी बलवान् और संतान उत्पन्न करने योग्य हो गए। इसलिये मुझे हर समय यही ख़याल रहने लगा कि किसी तरह इन अत्युत्तम अद्वितीय गुणकारी औषधियों से जनता को लाभ पहुँचाऊँ। इसी कारण मैं बज़रिए इश्तिहार ख़बर देता हूँ कि मैं आपको सर्व प्रकार की तकलीफ़ों को दूर करने के लिये तैयार हूँ। मैं दवाई को केवल लागत पर ही देता हूँ। विशेषकर यह औषधि तमाशबीनों के लिये अद्वितीय तोहफ़ा है। इनके सेवन करने से निर्बलता के अतिरिक्त पुरुषों के और भी विशेष रोगों का नाश करने में जादू का असर रखती है। १३ दिन की दवाई १ बंडल जो मामूली कमज़ोरी के लिये काफ़ी है २) रु०। मामूली जिरयान, स्वप्नदोष और कमज़ोरी के लिये एक शीशी तेल और दो बंडल खाने की दवाई काफ़ी है। क़ीमत शीशी तेल २)। पुराने मरीज़ों के लिये एक शीशी तेल और तीन बंडल खाने की दवा इस्तेमाल करना चाहिए। इनको बूढ़े और जवान हर मौसम में इस्तेमाल कर सकते हैं, और बाद इस्तेमाल मुकम्मिल बक्स। दूसरी बार कभी यह रोग पैदा नहीं होता। मुकम्मिल बक्स जिसमें तीन बक्स खाने की दवाई और एक शीशी लगाने का तेल है, क़ीमत ७)। डा० म० अलग। तरकीब साथ। दवाई आतशक की २) और दवाई सूज़ाक वा कुर्राह [?] २)

मिलने का पता—प्रोप्राईटर बर्मन औषधालय M.L. पारसन रोड नं० (३), लाहौर।

RAMLAL,

DENTIST,

27, Aminabad Park, LUCKNOW.

ALL SORTS OF DENTAL WORKS ARE EXECUTED PROMPTLY - AT - REASONABLE RATES.

४१८

एक रुपए में १००१ चीज़ें

तेज़ नीली रोशनाई की टिकियाँ १४४, वायोलेट रोशनाई की टिकियाँ १४४, १ सुंदर टिकाऊ फ़ाउंटेन पेन मय ड्रॉपर के, १ क्लिप और १ बक्स, ६ निबें, १ सीटी, १५ जीनतान, पटापट-वाद्य १, सुंदर नेकलेस ६००, बटन १२, सुइयाँ ५०, पिन २५ और सेफ़्टी पिन १

ये सभी लाभदायक चीज़ें नाम-मात्र के मूल्य १) पर दी जाती हैं। डाक-ख़र्च ।≈) अलग।

टीचर्स ऐंड कंपनी— ५२२

पो० बा० ७८०८, बऊबाज़ार, कलकत्ता।

स्याही की टिकियाँ—प्रत्येक टिकिया से अच्छी चमकदार स्याही की दो दावात तैयार होती हैं। ब्लू-ब्लैक ५०० टिकियों का मूल्य ॥≈), डाक-ख़र्च ।≈); लाल, बैंजनी, हरी स्याही की ५०० टिकियों का मूल्य १।), डाक-ख़र्च ।≈)

राबिनसन ऐंड को०,
पो० इंटाली (म) कलकत्ता।

जादू की चकित करनेवाली खेलें !

ये वह खेल हैं जिन्हें देखकर राजे, महाराजे, रईस और अमीर चकित होकर खेलाड़ी को रुपयों से भरपूर कर देते हैं। आप ये खेल खुद करना चाहते हैं, तो शीघ्र मँगाइए। इनके भेद भी अन्य मनुष्य नहीं जान सकते। जिस सभा में आप ये खेल दिखावेंगे, देखनेवाले अति प्रसन्न होंगे। खेल करने की विधि छपी हुई हरएक खेल के साथ भेजेंगे, जिसे पढ़कर आप उसी समय सीख जायँगे। २) से कम क़ीमत का कोई पार्सल न भेजेंगे। १०) के खेल मँगाने से डाक-व्यय माफ़। सब मँगाने से १०) सै० कमीशन।

खेल-नं० १—यह एक रूमाल है, जिसमें सबके सामने ग्लास रखकर झटका देने से गुम हो जाता है, फिर उसी से निकलता है। मूल्य १॥)

खेल-नं० ३—यह ताश का नहला है। सबको दिखला दो। उसी वक्त नहले का पंजा बन जायगा। मूल्य ॥)

खेल-नं० ४—यह दियासलाई की डिब्बी भरी हुई है। तमाशा करनेवाला इसको भरी हुई दिखलाकर उसी वक्त ख़ाली दिखाता है। मूल्य ॥)

खेल-नं० ५—यह पत्ते तीन हालतें बदलते हैं। पहली बार हाथ फेरने से इक्के, दूसरी बार ख़ाली और तीसरी बार पंजे बन जायँगे। मूल्य ॥)

खेल-नं० ६—सबको अट्ठे दिखाकर हाथ फेरो, सफ़ेद पत्ते हो जायँगे। फिर हाथ फेरने से अट्ठे बन जायँगे। मूल्य ॥)

खेल-नं० ७—यह एक टीन की मेज़ है। एक ताश का पत्ता जलाकर या फाड़कर उसमें रख दें, फ़ौरन् साबुत हो जायगा। मूल्य १॥)

खेल-नं० ८—ताश जिसके अलग पत्ते दिखाकर फेंटना शुरू करें, तो खींचने से बाजे की सूरत बन जायगी। मूल्य ॥)

खेल-नं० १०—खेल करनेवाला ताश के पत्ते दिखाएगा जो हाथ फेरने से छोटे हो जायँगे। फिर चौथाई, फिर आठवाँ हिस्सा, फिर बिलकुल ग़ायब हो जायँगे। २)

खेल-नं० ११—यह ताश के एक रंग की बेगम है, जो सबके सामने दूसरे रंग की बेगम बन जाती है। मूल्य ॥)

खेल-नं० १२—यह सुर्मेदानी की शक्ल की डिबिया है। इसके भीतर एक गोला है। गोले को हुक्म करने से कभी उसके भीतर से और कभी ग़ायब कभी बरामद हो जाता है। मूल्य १॥)

खेल-नं० १३—यह एक डिबिया है, जिसमें सबके सामने पूरे ताश का बंडल डाल दो और फिर खोलने से ताश की जगह रूमाल निकलेंगे। मूल्य १॥)

खेल-नं० १४—ये दो जुड़े हुए रेशमी रूमाल हैं, जो एक रंग के हैं। इसके ऊपर हाथ फेरें, फ़ौरन् रंग बदल जायँगे। मू० ५)

खेल-नं० १५—समूचा ताश हाथ में है। दूसरा आदमी कोई पत्ता देख ले। फिर वह पत्ता ताश में रख दे और जो कोई आदमी उसी पत्ते को आवाज़ दे, पत्ता फ़ौरन् कूदकर बाहर निकल आवेगा। बहुत ही उत्तम खेल है। मू० १)

खेल-नं० १६—यह एक बैल है, जो एक क्षण में कई शकलें बदलता है। मू० १॥)

खेल-नं० १७—यह लकड़ी का गेंद धागे में पिरोया हुआ है। एक सिरा पैर में और एक हाथ में पकड़कर गेंद को जितना चलने को हुक्म दोगे, चलेगा। मूल्य ॥)

खेल-नं० १८—इस मज़ाकिया खेल को सबके सामने फूँक मारो चक्कर चलेगा दूसरे आदमी को कहो फूँक मारे बजाय चक्कर चलने के उसका मुँह काला हो जावेगा। मू० १॥)

खेल-नं० १९—यह एक कपड़े की थैली है। इसमें जो डालो, फ़ौरन् ग़ायब फिर हुक्म करने से इसी से निकलेगा। मू० ॥)

खेल-नं० २०—किसी की टोपी लेकर कहो कि तुम्हारी टोपी फटी है। वह कहेगा नहीं, फ़ौरन् उँगली मारकर फाड़ दो। मगर जिस वक्त उँगली निकालोगे, टोपी साबुत होगी। मू० ॥)

खेल-नं० २१—किसी की टोपी लेकर सबको ख़ाली दिखाओ। फिर बहुत लंबी बेलें निकालते जाओ। मूल्य १॥)

खेल-नं० २२—किसी की टोपी लेकर ख़ाली दिखा दो। फिर उसे सामने रखकर उसके अंदर से मनीबेग निकालकर ढेर लगा दो। देखनेवाले हैरान होंगे। मूल्य १॥)

खेल-नं० २३—यह आश्चर्यकारक बक्स है। सबको ख़ाली दिखाकर झटका दो, तो इसमें से रूमाल, काग़ज़ आदि निकलेंगे और देखनेवाले दंग हो जायँगे। मूल्य २)

खेल-नं० २४—पहले काग़ज़ के छोटे-छोटे टुकड़े मुँह में डाले जाते हैं, जो साबुत होकर लंबे बन जाते हैं। मूल्य ॥)

खेल-नं० २५—आप किसी की टोपी लें और सबको ख़ाली दिखाकर बहुत लंबा हंटर टोपी के अंदर से निकालकर दिखाएँ, लोग हैरान होंगे। मूल्य ॥)

खेल-नं० २६—पहले लोगों को कुछ पत्ते दिखाकर और ताश में रखकर ग्लास में रक्खे जाते हैं, जो आवाज़ देने से बारी-बारी ख़ुद-ब-ख़ुद निकल आते हैं। मूल्य २॥)

खेल-नं० २७—एक पत्ता सबके सामने बोतल के मुँह पर खड़ा कर दिया जाता है। फिर उस पर ग्लास रखते हैं; जिसे देखकर लोग दंग होते हैं। मूल्य १)

खेल-नं० २८—ताश फेंटते-फेंटते खेल करनेवाला ताश में से फूल या मेवा निकालता है। अत्यंत अद्भुत खेल है। मूल्य १॥)

खेल-नं० २९—सबके सामने रुपया हाथ पर नाचने लगता है जिसे देखकर लोग दंग होते हैं। मूल्य १)

खेल-नं० ३०—इस खेल का नाम फ़्री पान है। इसमें अंडे रखकर और ऊपर से बंद करके ढकना उठा लो, तो अंडों की जगह कबूतर बरामद होंगे। मूल्य २)

खेल-नं० ३१—तमाशा करनेवाला एक ख़ाली टोपी दिखाकर रूमाल निकालता है फिर उसमें से एक-एक करके बहुत-से अंडे निकालकर टोपी में डालता है। लोग टोपी में अंडे समझते हैं, दिखाने से ख़ाली टोपी पाकर हैरान होते हैं। मूल्य ३॥)

खेल-नं० ३२—सबको दिखाकर पूरा ताश का बंडल रखकर खड़े हो। जिस-जिस पत्ते को आवाज़ दोगे, वह कूदकर बाहर आ जावेगा। मूल्य ३॥)

खेल-नं० ३३—यह राइज़िंग कार्ड है। किसी के देखे हुए पत्ते ताश में से कूदकर दूसरे हाथ की तरफ़ दौड़ते हैं। मू० २)

खेल-नं० ३४—१ रूमाल में ४० लपेटकर दूसरे के हाथ में दें रूमाल ख़ाली होगा १)

खेल-नं० ३५—ये लकड़ी के गोले हैं पहले १ गोला होता है फिर उसी के दो बनते हैं फिर ३ व ४ बनकर फिर घटते-घटते १ रह जाता है। मूल्य २)

पता—मैनेजर दी अमरीकन मैजिक हाउस, (M.L.), पारसन रोड, लाहौर।

नक़ालों से सावधान !

५०००) रु० की चीज़ ५) रु० में

मेस्मिरेज़म विद्या सीखकर धन व यश कमाइए

मेस्मिरेज़म के साधनों द्वारा आप पृथ्वी में गड़े धन व चोरी गई चीज़ का क्षण-मात्र में पता लगा सकते हैं । इसी विद्या के द्वारा, मुक़द्दमों का परिणाम जान लेना, मृत पुरुषों की आत्माओं को बुलाकर वार्तालाप करना, बिछुड़े हुए स्नेही का पता लगा लेना, पीड़ा से रोते हुए रोगी को तत्काल भला-चंगा कर देना, केवल दृष्टि-मात्र से ही स्त्री-पुरुष आदि सब जीवों को मोहित एवं वशीकरण करके मनमाना काम कर लेना आदि आश्चर्य-प्रद शक्तियाँ आ जाती हैं । हमने स्वयं इसी विद्या के ज़रिए लाखों रुपए प्राप्त किए और इसके अजीब-अजीब करिश्मे दिखाकर बड़ी-बड़ी सभाओं को चकित कर दिया । हमारी 'मेस्मिरेज़म विद्या'-नामक पुस्तक मँगाकर आप भी घर-बैठे इस अद्भुत विद्या को सीखकर धन व यश कमाइए । मूल्य सिर्फ़ ५), डाक-महसूल-सहित तीन का मूल्य मय डाक-महसूल १३)

हज़ारों प्रशंसापत्रों में से दो

(१) बाबू सीतारामजी बी० ए०, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता से लिखते हैं—"मैंने आपकी 'मेस्मिरेज़म विद्या' पुस्तक के ज़रिए मेस्मिरेज़म का ख़ासा अभ्यास कर लिया है । मुझे मेरे घर में धन गड़े होने का मेरी माता द्वारा दिलाया हुआ बहुत दिनों का संदेह था । आज मैंने पवित्रता के साथ बैठकर अपने पितामह की आत्मा का आह्वान किया और गड़े धन का प्रश्न किया । उत्तर मिला—'ईंधनवाली कोठरी में दो गज़ गहरा गड़ा है ।' आत्मा का विसर्जन करके मैं स्वयं खुदाई में जुट गया । ठीक दो गज़ की गहराई पर दो कलशे निकले । दोनों पर एक-एक सर्प बैठा हुआ था । एक कलशे में सोने-चाँदी के ज़ेवर तथा दूसरे में गिन्नियाँ व रुपए थे । आपकी पुस्तक 'यथानामा तथागुणः' सिद्ध हुई ।"

(२) पं० रामप्रसादजी रईस व ज़मींदार, धामनगाँव (धारा) हाट इंदौर से लिखते हैं—"हमने आपकी 'मेस्मिरेज़म विद्या' पुस्तक को पढ़कर अभी थोड़ा-सा ही अभ्यास किया था कि हमारे घर में चोरी हो गई । ५०००) का माल चोरी गया । एक आदमी पर संदेह हुआ । उसने पुलिस के धमकाने पर भी न बताया । आख़िर हमने उसे हाथ के 'पासों' द्वारा सुलाया और फिर पूछा, सब भेद खोल दिया । असल चोर दूसरे गाँव के बताए । उस गाँव में पुलिस ने जाकर तलाशी ली, तो बात सच निकली । ३०००) का माल तो वहीं मिल गया । उस दिन से गाँव के सब लोग मेरी बड़ी इज़्ज़त करते हैं और मुझे सिद्ध समझते हैं । मैं अब आपके दर्शनार्थ आना चाहता हूँ ।"

१०८ **मैनेजर, मेस्मिरेज़म हाउस, नं० ८, अलीगढ़ ।**

स्त्री, बालक, जवान, बूढ़े सब पीजिए, जाड़ा, गर्मी, बरसात की परवाह न कीजिए!

आदमी के शरीर में वीर्य ही अमृत-समान गुणदायक और आनंद बढ़ानेवाली शक्ति है। वीर्य परिपुष्ट रहने से ही सांसारिक सर्वकार्य सिद्ध होते हैं। इसलिये हमने बहुत परिश्रम करके, अनेक रोगों पर हज़ारों बार आज़माइश करके, सच्चा गुण दिखानेवाला "वीर्यसिंधु" तैयार किया है। अगर आप ज़िंदगी का सच्चा सुख लूटना चाहते हैं, कमज़ोरी और नामर्दी को लात मारकर अपने मुखमंडल की मनोहर कांति बढ़ाना चाहते हैं, तो वैद्यक-शास्त्र का असली रत्न हमारा "वीर्य-सिंधु" ज़रूर सेवन कीजिए। इसके सेवन से तीसरे ही दिन सच्चा चमत्कार दिखलाई देने लग जाता है और शरीर-भर की बीमारियों को जड़ से काटकर गिरा देता है—जैसे धातु-संबंधी हर तरह का विकार आँखों में अँधेरा छाना, शिर में चक्कर आना, शरीर में दर्द होना, भूख न लगना, अन्न न पचना, पतला पाखाना होना, दस्त की क़ब्जियत रहना, शरीर का खून खराब होकर खाज-खुजली-फोड़ा-फुंसी होना, शरीर का रक्त सूखकर चेहरा पीला और फीका पड़ना, स्त्रियों के लाल, पीला, सफ़ेद पानी निकलना, स्त्री-धर्म ठीक समय पर न होना, खाँसी, श्वास इत्यादि बीमारियों को दूर करके दुबले-पतले कमज़ोर शरीर को मोटा-ताज़ा बलिष्ठ करके, नामर्द को मर्द बनाने में "वीर्यसिंधु" से बढ़कर दूसरी दवा नहीं है। आदमी चाहे कितना ही कमज़ोर बूढ़ा तथा नामर्द क्यों न हो, "वीर्यसिंधु" के प्रताप से जीवन का आनंद लूट सकता है। "वीर्यसिंधु" से क्षुधा (भूख) इतनी बढ़ जाती है कि एक तोला खानेवाला मनुष्य कुछ ही दिनों में भर-पेट अन्न खाने लग जाता है। चाहे जिस रोग से शरीर दुर्बल और कमज़ोर क्यों न हो, "वीर्यसिंधु" से तीसरे ही दिन बदन में जोश और फुर्ती मालूम होगी। ज़रूर आज़माइए। सच्ची और असली दवा है। क़ीमत २॥)

कामदेव-तिला—चाहे किसी क़िस्म की बदमाशी करने से इंद्रिय में किसी प्रकार का दोष क्यों न हो गया हो, इस तिले के इस्तेमाल से पहले ही दिन ज़रूर शक्ति या फ़ायदा मालूम होगा और शीघ्र ही सब शिकायतें दूर हो जायँगी। क़ीमत २॥)

☞ आप इस ज़िंदगी में संसार-सुख का आनंद लूटना चाहते हैं, तो ज़रूर "वीर्यसिंधु" और "कामदेव-तिला" को आज़माइए। सच्ची और असली दवा है। दवा मँगाते समय अपना पता साफ़-साफ़ लिखना चाहिए।

२०१ **पं० सीताराम वैद्य, नं० ५३, बाँसतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता।**

हिंदी के सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक और गल्प-लेखक श्रीयुत प्रेमचंदजी की रचनाएँ

रंगभूमि

(हिंदी-उपन्यासों का चक्रचूड़ामणि)

प्रेमचंदजी के अन्य उपन्यासों की तरह इस वृहत् उपन्यास में भी वर्तमान काल की सामाजिक दशाओं का स्वाभाविक चित्र अंकित किया गया है । सेवा-सदन में पतित जीवन की मीमांसा है। प्रेमाश्रम में सभ्य स्वार्थपरता की विवेचना की गई है। इस रंगभूमि में लेखक ने यह दिखलाने की सफल चेष्टा की है कि हम संसार में सुखी क्योंकर रह सकते हैं। इसमें राजनीतिक और औद्योगिक प्रसंगों का प्राधान्य है। कर्मक्षेत्र भी बहुत विस्तृत हो गया है। अब तक लेखक के किसी उपन्यास में ईसाइयों ने पदार्पण नहीं किया था। इसमें भारतवर्ष के तीनों प्रधान धर्मों का समावेश है। लेखक ने समाज के किसी अंग को नहीं छोड़ा—ग्रामीण भी हैं, रईस भी हैं, पूँजीपति भी हैं, देश-सेवक भी हैं । सभी अपनी-अपनी महत्त्वाकांक्षा के साथ रंगभूमि में आते और अपना-अपना खेल दिखाकर चले जाते हैं। विद्वान्, धनी, अनुभवी, सभी श्रेणी के खिलाड़ी आपके सामने आते हैं, और सभी सुखी जीवन का रहस्य न जानने के कारण असफल होते हैं, सब ठोकर खाते और गिर पड़ते हैं, कर्तव्य से विचलित हो जाते हैं। केवल एक दीन, हीन, निर्बल, अंधा, दरिद्र प्राणी अंत तक आपको अपनी लीलाओं से मुग्ध करता रहता है, और जब उसकी लीला समाप्त हो जाती है और वह रंगशाला से जाता है, तो आप अपने मन में कह उठते हैं, यही सफल जीवन है, यही जीवन्मुक्त पुरुष है, यही निपुण खिलाड़ी है, यही जानता है कि जीवन-लीला का रहस्य क्या है। इसकी भाषा सरल और सरस है। वर्णन-शैली अत्यंत हृदयग्राहिणी, भावव्यंजना बड़ी मर्मस्पर्शिनी, और चरित्र-चित्रण, जो उपन्यास का सर्वप्रधान अंग माना गया है, इतनी सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है कि पढ़कर लेखक के मनोवैज्ञानिक अनुभव का क़ायल होना पड़ता है। यह बृहदाकार उपन्यास दो भाग में है। दोनों भागों का मूल्य ५), सुंदर रेशमी जिल्दों का ६)

प्रेम-प्रसून

(कहानियाँ)

गल्पों और कहानियों के स्वनामधन्य, सिद्ध-हस्त, सुलेखक श्रीयुत प्रेमचंदजी की स्वाभाविकता-पूर्ण, सरस रचनाओं पर कौन लट्टू नहीं है! यह पुस्तक उन्हीं की चुनी हुई उत्तमोत्तम कहानियों का संग्रह है। यदि आप पुस्तक पढ़कर अपना अस्तित्व भूल जाने का आनंद लूटना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। मूल्य १।), सुनहरी रेशमी जिल्द १।।)

कर्बला

(नाटक)

हज़रत मुहम्मद के नवासे हज़रत हुसेन की शहादत का करुणाजनक ऐतिहासिक वृत्तांत । मुसलिम-इतिहास की सबसे हृदय-विदारक, युगांतरकारी और महत्त्व-पूर्ण घटना। वीर, भक्ति और करुण रस का अनुपम दृश्य। पढ़ते वक्त कलेजा हाथों से थाम लेना पड़ता है। इतनी बड़ी ट्रेजेडी कदाचित् समस्त संसार में न हुई होगी। हुसेन का अपने समस्त परिवार को और अपने प्राण को भी इसलाम की मर्यादा पर बलिदान कर देना, कर्बला के निर्जन और निर्जीव मैदान में प्यास से तड़प-तड़पकर मरना दिल हिला देनेवाले दृश्य हैं। मूल्य १।।), सुनहरी रेशमी जिल्द २)

आज़ाद-कथा

(उर्दू का फ़िसाना-आज़ाद)

'फ़िसाना-आज़ाद' का नाम पाठकों ने अवश्य ही सुना होगा। यह उर्दू की हास्य-रस-प्रधान अद्वितीय पुस्तक है । इसके लेखक हैं स्वर्गीय पंडित रतनाथ दर लखनवी । भाषा की रोचकता और प्रसाद-गुण की प्रधानता के कारण इस वृहद् ग्रंथ के उर्दू में अब तक ६-१० संस्करण हो चुके हैं। उर्दू में लगभग ४,००० पृष्ठों का ग्रंथ है, और मूल्य भी १६) से अधिक। इसी ग्रंथ-सागर को मथकर प्रेमचंदजी ने जो रत्न निकाले हैं, वह 'आज़ाद-कथा' के नाम से दो भागों में प्रकाशित किए जा रहे हैं। पुस्तक पढ़ने और आनंद उठाने-योग्य है । छ सौ पृष्ठ के इस बड़े पोथे का मूल्य २॥), सुंदर रेशमी जिल्द ३)

हिंदी की सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

भाव-पूर्ण, ओजमय, विभिन्न रस-रंजित

साहित्य का आस्वादन करना

कौन

नहीं चाहता ?

तो आइए,

हिंदी-साहित्य-महारथी

पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी

के

ऐसे ही तीन ग्रंथ-रत्न पढ़िए

और

लाभ उठाइए—

अद्भुत आलाप

इसमें ऐसे-ऐसे विचित्र कौतूहल-पूर्ण निबंध हैं कि शुरू करने पर बिना समाप्त किए रहा नहीं जाता। इसकी लेखन-शैली का तो कहना ही क्या! विषय इतना रोचक है कि उपदेश के साथ-साथ ख़ासा मनोरंजन भी होता है। लखनऊ-विश्वविद्यालय में, बी० ए० में, यह पुस्तक पढ़ाई जाती है। मूल्य १), सुनहरी रेशमी जिल्द का १।)

सुकवि-संकीर्तन

सुप्रसिद्ध सुकवियों, कविता-प्रेमियों और कवि-कोविदों के आश्रयदाताओं की सचित्र जीवनियाँ। बार-बार पढ़ने पर भी जी नहीं ऊब सकता। इस पुस्तक के पढ़ने में एक उपदेशप्रद उपन्यास का-सा आनंद आता है। कहीं साहित्यिक लालित्य है, कहीं अगाध पांडित्य है, कहीं काव्य की कमनीय छटा है। बिलकुल नायाब चीज़ है। इसमें दस चित्र भी हैं। एक बार अवश्य देखिए। मूल्य १।), सजिल्द १॥)

महिला-मोद

इस पुस्तक में द्विवेदीजी के उन सारगर्भित लेखों का संग्रह है, जो समय-समय पर आपने स्त्री-जाति के हितार्थ लिखे हैं। लेख सभी पढ़ने-योग्य, उपयोगी और मार्के के हैं। स्त्रियों को तो यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिए। कवर पर सुंदर रंगीन चित्र। मूल्य ।)

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

बाल-विनोद-वाटिका की बढ़िया पुस्तकें

बाल-नीति-कथा

यह पुस्तक हिंदू-विश्वविद्यालय काशी के प्रिंसिपल और प्रो-वाइस चांसलर श्री ए० बी० ध्रुव एम्० ए०, एल्-एल्० बी० की लिखी हुई है। आपने महाराजा साहब बड़ोदा के आज्ञानुसार बड़ोदा-राज्य की पाठशालाओं के लिये इस ग्रंथ की, गुजराती में, रचना की थी। पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०, अध्यापक लखनऊ-युनिवर्सिटी ने इसका हिंदी-अनुवाद किया है। पुस्तक कितनी उच्च कोटि की है और बालकों के चरित्र पर इसका कितना असर पड़ेगा, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि विद्वान् लेखक इस विषय के प्रकांड पंडित हैं, और चरित्र-गठन-संबंधी पुस्तकें लिखने के लिये आपसे बड़ा अधिकारी इस देश में मुश्किल से मिलेगा। आपने इस पुस्तक में सभी प्रधान मतों और देशों से उत्तम कथाएँ चुनकर संग्रह की हैं और हर-एक कथा से निकलनेवाले उपदेश भी नोट-रूप में दे दिए हैं, जिससे यह पुस्तक पाठ्य-क्रम में रक्खे जाने के लिये बहुत ही उपयुक्त हो गई है। भाषा सरल और मुहावरेदार है। 'चरित्र' मानव-जीवन का रत्न और हर-एक प्रकार की उन्नति का मूल-मंत्र है। इस दृष्टि से यह पुस्तक अमूल्य है। पुस्तक दो भाग में है। प्रत्येक भाग का मूल्य १।) है। दोनों का मूल्य २॥)

नटखट पाँड़े

[लेखक—पं० भूपनारायण दीक्षित बी०ए०, एल्०टी०]

हास्य-रस की अनूठी पुस्तक। एक नटखट लड़के की अद्भुत कथा उसी के मुँह से सुनिए। पुस्तक १४ रंगीन और हाफ़टोन चित्रों से अलंकृत है। भाषा सरल और मुहावरेदार, कथा अत्यंत मनोरंजक और चित्र अति सुंदर हैं। मूल्य १॥), सजिल्द २)

खेल-पचीसी

लेखक श्रीप्रतिपालसिंहजी। इस पुस्तक में उन २५ खेलों का संग्रह किया गया है, जो लड़के साधारणतः खेलते हैं या यों कहिए कि खेलते थे। अँगरेज़ी शिक्षा के फैलने से हमारे पुराने खेल दिन-दिन मिटते चले जा रहे हैं। शायद कुछ दिनों के बाद उन खेलों के जानकार भी न रहेंगे। हमने यहाँ ऐसे खेलों के खेलने की विधि बताई है, जिन्हें लड़के शौक़ से खेल सकें, और खेल के साथ उनकी कुछ कसरत भी हो जाय। सचित्र। मूल्य ।=)

गधे की कहानी

[लेखक—पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०]

गधे ने अपनी कथा बड़े रोचक और मनोरंजक ढंग से कही है। बड़ी ही सरल और सीधी भाषा में मानो समाज की आलोचना की गई है। देखने ही योग्य है। अनेक सुंदर चित्र। मूल्य ॥), रेशमी जिल्द १)

भारत के सपूत

लेखक, मुं० ज़हूरबख़्श। इस पुस्तक में भारत के महान् पुरुषों के जीवन से संबंध रखनेवाली ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह किया गया है। भाषा अत्यंत सरल है, और कहानियाँ बहुत ही रोचक। लड़के इसे बड़े शौक़ से पढ़ेंगे। पुस्तक में ६ चित्र भी दिए गए हैं। मूल्य ॥=)

सुघड़ चमेली

लेखक, पंडित रामजीदास भार्गव। हिंदी एवं उर्दू-संसार भली भाँति जानता है कि आप बालोपयोगी पुस्तकें लिखने में कैसे पटु हैं। आप इस पुस्तक को अपनी लड़कियों को पढ़ाइए और फिर देखिए कि वे चमेली की तरह कैसी सुघड़ हो जाती हैं! सचित्र। मूल्य =) मात्र।

कीड़े-मकोड़े

लेखक, पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०। चींटी, बर्रे, टिड्डी आदि कीड़े-मकोड़ों का ऐसा सुंदर और रोचक वर्णन किया गया है कि पढ़ने में क़िस्से-कहानी से कहीं अधिक आनंद आता है। बालकों के योग्य इस विषय की अब तक कोई पुस्तक न थी। यह पुस्तक भी ६ हाफ़टोन और एक रंगीन चित्र से अलंकृत है। मूल्य ॥=), सजिल्द १=)

सब प्रकार की हिंदी-पुस्तकें मिलने का पता—

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, ३६-३० अमीनाबाद-पा[र्क]

गंगा-पुस्तकमाला के उत्तमोत्तम नाटक

बुद्ध-चरित्र

अनुवादक, 'माधुरी'-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न। पांडेयजी ने बँगला के अनेक विख्यात नाटकों का ऐसा भाव-पूर्ण अनुवाद किया है कि वे बिलकुल मौलिक-से मालूम होते हैं। समाज, भाव, भाषा, शैली, सब पर हिंदीपन और स्वाभाविकता की छाप लगी हुई है। राजसी सुख-भोग की लालसाओं को लात मारकर, अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये संसार के सारे सुखों को तिलांजलि देकर महात्मा बुद्ध-देव किस प्रकार आत्मचिंतन और वैराग्य में लीन हुए थे, इसका स्पष्ट चित्र देखना हो, तो यह नाटक अवश्य पढ़िए। ज्ञान, शिक्षा, उपदेश, पवित्रता और शांति तथा प्रेम से पूर्ण ऐसा मनोरंजक नाटक आपने शायद ही अब तक पढ़ा हो। ४-५ चित्रों-सहित पुस्तक का मूल्य ॥), सुंदर रेशमी जिल्द का मूल्य १)

दुर्गावती

लेखक, लखनऊ युनिवर्सिटी के हिंदी लेक्चरार पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०। यह गद्य-पद्यमय वीर-रस-पूर्ण, ऐतिहासिक मौलिक नाटक बड़ा ही मनोरंजक, विनोद-पूर्ण, शिक्षाप्रद और भावमय है। कहीं वीरता के ओजस्वी वर्णन से आपका रोम-रोम फड़क उठेगा, और कहीं साहित्यिक विनोद से आप खिलखिला उठेंगे। पुस्तक बड़ी सजावट से छपी है। मूल्य १), रेशमी जिल्द १॥)

रावबहादुर

इसके लेखक मोलियर संसार-भर में, हास्य-रस की रचना में, अपना सानी नहीं रखते। इसमें ख़िताब की लालच में मर मिटनेवाले, उपाधि के लोभ में किसी भी उपद्रव से बाज़ न आनेवाले, स्वल्प शिक्षित पर सर्वज्ञता का दम भरनेवाले, मनचले मूर्ख—घर-फूँकबहादुर—का ख़ाका ख़ासा तौर से खींचा गया है। फ्रांस, महाराष्ट्र, अवध, आगरा आदि कई देशों की नोक-झोंक, फ़ैशन, चाल-चलन, ठाट-बाट और चालाकी का मज़ा उठाना हो, तो इस पुस्तक को आरंभ कीजिए, फिर क्या मजाल कि आप उसे ख़तम किए बिना छोड़ें। जिसने हँसने की क़सम खा ली हो, वह भी इसे पढ़कर खिलखिला उठेगा। बस, पुस्तक मँगाकर पढ़िए और रावबहादुर की कारगुज़ारी पर हँसिए। मोलियर का चित्र भी है। २०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल ॥), सुंदर रेशमी जिल्द १)

ईश्वरीय न्याय

लेखक, अध्यापक श्रीरामदास गौड़ एम्० ए०। यह व्यंग्य नाटक है। गौड़जी काशी-म्युनिसिपलिटी में शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। इस नाटक में आपने अत्यंत मार्मिक ढंग से दिखाया है कि अछूतों के उद्धार और राष्ट्रीय शिक्षा-सुधार में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, और अछूतों के प्रति बहुत प्रेम दिखानेवाली हिंदू-सभ्य-समाज अवसर पड़ने पर कैसा बग़लें झाँकने लगती है। मूल्य ॥)

वरमाला

लेखक, श्रीयुत गोविंदवल्लभ पंत। लेखक ने किस प्रकार घृणा को प्रेम में बदला है—भयावनी रात्रि में किस प्रकार वसंत-प्रभात की छटा दिखलाई है, यह देखने के योग्य है। वरमाला सार-अलंकार (Climax) के फूलों से गुँथी हुई है, मुरझाने का डर नहीं। बड़ी आसानी से रंगमच पर खेला जा सकता है। पात्रों की भरमार नहीं, सब मिलाकर केवल ५-६ पात्र हैं। गीतों में काव्य और संगीत का मिलन है। अंत में स्वर-लिपि भी दे दी गई है। छपाई-सफ़ाई सुंदर। तीन रंगीन और दो सादे चित्र भी हैं। मूल्य ।॥), सजिल्द १)

प्रायश्चित्त-प्रहसन

'माधुरी'-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न-लिखित। देशी होकर भी विदेशी चाल चलनेवालों का इसमें ख़ूब ही ख़ासा ख़ाका खींचा गया है। पढ़कर हँसते-हँसते पेट में बल पड़ने लगेंगे। बड़ा सभ्य हास्य-रस-पूर्ण प्रहसन है। मूल्य ।)

नाटक मिलने का पता—

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला के स्थायी ग्राहकों के लिये नियम

(१) स्थायी ग्राहक बनने की प्रवेश-फ़ीस सिर्फ़ ॥) है।

(२) पुस्तकें, प्रकाशित होते ही—१५ दिन पहले दाम आदि का "सूचना-पत्र" * भेज देने के बाद—स्थायी ग्राहकों को, २५) सैकड़ा कमीशन काटकर, वी० पी० द्वारा, भेज दी जाती हैं। ५-६ रुपए की ४-५ पुस्तकें एकसाथ भेजी जाती हैं, जिसमें डाक-ख़र्च में बचत रहे।

(३) जो पुस्तकें हमारी प्रकाशित अन्य मालाओं में निकलती हैं, उन पर भी स्थायी ग्राहकों को २५) सैकड़ा कमीशन दिया जाता है।

(४) स्थायी ग्राहक जिस पुस्तक को चाहें, लें; जिस पुस्तक को न चाहें, न लें; यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। वे चाहे जिस पुस्तक की, चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जब, ऊपर-लिखे कमीशन पर, मँगा सकते हैं।

(५) बाहर की—हिंदुस्थान-भर की—सब पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को ~) रुपया कमीशन पर मिलती हैं।

(६) स्थायी ग्राहक ऑर्डर देते समय अपना ग्राहक-नंबर अवश्य नोट कर दिया करें, जिसमें उनके ऑर्डर पर कमीशन काटने में भूल न हो।

(७) स्थायी ग्राहक की भूल से वी० पी० लौट आने पर डाक-ख़र्च उनको ही देना पड़ता है, और दो बार वी० पी० लौट आने पर स्थायी ग्राहकों की सूची से उनका नाम काट दिया जाता है।

---

* नई पुस्तकों में से यदि कोई या सब न लेनी हों, अथवा और कोई पुस्तकें मँगानी हों, तो 'सूचना-पत्र' मिलते ही हमें पत्र लिखना चाहिए, जिसमें इच्छानुसार काररवाई कर दी जा सके। १५ दिन के अंदर कोई सूचना न मिलने पर सब नई पुस्तकें वी० पी० द्वारा भेज दी जाती हैं।

आदेश-पत्र

प्रिय महाशय,

मैंने गंगा-पुस्तकमाला के नियम पढ़ लिए हैं। कृपया मेरा नाम उसके स्थायी ग्राहकों में लिख लीजिए, और निम्न-लिखित पुस्तकें वी० पी० भेजकर अनुगृहीत कीजिए। प्रवेश-फ़ीस के ॥) भी उसी में वसूल कर लीजिएगा। मैं अपने इष्ट-मित्रों को भी माला का ग्राहक बनाऊँगा।

भवदीय—

[हस्ताक्षर कीजिए]

मेरा पता—

....

....

....

पुस्तकों के नाम

१ ______	२ ______
३ ______	४ ______
५ ______	६ ______
७ ______	८ ______
९ ______	१० ______

[कृपया उपाधि-सहित अपना नाम और पूरा पता साफ़-साफ़ लिखिए]

हमारी पुस्तक-सूची

- अचलायतन ॥)
- अद्भुत आलाप १), १॥)
- अयोध्यासिंह उपाध्याय ≡)
- आज़ाद-कथा २॥), ३)
- आत्मार्पण १)
- इतिहास की कहानियाँ (सचित्र) ॥=)
- इँगलैंड का इतिहास (दो भाग) ३), ४)
- ईश्वरीय न्याय ॥)
- उद्यान (सचित्र) ॥।), १।)
- उषा (,,) ॥=)
- एशिया में प्रभात ॥), १)
- कमला-कुसुम (सचित्र) १)
- कर्बला १॥), २)
- कर्म-योग ॥)
- किसानों की कामधेनु ।=)
- कीड़े-मकोड़े (सचित्र) ॥≈)
- कृष्णकुमारी (,,) १), १॥)
- केशवचंद्र सेन १)
- ख़ाँजहाँ (सचित्र) १=), १।=)
- खिलवाड़ (,,) ।)
- खेल-पचीसी (,,) ।=)
- गधे की कहानी (,,) ॥), १।)
- चित्रशाला १॥), २।)
- ज्वाला ॥≈)
- जीवन का सद्व्यय १), १॥)
- दुर्गावती (सचित्र) १), १॥)
- देव और बिहारी १॥), २।)
- देवी द्रौपदी (सचित्र) ॥)
- देश-हितैषी श्रीकृष्ण =)
- द्विजेंद्रलाल राय (सचित्र) ≡)
- नंदन-निकुंज १), १॥)
- नटखट पाँड़े (सचित्र) १॥), २)
- नारी-उपदेश (,,) ॥)
- पराग (,,) ॥), १)
- पत्रांजलि (,,) ॥)
- पूर्ण-संग्रह १॥), २।)
- पूर्व-भारत (सचित्र) ॥=), १≈)
- प्रायश्चित्त-प्रहसन ।)
- प्रेम-गंगा (सचित्र) १), १॥)
- प्रेम-द्वादशी (,,) लगभग १)
- प्रेम-प्रसून (,,) १), १॥)
- बहता हुआ फूल (,,) २॥), ३)
- बाल-नीति-कथा (,,) (दो भाग) २॥), ३॥)
- बुद्ध-चरित्र (,,) ॥), १)
- भगिनी-भूषण =)
- भवभूति ॥=), १=)
- भारत की विदुषी नारियाँ (सचित्र) ॥)
- भारत के सपूत (सचित्र) ॥=)
- भारत-गीत ॥), १)
- भारतीय अर्थ-शास्त्र १॥), २)
- भूकंप (सचित्र) १)
- मनोविज्ञान ॥।), १।)
- महिला-मोद (सचित्र) ॥)
- मध्यम व्यायोग =)
- मूर्ख-मंडली ॥), १)
- मंजरी १)
- रंगभूमि (दो भाग) ५), ६)
- रावबहादुर (सचित्र) ॥।), १।)
- लक्ष्मी (,,) ॥=)
- लड़कियों का खेल (सचित्र) ॥)
- वनिता-विलास ।=)
- वरमाला (सचित्र) ॥।), १।)
- बंकिमचंद्र चटर्जी १)
- विजया (सचित्र) १॥), २)
- विश्व-साहित्य १॥), २)
- संक्षिप्त शरीर-विज्ञान (सचित्र) ॥=)
- संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा (,,) ॥=)
- सुकवि-संकीर्तन (सचित्र) १), १॥)
- सुघड़ चमेली (,,) =)
- हिंदी ॥=), १=)
- हिंदी-नवरत्न (सचित्र) ४॥), ५)
- Hindi in Thirty Days ॥)

[डाक-व्यय के लिये एक आना का टिकट भेजकर हमारा नया और बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए]

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

सिर्फ तीन महीने के लिये

७) क़ीमत में एक जेब-घड़ी मँगानेवाले को नीचे लिखे मुताबिक़ १० चीज़ें मुफ़्त भेजी जायँगी ।

(१) जर्मनी फ़ौंटेन-पेन
(२) एमीटेशन हीरे की अँगूठी
(३) सिगरेट जलाने की लाइट
(४) धूप का फ़ांस का चश्मा
(५) बिजली का जेबी लैंप
(६) सिगरेट-केस
(७) बायसकोप ४० तस्वीरवाला
(८) १ शीशी दाद का मलहम
(९) १ शीशी ख़ुशबूदार ओटो
(१०) १ शीशी बाल उड़ाने का तेल

पता—भाईलालजी पटेल (म)
५५।४, कैनिंग स्ट्रीट, कलकत्ता

धोखेबाज़ों से बचिए

संगीतप्रियो, हताश न हो । बाज़ारू घटिया माल ख़रीदकर अपना रुपया नष्ट न करो । भारत के आदि और सर्वश्रेष्ठ पापुलर-फ़्लूट को मँगवाइए । अगर हमारे हारमोनियम में असली पेरिस के रीड लगे हुए न मिलें, तो हम दाम वापस करने को तैयार हैं। सिंगल रीड २५), ३०), ३५); डबल रीड ४८), ५०), ५५); पेशगी १०) के साथ शीघ्र ऑर्डर दीजिए ।

पता:—पापुलर हारमोनियम कं०, ५५३
पोस्टबक्स नं० १२, (म) कलकत्ता

संगीत-समुच्चय

संगीतप्रेमियों के लिये अनुपम ग्रंथ । भारतकला परिषद् काशी द्वारा अभी प्रकाशित हुआ है । आठ राग-रागिनियों के ७२ गाने स्वर-लिपि और ताल-सहित इसमें संग्रह हैं। थोड़े-से परिश्रम से आप इन्हीं गानों को सीखकर उस्तादों की पंक्ति में आदर-सहित बैठ सकते हैं । सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) है । शीघ्रता करिए और आज ही ऑर्डर भेजकर पुस्तक मँगा लीजिए ।

भारतकला-परिषद्, काशी ।

क्या आप रोगी हैं ?

यदि हैं, तो अपने रोग का ब्योरेवार हाल लिख भेजिए । यहाँ से रोग की व्यवस्था और औषध-योजना मुफ़्त कर दी जाती है । आवश्यक होगा, तो "धन्वंतरि" मासिक पत्र में उसे प्रकट कर अन्य विद्वान् वैद्यों की सम्मति भी ले ली जाती है । विशेष जानने के लिये चिकित्सालय की नियमावली मँगा देखिए ।

पता—वैद्य बाँकेलाल गुप्त ५७२
श्रीधन्वंतरि-कार्यालय, विजयगढ़, अलीगढ़ ।

सीधी लाइन की सादी मुहर (केवल अक्षरों की दो लाइनें, २ इंच लंबी, और आधा इंच चौड़ी तक) छापने का सामान-सहित । मूल्य १) डा०-ख़॰ ।≤); बड़ी होने से दाम अधिक होगा । हिंदी, अँगरेज़ी, उर्दू, बँगला कोई भाषा हो । अंडाकार मुहर जैसा ऊपर नमूना है, २॥) मय सामान । डा०-ख़॰ एक मुहर ।≤), दो का ॥) और तीन का ॥≤) ; काम देखकर ख़ुश होंगे ।

पता—जी० सी० खत्री, रबर स्टांप मेकर,
५७६ बनारस सिटी ।

Note:

OUR REDUCED PRICE.

WORLD RENOWNED GERMAN
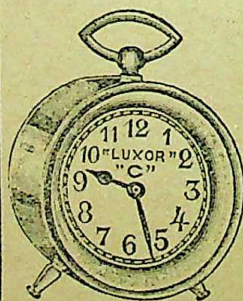
(REGD.) **'C' TIME PIECE**

Rs. 2-8

BOOK NOW

Sole Importers:

THE ENGLISH EMPORIUM,

P. B. 105. MADRAS.

हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर के दो नए ग्रंथ

५६. भारत के प्राचीन राजवंश

[राष्ट्रकूट (राठोड़ और गढ़वाल) राजाओं का संपूर्ण और सप्रमाण इतिहास]

लेखक, पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ, साहित्याचार्य, एम्० आर० ए० एस्० । इस ग्रंथ के दो भाग पहले प्रकाशित हो चुके हैं, जिनकी इतिहास के बड़े-बड़े देशी और विदेशी विद्वानों ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है और हिंदी में इतिहास के सर्वोत्तम ग्रंथ समझे जाने के कारण जिन पर लेखक को काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने २००) दो सौ रुपया पुरस्कार और राधाकृष्णदास-पदक भेट किया है । इस तीसरे भाग में राष्ट्रकूटों या राठोड़ों का शुरू से लेकर अब तक का मानाखेट (दक्षिण) के मूलवंश से लेकर लाट, सौंदति, हँथूड़ी, धनोप, जोधपुर, बीकानेर, कन्नौज, रतलाम, किशनगढ़, सैलाना, सीतामऊ, अमझरा, झाबुआ, ईडर, अहमदनगर तक के तमाम राजाओं का सिलसिलेवार इतिहास, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, फ़ारसी-तवारीख़ों, संस्कृत-ग्रंथों आदि के आधार से संकलित किया गया है । हिंदी में इस नियम का यही सबसे पहला ग्रंथ है । प्रत्येक पुस्तकालय और लायब्रेरी में तथा राजा-महाराजाओं और राजवंशी ठाकुरों के यहाँ इसकी एक-एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए। बहुत सुंदर छपा है । पृष्ठ-संख्या ५०० । मूल्य तीन रुपया । राज-संस्करण का चार रुपया ।

इस ग्रंथ के पहले भाग में क्षत्रप, हैहय (कलचुरि), परमार (पँवार), पाल, सेन और चौहान राजवंशों का इतिहास है । पृष्ठ-संख्या ३६० । कपड़े की मज़बूत जिल्द । मूल्य ३)

दूसरे भाग में शिशुनाग, नंद, मौर्य, ग्रीक, शुंग, कण्व, आंध्र, शक, पल्हव, कुशान, गुप्त, हूण, बैस, मौखरी, लिच्छवि, ठाकुरी आदि अनेक प्राचीन वंशों का और यशोधर्मा, विक्रमादित्य, कालिदास आदि विशिष्ट पुरुषों का इतिहास है । पृष्ठ-संख्या ४५० । मूल्य सादी का ३) और सजिल्द का ३।।)

इतिहास-प्रेमियों को तीसरे भाग के साथ ये दो भाग भी मँगा लेना चाहिए । स्थायी ग्राहकों को तीनों भाग पौनी क़ीमत में मिलेंगे ।

६०. रवींद्र-कथाकुंज

साहित्य-सम्राट् रवींद्र बाबू गल्पें और कहानियाँ लिखने में सिद्धहस्त हैं । अब तक वे सैकड़ों कहानियाँ लिख चुके हैं । उनमें से आठ बहुत ही सुंदर, सरस और मार्मिक कहानियाँ इस कुंज में संग्रह की गई हैं। जहाँ तक हम जानते हैं, अब तक ये कहानियाँ हिंदी में प्रकाशित नहीं हुईं । प्रत्येक कहानी एक-एक गद्य-काव्य का आनंद देती है । कहानियों के नाम —१ जय पराजय, २ पड़ोसिन, ३ राजटीका, ४ समाप्ति, ५ जासूस, ६ अतिथि, ७ दृष्टिदान, ८ अध्यापक । पृष्ठ-संख्या लगभग २०० ; मूल्य एक रुपया ।

नोट—हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर के स्थायी ग्राहकों को ये दोनों ग्रंथ जनवरी के पहले सप्ताह में वी० पी० से भेजे जायँगे । नीचे लिखे बाहर के महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ बिक्री के लिये आए हैं: —

१ पद्मचंद्रकोश (संस्कृत-हिंदी-कोश) निर्णयसागर-प्रेस का छपा हुआ । परिवर्द्धित संस्करण, मूल्य ७)

२ कौटिलीय अर्थशास्त्र —मूल संस्कृत और प्रो० उदयवीर शास्त्री सांख्य-योग-न्याय-वैशेषिक-तीर्थ, वेदांत-विशारद की दो संस्कृत टीकाओं के आधार से लिखी हुई सुस्पष्ट हिंदी-टीका । पृष्ठ-संख्या एक हज़ार से ऊपर, मूल्य ७) रु० ।

३ उषा (गद्य काव्य) मूल्य २), रामदुलारी (उपन्यास) मूल्य १) बड़ा सूचीपत्र मँगाइए ।

पता—मैनेजर, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग़, पो० गिरगाँव, बंबई ।

लेख-सूची

चित्र-सूची

(क) रंगीन

(ख) व्यंग्य

(ग) सादे

श्रीमती सरोजिनी नायडू

(चालीसवीं भारतीय राष्ट्रीय महासभा की सभानेत्री)

N. K. Press, Lucknow

माधुरी की पिछली संख्याएँ

माधुरी के प्रेमी पाठकों ने हमसे समय-समय पर पिछली संख्याएँ भेजने के लिये आग्रह किया है। पिछली संख्याओं के अभी कुछ सेट भी बाक़ी रह गए हैं। अतः ऐसी अवस्था में जिनके फ़ाइलों में निम्न-लिखित संख्याओं में जो संख्याएँ न हों, अभी मँगाकर अपना सेट पूरा कर लें। अन्यथा प्रतियाँ शेष न रहने पर हम देने से असमर्थ होंगे।

प्रथम वर्ष की संख्याएँ

फुटकर संख्याएँ

तीसरी (आश्विन की) संख्या		२)
छठी (पौष की)	,,	२)
आठवीं (फाल्गुन की	,,	२)
नवीं (चैत्र की)	,,	॥)
दसवीं (वैशाख की)	,,	॥।
ग्यारहवीं (ज्येष्ठ की)	,,	१)
बारहवीं (आषाढ़ की)	,,	१)

नोट—चारों संख्याएँ एकसाथ लेने से २); इनमें बड़े ही मनोरंजक लेख और मनोहर चित्र निकले हैं।

प्रथम वर्ष

सजिल्द सेट

इनकी जिल्दें मज़बूत और सुंदर कपड़े की बनी हैं जिन पर सुनहरे अक्षरों में माधुरी का नाम इत्यादि आवश्यक बातें लिखी हैं। सेट देखते ही हाथ में ले लेने को तबियत चटपटाने लगेगी। ये सेट क्या हैं, पुस्तकालयों और वाचनालयों की शोभा हैं। १० पुस्तकें और न रखकर एक सेट माधुरी का रक्खें, तो अधिक अच्छा होगा।

१ से ६ संख्याओं तक—२०) ; इन्हें प्रेमी पाठकों ने २४)-२४) प्रति सेट देकर ख़रीद लिया है।

७ से १२ संख्याओं तक—प्रति सेट मूल्य ६)

द्वितीय वर्ष की संख्याएँ

इस वर्ष की १२ संख्याओं में केवल प्रथम संख्या अप्राप्य है। बाक़ी संख्याओं की अधिक-से-अधिक ५० प्रतियाँ तक बाक़ी रह गई हैं। जिन प्रेमियों को जिस संख्या की आवश्यकता हो, लौटती डाक से लिखकर मँगा लें। मूल्य प्रत्येक संख्या का १)

द्वितीय वर्ष

इन संख्याओं के सुंदर जिल्ददार सेट भी मौजूद हैं। जिनमें प्रथम संख्या भी मौजूद है। ऐसे केवल प्रथम खंड के २३ और दूसरे के ४० सेट बाक़ी रह गए हैं। जो प्रेमी पाठक लेना चाहें, प्रत्येक के लिये ५) भेजकर शीघ्र मँगा लें। अन्यथा निकल जाने पर फिर न मिल सकेंगे।

तृतीय वर्ष की संख्याएँ

इस वर्ष की फुटकर संख्याओं में केवल पहली, तीसरी, चौथी, और सातवीं से बारहवीं तक सभी मिल सकती हैं। प्रत्येक का मूल्य ॥) जितनी या जिस संख्या की आवश्यकता हो, लौटती डाक से लिखकर मँगा लें।

तृतीय वर्ष

इनके सुंदर सेट भी लगभग ५० की संख्या में बाक़ी रह गए हैं। जो सज्जन चाहें ५) प्रति सेट के हिसाब से मँगवा सकते हैं। एकसाथ दोनों सेट लेने से ९) में ही दे दिए जायँगे। विलंब से आर्डर आने से, हम नहीं कह सकते कि दे सकेंगे।

नोटः—हमारे प्रत्येक सेट ऐसे मनोहर, और मज़बूत बँधे हैं कि बाज़ार में ३) देने पर भी नहीं बँध सकते। सुंदर कपड़ा और उसके ऊपर स्वर्णाक्षरों का काम सुंदरता को दोबाला करता है। किसी बढ़िया-से-बढ़िया लाइब्रेरी में भी रखने से माधुरी की शोभा श्रेष्ठतम रहेगी। अतः प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि अपने इच्छित अंक और सेट फ़ौरन् मँगवा लें।

निवेदक—मैनेजर माधुरी, लखनऊ

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ७॥),छ मास का ४) और प्रति संख्या का ॥।) है। वी०पी० से मँगाने में ≈) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनी-ऑर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य १०), छ महीने का ५॥) और प्रति संख्या का ॥।≈) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है, और प्रति मास शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को पत्रिका प्रकाशित हो जाती है। लेकिन ग्राहक बननेवाले चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो अगले महीने के शुक्ल-पक्ष की सप्तमी तक कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। लेकिन उक्त तिथि के बाद सूचना मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा, और उस संख्या को ग्राहक ॥।–) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ या मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाक-घर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १५ रोज़ पेशतर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंज़ूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए। हाँ, चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक ख़र्च प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, चित्र, समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

पं० दुलारेलाल भार्गव
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	... ...	३०) प्रति मास
½ ,, या १ ,, ,, ,,	... ...	१६) ,, ,,
¼ ,, या ½ ,, ,, ,,	... ...	१०) ,, ,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,, ,,	... ...	६) ,, ,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल-भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ४,००,००० पढ़े-लिखे, धनी-मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एवं प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०-५० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से अपेक्षाकृत कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो कीजिए।

मैनेजर माधुरी, लखनऊ

माधुरी में विज्ञापन-छपाई के रेट

साधारण पूरा	पेज	३०)	प्रति बार
,, ½	,,	१६)	,, ,,
,, ¼	,,	१०)	,, ,,
,, ⅛	,,	६)	,, ,,
कवर का दूसरा	,,	५०)	,, ,,
,, तीसरा	,,	४५)	,, ,,
,, चौथा	,,	६०)	,, ,,
दूसरे कवर के बाद का	,,	४०)	,, ,,
प्रिंटिंग मैटर के पहले का	,,	४०)	,, ,,
,, ,, बाद का	,,	४०)	,, ,,
प्रथम रंगीन चित्र के सामने का	,,	४०)	,, ,,
लेख-सूची के नीचे आधा	,,	२४)	,, ,,
,, ,, चौथाई	,,	१५)	,, ,,
प्रिंटिंग मैटर में आधा	,,	३०)	,, ,,

विज्ञापन छपाने के नियम

(क) विज्ञापन छपाने के पूर्व कंट्रैक्ट-फ़ार्म भरकर भेजना चाहिए। कितने समय के लिये और किस स्थान पर छपेगा इत्यादि बातें साफ़-साफ़ लिखना चाहिए।

(ख) झूठे विज्ञापन के ज़िम्मेदार विज्ञापनदाता ही समझे जायँगे। किसी तरह की शिकायत साबित होने पर विज्ञापन रोक दिया जायगा।

(ग) साल-भर का या किसी निश्चित समय का ठेका तभी पक्का समझा जायगा, जब कम-से-कम तीन मास की विज्ञापन-छपाई पेशगी जमा कर दी जायगी और बाक़ी भी निश्चित समय पर अदा कर दी जायगी। अन्यथा कंट्रैक्ट पक्का न समझा जायगा।

(घ) अश्लील विज्ञापन न छापे जायँगे।

ख़ास रियायत

साल-भर के कंट्रैक्ट पर तीन मास की पेशगी छपाई देने से ६।) फ़ी सदी, ६ मास की देने से १२॥) और साल-भर की पूरी छपाई देने से २५) फ़ी सदी, उपर्युक्त रेट में, कमी कर दी जायगी।

मैनेजर माधुरी, लखनऊ

आवश्यक निवेदन

स्कूलों और कॉलेजों के लाइब्रेरियनों से

आपको जब कभी अपने पुस्तकालय के लिये हिंदी-पुस्तकों की आवश्यकता पड़े, तुरंत हमें लिखें। जिस विषय की, जितने रुपए की पुस्तकें लिखेंगे, उस विषय की, उतने ही रुपए की नई-नई पुस्तकों का पूर्व-इनवायस बनाकर सेवा में स्वीकृति के लिये भेज दिया जायगा। और, फिर आर्डर मिलते ही पुस्तकें भी सेवा में भेज दी जायँगी। इस प्रकार आपका अमूल्य समय पुस्तकें छाँटने और उन्हें अनेक स्थानों से मँगाने में न जायगा, और आपको अप-टू-डेट पुस्तकें भी मिल जायँगी।

स्कूल के हेडमास्टरों से

स्कूल में इनाम बाटने के लिये आपको जब-जब हिंदी-पुस्तकों की आवश्यकता पड़े, तुरंत हमें लिख दें कि इस स्टैंडर्ड के लड़कों के लिये इतने रुपए की पुस्तकें, जो इनाम के लिये गवर्न्मेंट से स्वीकृत हैं, भेज दें। हम आपको उसी मुताबिक पुस्तकें छाँटकर इनवायस बनाकर, सेवा में स्वीकृति के लिये भेज देंगे। फिर आर्डर आने पर पुस्तकें भी तुरंत ही भेज दी जायँगी। इस प्रकार आपका बहुत-सा अमूल्य समय बच जायगा, और लड़कों को नई-नई पुस्तकें भी पढ़ने को मिलेंगी।

पूर्ण आशा है, हिंदी-प्रेमी हेड-मास्टर और पुस्तकाध्यक्ष हमारी इस सूचना का पूर्ण उपयोग करेंगे।

हमारा पता—संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

धातुपुष्ट की गोलियाँ

ढीले जवान व बीते-बूढ़ों का सहारा हैं

"एक तंदुरुस्ती हज़ार न्यामत"

उसी का जीवन सफल है जो स्वस्थ (तंदुरुस्त) है। सबल मनुष्य जो चाहता है, अपने पुरुषार्थ से कर लेता है।
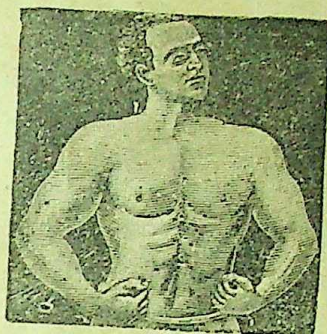
निर्बल मनुष्य पृथ्वी का भार है, उसका किया कुछ नहीं होता।

इसलिये यदि आप अपना जीवन व्याधि-रहित, सुखमय बनाना चाहते हैं तो—

डॉ० एस्० के० बर्मन की "धातुपुष्ट" की गोलियाँ सेवन करें।

इनसे साधारण कमज़ोरी, नामर्दी, धातुक्षीणता, हाथ-पैरों का काँपना, हौलदिल, याद भूलना, थोड़ी मिहनत में थक जाना, उदास-चित्त रहना और जवानी में बूढ़ों की-सी हालत को मिटाकर दो हफ़्ते में टूटे शरीर में पुनः पूरा जोश लाती हैं। इनके साथ बीच-बीच में जुलाब की गोली खाकर पेट साफ़ करने से अधिक लाभ होता है। मूल्य फ़ी शीशी (दो सप्ताह की ३० गोली) १।); डाक-महसूल ४ शीशी तक ।=), जुलाब की गोली ॥।), डाक-महसूल ।=)

कोला-टॉनिक

अफ़्रीका-देश के कोला-फल से बनी हुई पुष्टता की दवा।

शीत-काल में लोग विशेषतः पुष्टिकारक दवा का सेवन करते हैं। कलकत्ते के नामी डॉ० एस्० के० बर्मन ने बहुपरिश्रम व अर्थ-व्यय से अनेक वर्षों तक सैकड़ों रोगियों पर परीक्षा करके इस पुष्टिकारक कोला-टॉनिक को भारतवर्ष-भर में प्रचार किया है। हर मौसम में इसे व्यवहार कर सकते हैं।

इससे कलेजे की कमज़ोरी, हौलदिल, धड़कन आदि मिटकर दिमाग़ पुष्ट होता है। कोला-टॉनिक बालक, जवान, बूढ़े सभी पी सकते हैं। मूल्य पूरी ३२ खुराक की १ शीशी १।), डा० म० ।=)

डॉ० एस० के० बर्मन, पोस्टबक्स नं० ५५४, कलकत्ता

एजेंट—

लखनऊ (चौक) में, हमारे एजेंट डॉक्टर गंगाराम जैतली के पास हमारी दवाइयाँ मिलती हैं।

५०००) रु० (पाँच हज़ार रुपया) के इनाम!

में से यदि आपको लेना है तो शीघ्र नियमावली

बिजली का थैला

वास्तव में यह थैला "यथानामा तथागुणः" केवल २४ घंटे इस्तेमाल करने से ही इंद्रिय-संबंधी रोग, सुस्ती, नपुंसकता, टेढ़ापन आदि दूर करके आश्चर्यजनक प्रभाव दिखलाता है। शक्ति-हीन पुरुषों को पुनः नवयुवक बना देता है, इसमें लेप, सेंक आदि की भी आवश्यकता नहीं। मूल्य २।) डाक-व्यय-रहित।

मुफ़्त मँगा लीजिए

यह लॉटरी नहीं है, हर शख़्स को १०००) से लेकर १) तक के इनाम दिए जायँगे। जो हमारे यहाँ की जादू-समान गुणकारी औषधियाँ १००) से १) तक की ख़रीदेंगे। 'आम के आम गुठलियों के दाम।'

कामसुंदरी

कोष्ठ-बद्धता जो सर्वरोगों की जड़ है, उसे जड़ से दूर करके अत्यंत पवित्र और शुद्ध रक्त पैदा करके देह को सुंदर और हृष्ट-पुष्ट करती है। प्रमेह, धातु-क्षीणता, स्वप्नदोष, मस्तिष्क व शरीर-संबंधी निर्बलता को दूर करके व मूत्र-संबंधी सभी विकारों को नष्ट करके वृद्ध को भी नवीन जीवन देती है। इसे पारस कहें तो ठीक है। मूल्य ३२ गोली ।।।)

Rs. 2/4/ याद रखिए, यह समय फिर नहीं मिलने का। As. 12

पता—योगी औषधिमंदिर, कोठी, अलीपुर खेड़ा, ज़िला मैनपुरी।

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष ४ खंड १ | पौष-शुक्ल ७, ३०२ तुलसी-संवत् (१९८२ वि०)— २२ दिसंबर, १९२५ ई० | संख्या ६ पूर्ण संख्या ४२

अलौकिक रूप

(१)

शरद-जुन्हाई-सी है गात की गोराई चारु,
आनन अनूप मानो फुल्ल जलजात है ;
किस भाँति कोई कभी यह बतलावे भला,
कब दिन होता और होती कब रात है।
उसमें मिली है प्रभा शशि और सूर्य की भी,
क्या नहीं स्वयं ही सिद्ध होती यह बात है ?
उसकी अपार शोभा क्यों न श्रेष्ठ लेखी जाय,
बार-बार देखी अनदेखी होती ज्ञात है।

(२)

उसको विलोक लोक सुध-बुध खोता सदा,
ध्यान में उसी के लीन होता अनजान है ;
जान पड़ती है नित नूतन उसी की छटा,
देती दिखलाई भिन्न-भिन्न आन-आन है।
ज्यों-ज्यों देखता है कोई उसका अनूप रूप,
त्यों-त्यों वह होता ज्ञात और रूपवान है ;
होता चूर उसकी निराली चारु छवि देख,
लाखों अंशुमाली की प्रभाली का भी मान है।

(३)

उसको निहार छवि ने भी हार मान ली है,
कमनीय कंज-कलियाँ हैं कुम्हलाई सी ;
क्षण-क्षण ज्योति 'क्षण-ज्योति' की विलीन होती,
मानो उसे देख छिपती है शरमाई-सी।
आँखें सदा दौड़-दौड़ जाती हैं उसी के पास,
उसके सुरूप-सुधा-सिंधु में समाई-सी ;
शरद-जुन्हाई क्षीण होती जो कदापि नहीं,
होती तभी वह नेक उसकी लुनाई-सी।

गोपालशरण सिंह

प्राकृत-भाषा

प्राकथन
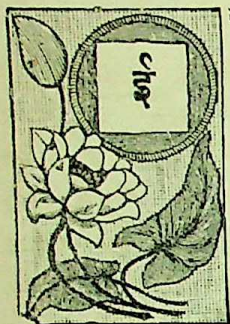
सा के पूर्व की पाँचवीं शताब्दी से ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी तक—डेढ़ हज़ार वर्ष का—भारत का इतिहास घोर अंधकाराच्छन्न है। उस समय के सामाजिक नियम, राजनीतिक परिस्थिति, आचार-व्यवहार, रीति-नीति, राज-कीर्ति, लोक-कीर्ति, कवि-कीर्ति, विद्या-चर्चा, धर्म-चर्चा, समर-चर्चा इत्यादि विषयों का अनुसंधान करने के लिये सबसे पहले लुप्तप्राय प्राकृत-ग्रंथों का उद्धार एवं प्रचार अत्यंत आवश्यक है। प्राकृत-भाषा आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी है। अतएव भाषा-तत्त्व की आलोचना के लिये भी प्राकृत का ज्ञान बहुत ही प्रयोजनीय है। फिर भाषा-तत्त्व की आलोचना न करके भी यदि कोई भारत की वर्तमान भाषाओं को सीखना चाहे, तो एक प्राकृत-भाषा के सम्यक् अनुशीलन से ही उसके लिये सभी भाषाएँ सरल हो जायँगी। पुनः संस्कृत-नाटकों के अधिकांश पात्रों की उक्तियाँ प्राकृत-भाषा ही में लिखित हैं। प्राकृत का ज्ञान न रहने से उनका भी मर्म नहीं जाना जा सकता। इसके अतिरिक्त जैनों के सब धर्म-ग्रंथ प्राकृत ही में लिखे गए हैं। अतएव प्राकृत न जानने से जैन-साहित्य की आलोचना भी असंभव है। इसके सिवा प्राचीन शिला-लेख और ताम्र-शासन जिस भाषा में लिखित हैं, उसे भी समझने के लिये प्राकृत का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। अतएव चाहे प्रत्न-तत्त्व-वित् हों, चाहे भाषा-तत्त्वज्ञ, अथवा साहित्यामोदी, सबके लिये प्राकृत मूल्यवान् है।

प्राचीन हिंदी-साहित्य में प्राकृत-शब्दों की भरमार है। नीचे हिंदी-कवियों की रचनाओं से कुछ प्राकृत-शब्दों के उदाहरण दिए जाते हैं—

चंद बरदाई—गढ़, अभग्ग (अभग्न), हयगय (हय-गज), धुनि (ध्वनि), डमर, लच्छिय (लक्ष्यते), सुघर, मनहुँ, बन्निय (वर्ण्यते), पिन्निय (पीत) बैन (वदन), लुट्टिय (लुण्ठित), घुट्टिय, गयंद (गजेंद्र), हुलास (उल्लास), तिय (स्त्री), कीर, अप्प (आत्म), फिरत, भुल्ल, चहुट्टिय, लौं, भँवहि (भ्रू), कवन (कः पुनः), सुआ (शुक), बयन (वचन), धूत इत्यादि।

कबीर—बताय, बेलरी (बल्ली), सीस (शीर्ष), पैंडा, सौंप (समर्प), घाव, दीसई (दृश्यते), चकनाचूर, बलिहारी, बूड़त, गागर (गर्गरी), हालै, डोलै, बीच, सोहंगम, सुरत, हाड़, लाकड़ी, फूट, गोद (क्रोड़), छिपिं, गँवाई, कौड़ी (कपर्दक), फिर, चिड़ियाँ, पछताना (पश्चात्ताप), आछे, चुनावै, मेंड़िया, पौने (पादोन), माटी (मृत्तिका), रूँदे, काँचा, बौरी, सँवारी, रैन (रजनी) इत्यादि।

मलिकमहम्मद जायसी—साँटी बारू (घर), घर, परसा (परिवेशन), झार, नखत (नक्षत्र), उघारी (उद्घाटन), नाहा (नाथ), निरारे, दीठि (दृष्टि), बाजा (वाद्य), भाँवर, अथहि, ऊब, छेका, अखारा, सगरे (सकल), कहानी (कथानक) इत्यादि।

तुलसीदास—होहिं (भवन्ति), नेह (स्नेह), जसु (यस्य), हिय (हृदय), दुरावा (दूरायते), लहहिं (लभन्ते), गोई (गुप्त), सुहाई (शोभायमान), सकुचानी (संकोच), गरहि (गलति), प्रणवौं (प्रणमामि), पियार (प्रिय), सराहिय (श्लाघ्यते), उपजहि (उत्पद्यते), माहीं (मध्ये), भल (भद्र), कछु (किञ्च), गुणगाहा (गुणग्राही), पाख (पक्ष), गाहा (गाथा), ढिठाई (धृष्टता), बाढ़ (वृद्धि), थोर (स्तोक), आयसु (आदेश), और (अपर), छोभ (क्षोभ) इत्यादि।

सूरदास—अनत (अन्यत्र), उड़ैं (उड्डीयते), करील (कटु), पालने (पर्यङ्क), खिलौना (क्रीडनक), पग (पद), काढ़त (कर्षते), गुहत (ग्रथति), नहाना (स्नान), ठाढ़े (स्थित), घुटरू, लट, लटकन, मल्हावै, नन्हीं, निछावरि, होत, उलटि, महर (मुखर), चोटी, ओछत, खिझावै, बैठ्यो, धिरयो (धर्षित) इत्यादि।

रहीम—दुरै, सुचहि, घटे, भूलत, पछितात (पश्चात्ताप), भीजत, ठहराय, उवत (उदेति), उमड़ि, अथवत (अस्तायते), ठेसुआ, ठौर, छुटे, कसौटी, साँचे (सत्य), दीवौ (दीप), धीम, जाँचिबे, डारि, सुई (सूचि) इत्यादि।

केशवदास—धीरज (धैर्य), सेइए (सेवस्व), लीवति, उबारक (उद्धार), चितवै, टकटोरी, रहौंगी

चक, जुन्हाई (ज्योत्स्ना), अन्हाई (स्नाता), बूझति (पृच्छति), निकरति, चहुँ (चतुः), सूम, बखानिए, माँगन (मृग्यते), रीझिय, खीझिय, सालई, डाँड़ (दंड), नीको, भीर, लालच (लालसा), लंक, रंक, मनुहार, उसाँस (श्वास), सोंहन, सिगरे, सम्हार, चितैनि इत्यादि।

बिहारीलाल—झाँई, धस्यो (ध्वस्त), ड्योढ़ी, लसत, पसीजति (प्रसीदति), ब्योरति, डटि, रोकि, भीर, उघारति (उद्घाटयति), छिपाय, चाह, कोरि, सौंधे, छेरे, ऊगे (उद्गम), चढ़ि, अटावलि, सींवी, छैल, लोयन (लोचन), बुझाय, मिस, डग कुड़गति, ठठकि, चटक, छुवाय, मैन (मदन), बेसर, निधरक, ठोड़ी, गाड़, पून्यो (पूर्णिमा), ओप, उजास (उज्ज्वलता), एँड़ी, मीडत (मर्दयति) मावस (अमावास्या), भीजे इत्यादि।

भूषण—बिललाने, छरीदार, नेकहुँ, तकि, चाहि, ब्योंत, अनबन, पौन (पवन), झुंड, घूँघट, पीछे (पश्चात्), डारे, चौंकि (चमक), बखान (व्याख्या), डरि, बाट (वर्त्मन), बिलाने, कुम्हिलाने, दूजा (द्वितीय), ढंग, धाक, बरजा (वर्जन), ललन, पछाह (पश्चात्), उमेठो, जराई (ज्वालित), अचंभो, उबारिबौ (उद्धार), झलकत, बलकत, लरिबे की, उछाह (उत्साह), छलकत, पौढ़े, बैठे, खरे, सोचत (शोच), खरीक, आँसू (अश्रु), पसीनो (प्रस्वेद), हिसि, दूलहो (दुर्लभ) इत्यादि।

देव—डारी, झँगूला, भारी, बतरावैं (ब्रुवते), हलावैं, जुगनू (ज्योतिरिंगण), पधारिबो (पद-धारन), बेसर, कसत, आज (अद्य), ढरकि, सरकि, टहलै, तरकि, दरकि, फरकि, अँध्यारी (अंधकार), गत, बात (वार्ता), अनखात, थकत, सकत (शक्त), अघात, गुदरी, छायो (छादित), सिसिकि, रिसानी (रोष), बिलानो, टेक, टरति, छकी, जकी, टकी, थहरानी, बालम, सौति, सराप (शाप) इत्यादि।

गिरिधर—साँई (स्वामी), बेटा, बाप, बिगरे, झगरत, खेटा, बाँझ (वंध्या), झँखै, फूहर, परसत, झपटि, सौचावै, लरिका, खजुवावै, धैना, लुकाटन, पँवरिया, लोन (लवण), निपंग, सौगंध, खटक, पाहुन, ठाकुर इत्यादि।

पद्माकर—उमहै, भाँति, चौंक (चमक), चकचौंधे, औंधे, नवेली (नव), सहेलिन (सखी), ढेर, चोखी, चौरस, चौकी, चगेरे, चहल, चमीन, फबी, गोल, बैन, लटा, बिज्जु (विद्युत), बटोहिन इत्यादि।

पद्य के पश्चात् अब व्रजभाषा के गद्य का एक उदाहरण दिया जाता है—

"जब सब व्रजबासीन ने सुनी जो श्रीदेवदमन को गाय बहोत प्रिय है, तब सबनने मिलिके यह विचार कियौ, जो जाके गाय होय, सब एक-एक तथा दोय-दोय भेट करो ; और गिरिराज के आसपास जो चौबीस गाम हैं, तिनके पास सौं सब व्रजबासी मिलिके एक-एक दोय-दोय गाइ भेट करवाई, और यह ठहरी जो बीस गाम में जाके प्रथम गाय ब्यावै, सो बछिया तो देवदमन को भेट करै। ऐसें सहस्र विधि गाय श्रीजी के भेट भई। तब दूध, दही, माखन और मठा, सब घर की गायन का आरोगें।"

इसमें सब, सुनी, गाय, बहोत, है, मिलि, यह, कियौ, जो, होय, दोय, भेट, करो, आसपास, चौबीस, तिन, ठहरी, ब्यावै, बछिया, भई, तब, दूध, दही, माखन, और, मठा, घर, आरोगें, ये शब्द प्राकृत हैं।

वर्तमान खड़ी बोली में भी कितने ही प्राकृत-शब्द हैं, यह भी देखिए—

"बहन, देखती क्या हो ? हमने सचमुच रुपयों के लिये अपने लड़के और लड़की को बेच डाला। मेरे पति मुझे रानीगंज घसीट ले गए थे। वहाँ उन्हें एक खान का ठेका मिल गया था। वहाँ मेरे दोनों बच्चे बीमार पड़े; न कोई दवा हो सकी, न दारू। कई दिन बाद एक डॉक्टर आया, मगर वह क्या करता ? बहन, सच कहती हूँ, न मैं वहाँ जाती, और न मुझे बच्चों से हाथ धोना पड़ता।"

(दीनानाथ)

दवा, डॉक्टर, बाद और मगर, इन चार शब्दों के सिवा सब प्राकृत से बने शब्द हैं।

एक मारवाड़ी नवल कथा 'कनक-सुंदर' का एक अंश उद्धृत किया जाता है। देखिए, इसमें कितने प्राकृत-शब्द हैं—

"नहीं भाई, भाभी का बोलबा सूँ रीसाँ भरकर घर छोड्यो नहीं, म्हारा मन माँहे परदेश-दिक्खन देखबा की घणा दिनाँ सूँ लाग रही थी। एक-दो बार म्हे थाँके पास बात भी काढी थी। जराँ आप कह्यो थो के अबार नहीं, दीखो जशी। जराँ हूँ चुप हो गयो थो। म्हारे तो थे

मायत छो, थाँकी बोलबा-चालबा की रीस मानबा को म्हारा धरम नहीं।"

फिर गुजराती में देखिए। 'करणघेलो' से एक अवतरण नीचे उद्धृत किया जाता है—

"थोड़ी बार पछी राजा हिंडोले थी उठ्यो, अने एक हलका रजपूतनाँ लुगडाँ राखेलाँ हताँ; ते तणे पहेर्याँ। तेणे पोतानुं म्हों छुपाववाने बुकानी बाँधी, अने पगे जूना जोड़ा पहेर्यां। पछी एक खवास ने बोलावी हुकम कीधो के आज रात्रे वीर चर्चा एटले नगरचर्चा जोवानो मारो विचार छे। माटे एक लोटामाँ पाणी भरी लई मारी साथे आववुँ। खवास हुकम प्रमाणे जलदी थी तैयार थयो।"

इसमें खवास, हुकम, जलदी और तैयार शब्द के सिवा सभी प्राकृत से उत्पन्न शब्द हैं।

इसी प्रकार पंजाबी, सिंधी, मराठी, बँगला, उड़िया, आसामी, नेपाली, मैथली, मागधी, भोजपुरी तथा अवधी में भी प्राकृत का समावेश समझ लीजिए। अतएव उत्तर-भारत की वर्तमान आर्य-भाषाओं के सम्यक् ज्ञान के लिये प्राकृत का अनुशीलन अत्यंत आवश्यक है।

आरंभ

ईसवी सन् के कई शताब्दी पहले आदर्श संस्कृत-भाषा का आरंभ हुआ। यह अभी तक पंडितों की भाषा बनी हुई है। इसी आदर्श शैली में अभी तक काव्य-नाटकादि लिखे जा रहे हैं। अभी चालीस वर्ष भी नहीं गुज़रे, वंग-देश के शांतिपुर-निवासी पंडित रामनाथ तर्क-रत्न ने 'वासुदेव-विजय'-नामक महाकाव्य और 'प्रभातस्वप्नम्'-नामक नाटक लिखे हैं, जो कालिदास आदि महाकवियों के काव्य-नाटकादि से किसी प्रकार न्यून नहीं हैं। दार्शनिक शैली—यथा, पर्वतो वह्निमान् धूमात्—भी अभी तक जारी है। सोलहवीं शताब्दी में भी नवद्वीप के नैयायिकों ने इसी शैली पर पुस्तकें लिखीं, और इसी के ढंग में विशिष्टता उत्पन्न की, अर्थात् इसे पहले से भी अधिक कृत्रिम बना दिया। उन्होंने इनके बनाने में अपनी मातृभाषा का व्यवहार नहीं किया। संस्कृत तो तीन हज़ार वर्ष से सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा नहीं है। कोई-कोई कहते हैं कि यह कभी कथित भाषा थी या नहीं, इसमें भी संदेह है; क्योंकि जब से यह पाणिनि के नियमों से शृंखलाबद्ध हुई, तब से पंडितों के सिवा दूसरों के द्वारा बोलचाल में व्यवहृत नहीं होती। अस्तु। अति प्राचीन काल से प्राकृत ही कथित भाषा है। हिंदी, बँगला इत्यादि भी प्राकृत हैं; परंतु अब प्राकृत नहीं कहलातीं। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं की उत्पत्ति के पहले जो-जो आर्य-भाषाएँ उत्तर-भारत में सर्व-साधारण की भाषाएँ थीं, उन्हीं को प्राकृत कहते हैं। प्राकृत-भाषाएँ सजीव भाषाएँ थीं, अतएव उनमें परिवर्तन अवश्य होते थे। भारतवर्ष में आर्यों का विस्तार हुआ। वे विभिन्न प्रदेशों में फैले। उनसे अन्य जातियों का संघर्ष हुआ। परस्पर दूर प्रदेशों में रहने के कारण, भिन्न-भिन्न जातियों के संसर्ग से, भिन्न प्रदेशों के जल-वायु इत्यादि नैसर्गिक पदार्थों की भिन्नता के कारण विभिन्न प्रदेशवासियों की ध्वनियों के उच्चारण में विभिन्नता आ गई। भिन्न-भिन्न प्रदेश के आचार-व्यवहार की विभिन्नता तथा सभ्यता की असमान वृद्धि के कारण मानसिक भावों में भी विभिन्नता आ गई। अस्तु। नूतन भावों के विकास के साथ-साथ उन्हें प्रकट करने के लिये नए-नए शब्द भी बने। परंतु हरएक उपभाषा की ध्वनियों तथा शब्दों के रूपों का परिवर्तन कुछ ख़ास नियमों से होता है, और भाषा-विज्ञान में इन नियमों की आलोचना होती है। इस प्रकार निर्दिष्ट नियमों से ही वैदिक भाषा से प्राचीन प्राकृत, और निर्दिष्ट नियमों से प्राचीन प्राकृत से पीछे की प्राकृत-भाषाएँ बनीं। इन्हीं निर्दिष्ट नियमों के अनुसार प्राकृतों से उनके अपभ्रंश बने, तथा अप-भ्रंशों से आधुनिक उत्तर-भारत की देशी भाषाएँ बनीं।

प्राकृत-भाषाओं में पाली-भाषा का संस्कृत-भाषा से अधिक सादृश्य है। पाली के भी दो रूप हैं—कथित तथा साहित्यिक। पाली में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें लिखी गई हैं। बुद्ध-देव ने आज्ञा दी थी कि उस समय की कथित भाषा में ही उनके प्रवर्तित धर्म की पुस्तकें लिखी जायँ। परंतु यह साधारण बात है कि कथित भाषा से साहित्यिक भाषा परिमार्जित होती है। अतएव बौद्ध-ग्रंथ कुछ परिमार्जित भाषा में ही लिखे गए। जब यह भाषा, कथित नहीं रही, तब भी इसमें कितने ही बौद्ध-ग्रंथों की रचना हुई। जब शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट आदि की चेष्टा से बौद्ध-धर्म भारतवर्ष से निकाला गया, तब इस धर्म ने सिंहल, ब्रह्मदेश, स्याम इत्यादि देशों का आश्रय लिया। पाली-भाषा की पुस्तकों में से अधिकांश इन्हीं देशों में लिखी गई हैं।

इस निबंध में पाली-भाषा को छोड़कर अन्यान्य प्राकृत-भाषाओं की चर्चा होगी। यद्यपि पाली भी एक प्रकार से प्राकृत-भाषा है, तथापि हम प्राकृत-भाषाओं में इसका शुमार नहीं करेंगे। पाली के सिवा अन्यान्य प्राकृत-भाषाओं का ही हम प्राकृत-नाम से उल्लेख करेंगे।

यह कहा जा चुका है कि अति प्राचीन काल से ही लोगों के बोलचाल की भाषा प्राकृत है। हमारे देश के प्रायः सभी पंडितों का मत है कि प्राकृत संस्कृत से उत्पन्न हुई है; परंतु प्रकृति अर्थात् स्वभाव से जो सिद्ध है, वही प्राकृत है—(१) प्रकृत्या स्वभावेन सिद्धमिति प्राकृतम्। प्राकृत-जनों की जो भाषा है, वही प्राकृत है,(२) प्राकृतजनानां भाषा प्राकृतम्। कवि वाक्पति ने कहा है—"इस प्राकृत-भाषा ही में सब भाषाएँ सन्निविष्ट हैं, और इसी से सब भाषाएँ निकली हैं।" इससे यह सिद्ध होता है कि पाणिनि द्वारा शासित संस्कृत-भाषा भी प्राकृत से निकली है। जब संस्कृत-भाषा अप्रचलित हो गई, तब भी प्राकृत-भाषा जीवित थी। वैदिक युग की बोलचाल की भाषा का नाम था आर्ष-अपभ्रंश। साहित्यिक भाषा कभी बोलचाल की भाषा नहीं हो सकती। दोनों में अंतर अवश्य रहता है, और परस्पर का प्रभाव परस्पर पर पड़ता रहता है। यह भाषा के परिवर्तनों का एक कारण है। परंतु परिवर्तन आकस्मिक घटना नहीं है। यह स्वाभाविक नियमों से होता है। वैदिक युग से जो-जो भाषाएँ परंपरा से सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा रहती आई हैं, उन्हीं को प्राकृत कहते हैं। यदि यह मान लें कि वैदिक भाषा किसी समय कथित-भाषा थी, तथा जब से वह साहित्य में व्यवहृत होने लगी, तभी से एक ओर प्राकृत का अंकुर उत्पन्न हुआ, तो वैदिक भाषा ही से इसका भी प्रमाण पाया जाता है।

जब आर्य लोग पहलेपहल इस देश में आए, तब यहाँ उनका विस्तार कम था। वे केवल काबुल और पंजाब के उत्तर-पश्चिम में रहते थे। यही ऋग्वेद के प्राचीन मंत्रों का रचना-काल है। इसके बाद वे सिंधु, पंचनद, सरस्वती, दृशद्वती, गंगा और यमुना तक अर्थात् समग्र आर्यावर्त में फैले। जब तक वे थोड़ी-सी जगह में सीमाबद्ध रहे, तब तक आर्यों की भाषा अर्थात् वैदिक भाषा पर इस देश के आदिम अधिवासियों का प्रभाव अधिक नहीं पड़ा; वेद की भाषा अर्थात् साहित्यिक भाषा ज्यों-की-त्यों रही होगी। परंतु सर्वसाधारण के बोलचाल की भाषा में कुछ परिवर्तन धीरे-धीरे अवश्य ही हुआ, इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। पर जब वे विभिन्न प्रदेशों में फैले, तब उनकी भाषा में बहुत परिवर्तन हुए। एक-एक प्रदेश में एक-एक प्रकार की प्राकृत उत्पन्न हुई। इस परिवर्तन के तीन मुख्य कारण हैं—

(१) भारतीय आर्येतरों के साथ संपर्क।
(२) जल, वायु, आचार और पद्धति की विभिन्नता।
(३) उच्चारण की सहूलियत।

प्राकृत-भाषा, आर्य और अनार्यों की भाषाओं के सम्मिश्रण से तो बनी; पर इसकी प्रकृति आर्य-भाषा ही की रह गई। इसका कारण यह है कि आर्य लोग अनार्यों से सभ्यता में बहुत बढ़े थे। जो अनार्य आर्यों के आधिपत्य में आ गए, उन्होंने आर्यों की भाषा ग्रहण कर ली; पर आर्य-भाषा में भी अनार्यों के कुछ शब्दों का प्रवेश हो गया। दूसरा कारण यह था कि आर्य-भाषा अनार्य-भाषा से अधिक परिपुष्ट एवं भाव-व्यंजक थी। वैदिक भाषा या लौकिक संस्कृत अथवा प्राकृत, कोई भी पहले लिखित-भाषा नहीं थी। बहुत समय से ये मौखिक रूप में थीं, अर्थात् आदमियों की ज़बान ही के ज़रिए चली आती थीं। प्राकृत भी बहुत काल तक साहित्यिक भाषा नहीं थी। बुद्धदेव तथा शेष जैन-तीर्थंकर महावीर के आविर्भाव के पीछे यह साहित्य के लिये व्यवहृत होने लगी।

प्राकृत के कई भेद हैं। जो भाषा बुद्धदेव के समय मगध में प्रचलित थी, वह प्राचीन मागधी कहलाती थी। बुद्ध-देव की मृत्यु के उपरांत उनके उपदेश प्राचीन मागधी-प्राकृत में लिखे गए। प्राचीन मागधी पीछे 'पाली' नाम से प्रसिद्ध हुई। प्राकृत-भाषाओं में पाली ही सबसे प्राचीन है।

यह कहा गया है कि साहित्यिक भाषा बोलचाल की भाषा नहीं हो सकती। परंतु परस्पर का प्रभाव परस्पर पर पड़ता ही है। वेद में भी प्राकृत का प्रभाव दिखलाई देता है, अर्थात् जिस नियम से प्राकृत की ध्वनियों में परिवर्तन होता है, वेद में भी उसी प्रकार के परिवर्तनों के दृष्टांत मिलते हैं। जैसे, शिथिर=शिथिल। शिथिर श्रथ्-धातु से बना है, अतएव श्रिथिर-पद बनना चाहिए। परंतु 'श'

से संयुक्त 'र' का लोप हो गया है। और भी इस प्रकार के बहुत-से उदाहरण पाए जाते हैं।

भाषाएँ दो प्रकार की हैं—(१) संश्लेषक और (२) विश्लेषक। संस्कृत संश्लेषक-भाषा है। प्राकृत भी संश्लेषक-भाषा है। परंतु हिंदी, बँगला इत्यादि विश्लेषक-भाषाएँ हैं। संस्कृत जितनी संश्लेषक है, प्राकृत उतनी नहीं। विश्लेषण के द्वारा भाषा सरल होती है। प्राकृत का विश्लेषण की ओर झुकाव है। वैदिक युग में जो भाषा सर्व-साधारण के बोलचाल के निमित्त व्यवहृत होती थी, उसका नाम आर्ष-अपभ्रंश दिया गया है। इसी आर्ष-अपभ्रंश से प्राकृत-अपभ्रंश की उत्पत्ति हुई है। वैदिक युग के बहुत-से शब्द प्राकृत में पाए जाते हैं; परंतु संस्कृत में उनका व्यवहार नहीं है। यदि संस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति होती, तो ये शब्द प्राकृत में कैसे आते ? प्राकृत-अपभ्रंश ही मार्जित होकर आगे साहित्यिक प्राकृत हुई है।

वैदिक भाषा के साथ प्राकृत-भाषा का बहुत सादृश्य पाया जाता है—

प्राकृत-भाषा की तरह (१) वैदिक भाषा में, प्रथमा के एकवचन में, ओकार का प्रयोग। जैसे, संवत्सरो अजायत।

(२) तृतीया के बहुवचन में संस्कृत देवैः के स्थान में वैदिक देवेभिः के सदृश देवेभि। यहाँ विसर्ग-मात्र छोड़ दिया गया है। पीछे देवेभि के स्थान में देवेहि हो गया।

(३) वैदिक भाषा में, पंचमी के एकवचन में, उच्चा, नीचा, पश्चा और प्राकृत में देवा, पच्छा इत्यादि।

(४) वैदिक भाषा में, चतुर्थी के स्थान में, विकल्प में षष्ठी होती है; परंतु प्राकृत में संप्रदान-कारक के लिये सब जगह षष्ठी का ही व्यवहार होता है।

(५) वैदिक भाषा में द्विवचन के लिये बहुवचन के सदृश पदों का व्यवहार। जैसे मित्रावरुणौ के स्थान में मित्रावरुणा; अश्विनौ के स्थान में अश्विना।

(६) वेद में अंत्य व्यंजन के लोप के उदाहरण पाए जाते हैं। जैसे युष्मान् के स्थान में युष्मा इत्यादि। प्राकृत में सर्वत्र अंत्य व्यंजन का लोप होता है।

(७) वेद में षष्ठी के बहुवचन की विभक्ति कहीं-कहीं नाम् पाई जाती है, जैसे गोनाम्, देवानाम्, ऋतुनाम् इत्यादि। इसी से प्राकृत में, षष्ठी के बहुवचन में, 'ण' होता है।

संस्कृत-भाषा का व्याकरण जटिल है; किंतु प्राकृत का व्याकरण संस्कृत के व्याकरण से सरल है। संस्कृत में शब्दों तथा धातुओं के जितने रूप हैं, प्राकृत में उतने नहीं। अपभ्रंश में तो और भी कम रूप हैं। अंत में, रूपों की संख्या हिंदी इत्यादि में और भी घट गई है—केवल दो या तीन विभक्तियाँ रह गई हैं। अर्थ-बोध के लिये अव्ययों का व्यवहार ही अधिक होता है।

प्राकृत के व्याकरणों से मालूम होता है कि इस भाषा की चेष्टा विभक्तियों को घटाने की ओर है। यहाँ तक कि शब्दों के अंत में 'क'-प्रत्यय लगाकर उन्हें अकारांत बनाने की चेष्टा की गई थी। संप्रदान की विभक्ति का तो बिलकुल लोप ही हो गया है। कर्ता तथा कर्म-कारक की विभक्तियों को एक-सी करने की ओर झुकाव है। धातु-रूप में सब धातुओं को भ्वादि-गण की धातुओं के नियम से रूप देने की चेष्टा अधिक है। दस 'लकारों' में केवल लट्, लोट् और लृट्, इन्हीं तीन लकारों का प्राधान्य है। अतीत काल-सूचक तीनों (लङ्, लिट्, लुङ्,) लकारों के स्थान में, सब पुरुषों और वचनों में, स्वरांत धातुओं के आगे सी, ही, हीअ, और व्यंजनांत धातुओं के आगे ईअ विभक्ति होती है। जैसे 'कृ'-धातु से कासी, काही, काहीअ; 'स्था'-धातु से ठसी, ठाही, ठाहीअ। व्यंजनांत 'ग्रह'-धातु से गण्हीअ पद तीनों लकारों के सब पुरुषों में प्रयुक्त होता है। अतीत काल प्रायः 'क्त'-प्रत्यय से निष्पन्न पदों के द्वारा प्रकट होता है। प्राकृत में द्विवचन का प्रयोग नहीं है। आत्मनेपद भी लुप्तप्राय हो गया है।

इन परिवर्तनों के सिवा ध्वनियों के परिवर्तन विशेष कर हुए। ये आगे दिखलाए जायँगे। ध्वनियों के परिवर्तनों से शब्दों के रूप ऐसे बदल गए हैं कि उनको पहचानना ही मुशकिल है। जैसे कृष्ण से कण्हो, स्पर्श से फरिसो, स्फटिक से फलिहो इत्यादि।

आगे बढ़ने के पहले प्राकृत-भाषाओं का श्रेणी-विभाग करना आवश्यक है। इनको हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—(क) प्राचीन प्राकृत, (ख) मध्ययुग की प्राकृत और (ग) शेषयुग की प्राकृत।

(क) प्राचीन प्राकृत के अंतर्गत हैं—

(१) पाली, (२) आर्ष-प्राकृत या जैन-सूत्रों की भाषा, और (३) अश्वघोष-लिखित नाटकों की प्राकृत।

(ख) मध्ययुग की प्राकृत के अंतर्गत हैं—

(१) महाराष्ट्री, जिसमें दक्खिनी गाथाएँ लिखी गई हैं, (२) शौरसेनी-प्राकृत, जिसमें नाटकों का गद्यांश प्रायः लिखा गया है, (३) मागधी-प्राकृत, जिसमें नाटकों के कुछ निम्न-श्रेणी के पात्रों की बातचीत लिखी गई है, (४) पैशाची, जिसमें 'बृहत् कथा' लिखी गई थी, और जिसके कुछ नमूने हेमचंद्र के कुमारपाल-चरित में पाए जाते हैं।

(ग) शेषयुग की प्राकृत अर्थात् शेषयुग की अपभ्रंश। इसमें बहुत थोड़ा साहित्य लिखा गया था। हेमचंद्र ने इसका कुछ विवरण दिया है।

यहाँ जैन-प्राकृतों का भी कुछ उल्लेख होना चाहिए। जिस भाषा में जैन-सूत्र लिखे गए हैं, उसे अर्द्ध-मागधी कहते हैं। मागधी से इसका बहुत सादृश्य है। यह शूरसेन और मगध के अंतर्वर्ती देशों में बोली जाती थी। श्वेतांबर-संप्रदाय के जैनों के ग्रंथ जैन-महाराष्ट्री में लिखे गए हैं, तथा दिगंबर-जैनों के ग्रंथ जैन-शौरसेनी में।

जिस प्रकार की प्राकृतें हम काव्य-नाटकों में पाते हैं, उनके कभी बोलचाल की भाषाएँ होने में बहुत संदेह है। प्राकृत के वैयाकरणों और आलंकारिकों के नियमों से आबद्ध एवं मार्जित होकर वे साहित्य में व्यवहृत हुईं। यदि वे किसी समय कथित-भाषा थीं भी, तो जिस समय काव्य-नाटकादि रचे गए, उसके बहुत पहले बोलचाल की भाषा से परिमार्जित हो गईं। आलंकारिकों ने नियम कर दिया था कि पद्य महाराष्ट्री-प्राकृत में, और गद्य शौरसेनी तथा मागधी-प्राकृत में लिखे जायँ; ऊँचे दर्जे के पात्र शौरसेनी में और बहुत निम्न-श्रेणी के पात्र मागधी में बोलें। इससे यह मालूम होता है कि नाटकों की प्राकृत कृत्रिम थी। पद्य में महाराष्ट्री का व्यवहार होने का कारण यह है कि बहुत प्राचीन काल से केवल महाराष्ट्र-देश ही में प्राकृत-काव्य और गाथाएँ बनती आई थीं। हाल की प्राकृत-सप्तशती ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के इधर-उधर संग्रह की गई थी। गुणाढ्य की 'बृहत् कथा' इसी समय पैशाची में लिखी गई।

अब हम प्राकृत के ध्वनि-परिवर्तन की आलोचना करेंगे। इसमें संस्कृत-शब्दों के साथ उनकी तुलना है। नीचे पहले महाराष्ट्री-प्राकृत के ध्वनि-परिवर्तनों के नियम दिए जाते हैं।

असंयुक्त वर्ण

श, ष के स्थान में सर्वत्र स होता है। न के स्थान में सर्वत्र ण होता है; केवल तवर्ग के वर्णों के साथ न संयुक्त पाया जाता है। य के स्थान में सर्वत्र ज होता है। शब्द के आदि-स्थित असंयुक्त व्यंजन का परिवर्तन नहीं होता।

समास-निष्पन्न पदों में जितने शब्द रहते हैं, उनमें से प्रथम को छोड़कर जितने शब्द हैं, सबका आद्य वर्ण मध्यस्थ वर्ण के सदृश समझा जाता है। जैसे अज्जउत्त (आर्यपुत्र)। अव्यय तथा उपसर्गों के आद्य वर्ण मध्यस्थ वर्णों के सदृश समझे जाते हैं। जैसे उण (पुनः), अ (च)। अंत्य व्यंजन का प्रायः लोप होता है। अंत्य मकार और नकार की जगह अनुस्वार होता है। अंत्य वर्ण जब रह जाता है, तब उसमें प्रायः आकार संयुक्त होता है। जैसे पच्छा (पश्चात्), तं (तत्), किं (किम्), भवं (भवान्), दिशा (दिश्)। दो स्वरों के मध्य-स्थित क, ग, च, ज, त और द का प्रायः, पद-मध्यस्थित प, ब, व का कभी-कभी और पद-मध्य-स्थित य का सर्वदा लोप होता है। जैसे, मउलो (मुकुल), साअर (सागर), वअन (वचन), गओ (गज), मओ (मद), कई (कपि), विउह (विबुध), जीअ (जीव), णअणं (नयन) कभी-कभी इन वर्णों का लोप न होकर द्वित्व होता है। जैसे णक्ख (नख), एक्क (एक), जोव्वण (यौवन)। दूसरे वर्णों का भी कभी-कभी द्वित्व होता है। जैसे तेल्ल (तैल), पेम्म (प्रेमन्)। संयुक्त वर्णों के पहले का स्वर ह्रस्व होता है। इस नियम से जोव्वण, तेल्ल और पेम्म के पहले का ओकार तथा एकार ह्रस्व है।

तकार और पकार का लोप न होने से उनके स्थान में दकार और बकार होते हैं। जैसे एदिना (एतेन), किबा (कृपा) इत्यादि। वर्ग के द्वितीय तथा चतुर्थ वर्णों का द्वित्व होने का अर्थ है उनके पहले अपने-अपने वर्ग के प्रथम तथा तृतीय वर्णों का संयुक्त होना। टकार के स्थान में डकार, ठकार के स्थान में ढकार और रकार तथा डकार के स्थान में कभी-कभी लकार होता है। जैसे मउडो (मुकुट), कढोरं (कठोर), मुग्गलो (मुद्गर), दालिम (दाडिम्ब)। दो स्वरों के बीच के ट और ठ, ड तथा ढ

हो जाते हैं। जैसे विडवो (विटप), कढोरं (कठोर)। दंत्य वर्णों के स्थान में कभी-कभी मूर्द्धन्य वर्ण होता है। जैसे पडि (प्रति), पढ़म (प्रथम), वेड़िसो (वेतस), पड़ाआ (पताका)। त के स्थान में कभी-कभी द होता है। जैसे उदू (ऋतु), रअद (रजत)।

अनादि अयुक्त ख, घ, थ, ध और भ के स्थान में प्रायः, और फ के स्थान में कभी-कभी ह होता है। जैसे मेहला (मेखला), मेहो (मेघ), गाहा (गाथा), वहिरो (वधिर), सहा (सभा), सहर (शफर)। अनादि अयुक्त फ के स्थान में प्रायः भ होता है। जैसे सभरी (सफरी)।

प और ब का जब लोप नहीं होता, तब उनके स्थान में व हो जाता है। जैसे, उवरि (उपरि), कवल (कबल), इसी प्रकार जउणा=यमुना, फलिहो=स्फटिक, णिहसो=निकष, चिहुरो=चिकुर, सीभरोवा, सीहरो=शीकर, चंदिमा=चंद्रिका, वसही=वसति, भरहो=भरत, एरावणो=एरावत, पलित्तं=प्रदीप्त, कलंबो=कदंब, दोहलो=दोहद, गग्गरो=गद्गद, एआरह=एकादश, बारह=द्वादश, तेरह=त्रयोदश, चउद्दह=चतुर्दश, लट्ठी=यष्टि, चिलओ=किरात, खुज्जो=कुब्ज, डोला=दोला, डंडो=दंड, डसण=दशन, फरिसो=परुष, णोहलो=लोहल, भम्महो वा वम्महो=मन्मथ, छट्ठी=षष्ठी, छावओ=शावक, दिअहो=दिवस, णहुसा वा सोणहा=स्नुषा, तहिम=तस्सिम्=तस्मिम्, इत=इह।

संयुक्त वर्ण

शब्दों के आदि में हमेशा असंयुक्त वर्ण रहता है। जैसे फलिहो (स्फटिक)। इस नियम का व्यतिक्रम भी यह है, जैसे ण्ह =ण्हाण (स्नान) ; 'म्ह' = म्हवाम्हो (स्मः)। समास-निष्पन्न पदों के प्रथम शब्द को छोड़कर अन्य शब्द। जैसे पसइप्पमाणे (प्रसृतिप्रमाणे)। पद के मध्य में दो व्यंजनों से अधिक का संयोग नहीं हो सकता। जैसे सिद्धिए (सिद्ध्या)।

संयुक्त वर्णों की तीन अवस्थाएँ हैं—

(१) द्वित्व। जैसे पक्क।

(२) वर्ग के प्रथम वर्ण के साथ द्वितीय वर्ण का, तृतीय वर्ण के सथ चतुर्थ वर्ण का, सानुनासिक के साथ किसी व्यंजन का संयोग। जैसे हत्थो (हस्त), मज्झे (मध्य), खंभो (स्तंभ), सुंदेरं (सौंदर्य), चिंधं (चिह्न), धम्हा (ब्रह्मा), वण्ही (वह्नि) इत्यादि।

(३) ल के साथ ह का योग। जैसे अल्हादो। अतएव वर्णों का लोप होता है, अथवा स्वर-विभक्ति होती है। जैसे वण्णो (वर्ण), हरिसो (हर्ष)। अनादिभूत शेष तथा आदेश का द्वित्व होता है। लोप के बाद संयुक्त वर्ण जितना बाक़ी रहता है, उसको शेष कहते हैं। र तथा ह का द्वित्व नहीं होता। द्वित्व-प्राप्त वर्गीय युग्म-वर्ण के पूर्व-भाग के स्थान में पूर्व-वर्ण होता है। अर्थात् ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ के पूर्व-भाग के स्थान में क्रम से क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प, ब होते हैं। अनुस्वार के परवर्ती शेष तथा आदेश का भी द्वित्व नहीं होता। वर्ग के प्रथम वर्ण के साथ किसी ऊष्म-वर्ण का योग रहने से ऊष्म-वर्ण का लोप होता और द्वितीय वर्ण महाप्राण हो जाता है। जैसे पुप्फो (पुष्प)।

संयुक्त वर्ण में र, व, श, ष, स रहने से कभी-कभी अनुस्वार का आगम होता है, और वह पहले या पीछे बैठता है। जैसे वंको (वक्र), दंसणं (दर्शन)।

संयुक्त वर्ण में अंतस्थ-वर्ण रहने से पहले उसी का लोप होता है। जैसे मच्छो (मत्स्य)। संयुक्त वर्ण के ऊपर के क, ग, ड, त, द, प, ष, स का लोप होता है। जैसे भत्तं (भक्त), मुद्धो (मुग्ध), खग्गो (खड्ग), उप्पलं (उत्पल), मुग्गरो (मुद्गर), सुत्तो (सुप्त), णिट्ठुरो (निष्ठुर), णेहो (स्नेह)।

संयुक्त वर्ण के नीचे के म, न, य का लोप होता है। जैसे रस्सी (रश्मि), णग्गा (नग्न), जोग्गो (योग्य)। चौर्य, वीर्य, शौर्य इत्यादि के 'र्य' के स्थान में रिअ होता है। जैसे चोरिअं, वीरिअं, सोरिअं। 'र्त' के स्थान में कभी-कभी ट होता है, जैसे केवट्टो (कैवर्त)। त्य, थ्य और द्य के स्थान में क्रम से च्च, च्छ और ज्ज होते हैं। जैसे सच्चं (सत्य), मिच्छा (मिथ्या), विज्जा (विद्या)। ध्य, ह्य के स्थान में ज्झ होता है। जैसे मज्झं (मध्य), सज्झ (सह्य)। श्च, त्स, प्स के स्थान में प्रायः च्छ होता है। जैसे, पच्छिमं (पश्चिम), वच्छरो (वत्सर), लिच्छा (लिप्सा)। क्षकार के स्थान में बहुधा च्छ होता है। जैसे अच्छी (अक्षि), लच्छी (लक्ष्मी)।

म्न, ज्ञ के स्थान में, और पञ्चाशत् तथा पञ्चदश के 'ञ्च' के स्थान में ण होता है। जैसे णिण्णं (निम्न), जण्णो (यज्ञ), पण्णरहो (पंचदश), पण्णासा (पंचाशत्)। सर्वज्ञ प्रभृति जिन शब्दों के अंत में ज्ञ है, उनके ज्ञ के ञ का लोप होता है। जैसे सव्वज्जो।

संयुक्त ल का प्रायः लोप होता है। जैसे कप्प (कल्प)। जल्प का जप्प होता है। इसी प्रकार गुम्म (गुल्म), मेच्छो (म्लेच्छ), साराहणीअ (श्लाघनीय) हैं।

नीचे लिखे स्थानों में अनुस्वार होता है—

(१) वर्ग का पंचम वर्ण अपने वर्ग के वर्णों के साथ संयुक्त रहता है; परंतु अन्य वर्ग के साथ अनुस्वार हो जाता है। जैसे दिंमुह (दिङ्मुख), पंति (पंक्ति), विंझ (विंध्य), छंमुह (षण्मुख), उंमुह (उन्मुख)। म, ञ, ङ के स्थान म, विकल्प में, अनुस्वार और मकार होते हैं। जैसे अंसो या अम्सो (अंश), पंति या पम्ति (पंक्ति)। अंत के मकार का अनुस्वार होता है। जैसे धणं (धनम्)। स्वर-वर्ण पीछे रहने से विकल्प में अनुस्वार होता है। मांसादि शब्दों में, विकल्प में, अनुस्वार होता है। जैसे मंसं या मासं, कहं या कह (कथं), णूणं या णूण (नूनम्) ताहिं या ताहि (तस्मिन्)। नीड़ादि शब्दों के अनादि वर्णों का द्वित्व होता है। जैसे णेड्डं (नीड), पेम्मं (प्रेमन्), वाहित्तं (व्याहृत), उज्जुओ (ऋजु), जणओ (जनक), जोव्वणं (यौवन), मज्झण्णो (मध्याह्न), खोडओ (स्फोटक), कज्जं (कार्य), सेज्जा (शय्या), अहिमज्जू (अभिमन्यु), तूरं (तूर्य), धीरं (धैर्य), सुंदेरं (सौंदर्य), अच्छेरं (आश्चर्य), परेंतं (पर्यंत), सूरो या सुज्जो (सूर्य), पट्टणं (पत्तन), गड्डो (गर्त), गड्डहो (गर्दभ), रुक्खो (वृक्ष), पाडिसिद्धि (प्रतिस्पर्द्धिन्), काहावणो (कार्षापण), विच्छुअ (वृश्चिक), उसुओ या ऊसुओ (उत्सुक), उस्सओ या ऊसओ (उत्सव), मम्महो या वम्महो (मन्मथ), वेंट (वृंत), वेब्भलो या वीहलो (विह्वल), अप्पा या अत्ता (आत्मा), रूप्पिणी (रुक्मिणी), णेड्डं (नीड़), अंब (आम्र), तंब (ताम्र)।

विप्रकर्ष के उदाहरण—कसणो या कण्हो (कृष्ण), किलिट्ठ (क्लिष्ट), सिलिट्ठं (श्लिष्ट), रअणं (रत्न), किरिआ (क्रिया), सारंगो (शार्ङ्ग), सिरी (श्री), हिरा (ह्री), किरीतो (क्रीत), किलंतो (क्लांत), किलेसो (क्लेश), मिलाणो (म्लान), सिविणो (स्वप्न), हरिसो (हर्ष), फरिसो (स्पर्श), अरिहो (अर्ह), गरिहो (गर्ह), पउमं (पद्म), तणुई (तन्वी), लहुई (लघ्वी), जीआ (ज्या)।

स्वर-वर्ण

प्राकृत में ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ऐ और औ, ये स्वर नहीं हैं। आद्य ऋ के स्थान में प्रायः रि होता है। जैसे रिसि (ऋषि)। वृंद के स्थान में वंद्र या व्रंद होता है। ऋकार के पहले व्यंजन रहने से भी कभी-कभी 'रि' होता है। जैसे केरिस (कीदृश)। आद्य ऋ के स्थान में अ, इ, उ भी होते हैं। जैसे अच्छइ (ऋच्छति), इसि (ऋषि), उज्जु (ऋजु)।

ऋ = अ, — कअ (कृत)
,, = इ, — दिट्ठि (दृष्टि)
,, = उ, — पुहवी (पृथिवी)

वृ के स्थान में 'रु', जैसे रुक्खो।

ऐ = ए, — केलास (कैलाश)
,, = अइ, — वइर (वैर)
,, = इ, — सिंधव (सैंधव)
,, = ई, — धीरं (धैर्य)
औ = ओ, — कोमुई (कौमुदी)
,, = अउ, — मउलि (मौलि)
,, = उ, — सुंदेर (सौंदर्य)

संयुक्त वर्ण के पहले ए, ओ ह्रस्व स्वर होते हैं। जैसे तेल्ल (तैल), जोव्वण (यौवन)। संयुक्त वर्ण के पहले दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है। जैसे मग्ग (मार्ग), दिग्घ (दीर्घ), इस्सरो (ईश्वर), पुव्व (पूर्व)। अतएव दीर्घ स्वर के बाद असंयुक्त वर्ण रहता है। यदि दीर्घ स्वर बना रहा, तो उसके बाद के संयुक्त वर्ण के एक वर्ण का लोप होता है। जैसे ईसरो (ईश्वरो), जीहा (जिह्वा)।

रेफ से संयुक्त व्यंजन वर्ण के पहले, और ऊष्म-वर्ण से संयुक्त य, र, व के पहले ह्रस्व स्वर प्रायः दीर्घ हो जाता है। जैसे कातुं (कर्तुम्), आस (अश्व)। कभी-कभी दीर्घ न होकर ह्रस्व ही रह जाता है; परंतु तब उसके आगे अनुस्वार का आगम होता है। जैसे दंसण (दर्शन), फंस (स्पर्श), अंसु (अश्रु)। जब अनुस्वार नहीं होता, तो र, स, ह के पहले का स्वर दीर्घ होता है। जैसे दाढ़ा (दंष्ट्रा), सीह (सिंह), सारिच्छ (सदृश)।

असंयुक्त व्यंजन के पहले का दीर्घ स्वर कभी-कभी ह्रस्व हो जाता है; परंतु तब उस असंयुक्त व्यंजन का द्वित्व हो जाता है। जैसे एव्वं (एवं), जोव्वण (यौवन), तेल्ल (तेल), पेम्म (प्रेमन्)। अकार के स्थान में

आकार—जैसे पाअड (प्रकट), माणसिणी (मनस्विनी)। अकार के स्थान में एकार—जैसे सेज्जा (शय्या), तेरह (त्रयोदश), अच्छेरं (आश्चर्य), पेरंत (पर्यंत)। अ के स्थान में इ—जैसे पिक्क (पक्व), मज्झिम (मध्यम), कइम (कतम)। अ के स्थान में ओष्ठ वर्णों के साथ उ—जैसे पुलोएति (प्रलोकयति), सव्वणु (सर्वज्ञ)। आ के स्थान में इ—जैसे जंपिमो (जल्पिमः)। इ के स्थान में उ, यदि पीछे कोई उ रहे—जैसे उच्छु (इक्षु)। इ के स्थान में द्वित्वीकृत वर्णों के पहले ए—जैसे णेड्ड (नीड), एत्थ (इत्था), गेज्झ (गृह्य), णेद्दा (निद्रा)। इकार के स्थान में अकार—जैसे पहो (पथिन्), हलद्दा (हरिद्रा), पुहवी (पृथिवी), दोहाइअ, दुहाइअ (द्विधाकृतम्)। ई के स्थान में ए—जैसे एरिसो (ईदृश)। उ (आदि-वर्ण में) के स्थान में अ—यदि उसके ठीक पीछे का वर्ण उ हो—जैसे गरुअ (गुरुक)। उ के स्थान में इ—जैसे पुरिस (पुरुष)। उ के स्थान में ओ (द्वित्वीकृत वर्णों के पहले)—जैसे मोग्गर (मुद्गर), पोत्थक (पुस्तक)। ऊ के स्थान में ओ—जहाँ उ के पीछे संयुक्त वर्ण असंयुक्त किया गया हो, वहाँ ओ दीर्घ होता है—जैसे तांबूल से तंबुल्ल, तंबोल्ल, तंबोल। ऊ के स्थान में ए—जैसे णेउर (नूपुर)। ऊ के स्थान में उ—जैसे महुअ (मधूक) ऊ के स्थान में अ—जैसे दुअल्ल (दुकूल)। ए के स्थान में इ—इण (एन), विअणा (वेदना), दिअर (देवर)। ओ के स्थान में उ—अन्नुन्न (अन्योन्य)।

स्वर-लोप—

आद्यस्वर—रण (अरण्य), पि (अपि), ति (इति), व (इव)।

अंत्य-स्वर—पिउस्सिआ (पितृष्वष्टका), खु (खलु), धिया (दुहिता)।

मध्यागम—

पेरंत (पर्यंत), अच्छेर (आश्चर्य)

संकोच—

लोण (लवण), ओहल (उलूखलं), णोमाल्लिया, (नवमल्लिका), बोर (बदर), ओहास (अवहास)।

स्थितिपरिवृत्ति वा वर्ण-विपर्यय—

कणेरू (करेणु), आणालं (आलानम्)।

संधि

प्राकृत में, शब्दों के अंत में, व्यंजन न रहने के कारण संधि की जटिलता कम है; परंतु जिन अंत्य वर्णों का लोप हो गया है, वे पीछे के शब्द के आदि में स्वर-वर्ण रहने से कभी-कभी दिखलाई देते हैं। जैसे एकमेकं (एकैकम्)। समास में प्रायः अंत्य व्यंजन लुप्त रहता है। जैसे दुसह (दुःसह)। परंतु कभी रह भी जाते हैं। जैसे, णिक्कलंका (निष्कलंका)। समास में स्वरसंधि प्रायः होती है। जैसे कवींद (कवींद्र), कुंतलाहिअसुअं (कुंतलाधिपसुताम्), राअ+इसि=राएसि (राजर्षि)। कभी-कभी संधि नहीं भी होती। जैसे पूआअरिह (पूजार्ह)।

यदि समास में उत्तर पद के आदि में 'ई' या 'ऊ' हो, और उसके बाद संयुक्त वर्ण, तो पूर्व-पद के अंत्य स्वर के साथ उस ई या ऊ की संधि होती है। कभी-कभी संधि में एक स्वर का लोप भी हो जाता है। यथा पाइक्क= पाअ इक्क (पादातिक)। ण (न) के अ के साथ पर-पद के आद्य स्वर की संधि होती है। जैसे णत्थि (नास्ति)।

शब्द-रूप

प्राकृत में द्विवचन नहीं है। शब्दों को नीचे लिखी श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—(१) अकारांत, (२) आकारांत, (३) इकारांत, (४) ईकारांत, (५) उकारांत, (६) ऊकारांत, (७) संस्कृत ऋकारांत शब्द से बने हुए शब्द और (७) संस्कृत-व्यंजनांत शब्द ज शब्द। संस्कृत ऋकारांत शब्द प्रायः अंत में 'अर' वा 'आर', युक्त हो जाते हैं। अधिकांश संस्कृत व्यंजनांत शब्दों के अंत्य व्यंजन का लोप हो जाता है। परंतु किसी-किसी व्यंजन-शब्द के अंत्य व्यंजन के साथ अ या आ का योग भी होता है। जैसे दिशा (दिश्)। व्यंजनादि प्रत्यय परे रहने से उसके पहले एक स्वर का आगम होता है, जैसे राअ+सु=रएसु (राजसु)। परंतु स्वरादि प्रत्यय परे रहने से प्रायः संस्कृत-रूप ही रह जाता है, केवल प्राकृत के नियम के अनुसार ध्वनियों का परिवर्तन होता है। ब्रह्मण्य, विज्ञ, यज्ञ और कन्यका के ण्य, ज्ञ तथा न्य के स्थान में, विकल्प में, ञ्ञ होता है, जैसे बह्मञ्ञं या बह्मणं, विञ्ञो या विणो, जञ्ञो या जण्णो, कञ्ञका या कणका।

शौरसेनी

ऊपर महाराष्ट्री-प्राकृत के ध्वनि-परिवर्तनों के नियम दिखाए गए हैं। अब शौरसेनी के नियम दिए जाते हैं

शौरसेनी भाषा में अनादि अयुक्त त के स्थान में द तथा थ के स्थान में ध होता है। जैसे गच्छदि (गच्छति), कधेहि (कथय)। क्त्वा प्रत्यय के स्थान में इअ होता है जैसे करिअ (कृत्वा)। कृ तथा गम् धातुओं के उत्तर क्त्वा प्रत्यय के स्थान में दुअ होता है। जैसे कदुअ (कृत्वा), गदुअ (गत्वा)। करिअ, गमिअ भी होते हैं।

क्लीवलिंग जस् तथा शस् विभक्तियों के स्थान में, विकल्प में, णि होता है, और णि होने से पूर्व-स्वर दीर्घ हो जाता है। जैसे जलाणि, जलाइँ (जलानि)। ब्राह्मण्य, विज्ञ, यज्ञ और कन्यका के ण्य, ज्ञ तथा न्य के स्थान में, विकल्प में, जैसे बह्मञ्ञं वा बह्मण्णं, विञ्ञो या विण्णो, कञ्ञका या कण्णका होता है, वैसे ही यहाँ भी। तिङंत-प्रत्यय पीछे रहने से भू-धातु के स्थान में भो आदेश होता है। जैसे भोदि (भवति); लृट् में नहीं होता, जैसे भविस्सदि (भविष्यति)। दा धातु के स्थान में दे आदेश होता है। पर लृट् में नहीं। जैसे देइ (ददाति), दईस्सं (दास्यामि)। कृ का कर, स्था का चिट्ठ, स्मृ का सुमर, दृश् का पेक्ख और अस् का अच्छ आदेश होता है। जैसे करेदि (करोति), चिट्ठदि (तिष्ठति), अच्छदि (अस्ति), सुमरेदि (स्मरति), पेक्खादि। अस्ति के स्थान में अत्थि होता है। लृट् के उत्तम पुरुष के एक वचन में, मिप् के स्थान में, "स्सं" होता है। जैसे गमिस्सं (गमिष्यामि)। एव के स्थान में जेव्व आदेश होता है। इव का विअ हो जाता है। अस्मद्-शब्द की प्रथमा के बहुवचन में, विकल्प में, वअं, अम्हे वयम्) रूप होते हैं। सर्वनाम-शब्दों की प्रथमा के एकवचन के स्थान में, विकल्प में, "स्सिं" होता है। जैसे सव्वस्सिं, सव्वस्सि (सर्वस्मिन्)।

कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में धातु परस्मैपदी होती है। जैसे करिअदि (क्रियते), गमिअदि (गम्यते)। धातु के उत्तर विकल्प में ए होकर विभक्ति लगती है, जैसे करेदि, करोदि, वावुडो (व्यापृत), पुड्डो या पुत्तो (पुत्र), गिद्धो (गृद्ध), सव्वण्णो (सवज्ञ), इंगिदो (इंगित), इत्थी (स्त्री), अच्छरिअं (आश्चर्य)। दोला, दंड तथा दशन अविकृत रहते हैं। इसके सिवा जो कुछ होता है, वह महाराष्ट्री के न्याय से।

अकारांत शब्दों का रूप

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	पुत्तो	पुत्ता
कर्म	पुत्तं	पुत्ता, पुत्ते
करण	पुत्तेण	पुत्तेहिं, पुत्तेहि
संप्रदान	पुत्ताओ, पुत्तण	पुत्ताण, पुत्ताणं
अपादान	पुत्ताओ *	पुत्तेहिंतो, पुत्तेसुंतो पुत्ताहिंतो, पुत्तासुंतो
संबंध	पुत्तस्स	पुत्ताण, पुत्ताणं
अधिकरण	पुत्ते, पुत्तम्मि	पुत्तेसु, पुत्तेसुं
संबोधन	पुत्त	पुत्ता

इकारांत और उकारांत शब्दों के उत्तर शस् के स्थान में णो आदेश होता है। जैसे अग्गिणो, वाउणो। ङस् के स्थान में, विकल्प में, णो होता है। जैसे अग्गिणो। जस् के स्थान में ओकार आदेश होता है; पर इ, उ दीर्घ हो जाते हैं, जैसे अग्गीओ, वाऊओ। विकल्प में णो भी होता है; तब इकार, उकार दीर्घ नहीं होते। टा का णा हो जाता है, जैसे अग्गिणा। सु, भिस् और सुप् परे रहने से अंत्य स्वर दीर्घ हो जाता है।

हस्-धातु के लट् में रूप—

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	हसइ, हसए, हसेइ	हसन्ति
म० पु०	हससि, हससे	हसह, हसित्था, हसथ
उ० पु०	हसामि, हसेमि	हसामो, हसामु, हसाम हसिमो, हसिमु, हसिम

भू-धातु के लृट् में रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	होहिइ	होहिन्ति
म० पु०	होहिसि	होहिही, होहित्था
उ० पु०	होस्सं, होहामि, होस्सामि, होहिमि	होस्साम, होहामो, होहित्था, होस्सामु, होहामु, होहिसु, होहामो, होहाम, होहिम, होहिस्सो, होस्साम

नलिनीमोहन सान्याल

* महाराष्ट्री में पुत्तादो, पुत्तादु, पुत्ताहि और पुत्ता होता है

निर्माण
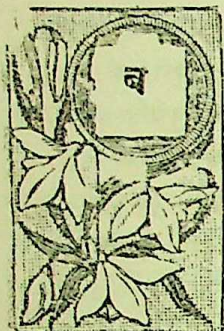
बरगड़-स्टेशन से दो मील पर भीमा-नदी के किनारे एक ऊँचा टीला है, जिस पर एक छोटा-सा बँगला बना हुआ है। इस बँगले के हाते में एक छोटा-सा नज़रबाग़ है, जिसकी हरियाली तथा रंग-बिरंगे फूल देखकर चित्त को विचित्र शांति प्राप्त होती है। बँगले के नीचे ही नदी शांतिदायक कलरव करती हुई बहती है। उसके उस पार एक सघन वन दिखाई देता है, जिसमें सागौन, साल, बाँस आदि के बड़े-बड़े पेड़, और उनके नीचे हरी-हरी लताएँ प्राकृतिक शोभा की छटा दिखला रही हैं। बँगले के बरामदे में बैठकर यह कृत्रिम उपवन और स्वाभाविक वन-श्री देखते ही बनती है। घंटों जी नहीं ऊबता।

इस बँगले में आजकल रेलवे-विभाग के असिस्टेंट इंजीनियर मि० बहरामजी और उनकी नववधू रुक्माबाई गृहस्थी का अपूर्व सुख भोगते हैं। दोनों तरुण और शरीर से भी स्वस्थ हैं। इंजीनियर साहब की आमदनी भी अच्छी है; मासिक वेतन के सिवा ठेकेदारों से अच्छा नज़राना भी मिल जाता है। इसके सिवा बहरामजी के पिता आबकारी के ठेकेदार रहकर अच्छी संपत्ति छोड़ मरे हैं। सारांश यह कि बहरामजी को किसी बात की कमी नहीं है, और उनका जीवन परम सुखमय हो सकता है। यदि आपको किसी बात की चिंता है, तो केवल इसकी कि जब आप दौरे पर जाते हैं, तो रुक्माबाई को अकेले ही इस एकांत स्थान में रहना पड़ता है। अभी दोनों का विवाह हुए बहुत दिन नहीं हुए। परस्पर दोनों का प्रेम अगाध है—दोनों को दो शरीर एक प्राण समझिए।

सायंकाल हो गया है। पूर्व दिशा में निशानाथ सोलहों कलाओं सहित मानो संसार की अपूर्णता पर हँस रहे हैं। उनकी किरणें भीमा के वक्षःस्थल का चुंबन कर रही हैं। उस पार वन में सन्नाटा है। कभी-कभी वन्य पशुओं के चलने-फिरने से सूखे पत्ते उनके पैरों के नीचे दबकर चरमर कर उठते हैं। शीत से बरामदे में बैठना कष्टकर हो जाने के कारण दंपति गोल कमरे में जा बैठे हैं। बहरामजी एक लंबी आराम-कुर्सी पर लेटे सिगरेट पीते हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे हैं। मालूम होता है, बहुत थके हैं। कभी-कभी आँख मूँद लेते हैं। समीप ही कोच पर रुक्माबाई बैठी गुलूबंद बुन रही हैं।

इस शांति एवं प्रेममय भवन में कहीं भी अशांति या चिंता का कोई चिह्न ऊपर से नहीं दिखाई देता। पर यदि रुक्माबाई का चेहरा ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो कुछ संदेह होता है कि उसके कोमल हृदय में शांति नहीं है, बल्कि किसी-न-किसी प्रकार की चिंता उसे क्षुब्ध किए हुए है। कभी-कभी इस रमणी की उँगलियाँ निःस्तब्ध हो जहाँ-की-तहाँ रह जाती हैं, तथा उनमें कुछ कंपन होने लगता है। ऐसी अवस्था में वह भाव-पूर्ण नेत्रों से कभी तो अपने पति की ओर देखती है, और कभी घड़ी की ओर। इसी तरह बैठे-बैठे ९ बज गए। घड़ी ने ९ बार टन-टन करके फिर टिक-टिक करना शुरू कर दिया।

९ बजते ही रुक्माबाई के हाथों से अधबुना गुलूबंद कोच पर गिर पड़ा, और वह कनखियों से पति की ओर निहारने लगी। बहरामजी उसी पत्र को हाथ में लिए धुएँ के बादलों का निर्माण कर रहे हैं। आँखें खुली हुई हैं। अभी तक उन्हें बंद किए थे, इससे अपनी पत्नी के चिंता-पूर्ण कटाक्ष नहीं देख सके थे। अब तो रुक्माबाई के चेहरे से भी चिंता की लहर जाती रही, और नेत्रों में एक अलौकिक ज्योति झलकने लगी; अधर-पल्लवों पर भी मृदुलता का आभास दिखाई देने लगा। वे कुछ-कुछ विकसित हो गए, और उनमें से संतोष-प्रदर्शक दीर्घ श्वास निकला। ऐसा प्रतीत होता था कि अब उसकी चिंता का भार हलका हो गया। वह मन-ही-मन गुनगुनाने लगी—"आह! आज रात को नहीं। कैसी अपूर्व शांति है।" इस समय युवती के हर्ष का ठिकाना न था।

रुक्मा ने ऊन, सुई आदि सब सामग्री उठाकर एक संदूक़ में बंद कर दी, और उसे समीप की एक छोटी मेज़ पर रख दिया। इसके बाद उसने पति से मृदु स्वर में कहा—"आपके विनोदार्थ कुछ गाऊँ-बजाऊँ?" बहरामजी इस प्रश्न को सुनकर चौंक पड़े। आराम-कुर्सी पर तनकर बैठ गए, और कहने लगे—"गाऊँ-बजाऊँ!

नहीं, अभी तुम्हारा कंठ इस परिश्रम के योग्य ही कहाँ है। इसके सिवा मुझे बाहर भी तो जाना है।"

पति के इन आधे दर्जन शब्दों से उस युवती की नवांकुरित आशा-लता पर मानो तुषार पड़ गया। तो भी उसने कलेजा मसोसकर कहा—"बाहर जाना है? ऐसे पानी में! आज न जाइए, तो—"

"नहीं-नहीं, पानी क्या करेगा? बरसाती पहन लूँगा। सोने के पहले कुछ टहल आऊँ। हाथ-पैर अकड़-से गए हैं।"

युवती समझ गई कि हाथ-पैर का अकड़-सा जाना निरा बहाना है। जो मनुष्य मोटर-साइकिल पर ४० मील आ-जा चुका है, उसे टहलने की ज़रूरत नहीं। पर विवाद कौन बढ़ावे; कहीं रूठ गए, तो?

रुक्माबाई ने लंबी साँस खींची, संदूक खोलकर गुलूबंद निकाला, और नीचा सिर करके बुनने लगी। बहरामजी उसके विशाल ललाट का चुंबन करके चोर की तरह बाहर निकले। उन्हें अपनी प्रेयसी से छल करने के कारण बहुत लज्जा थी। पर करें, तो क्या करें। एक दुर्व्यसन में फँसकर अपनी संकल्पशक्ति तो खो बैठे थे, बुरी टेंव ने उन्हें अपना गुलाम बना लिया था। वह जैसा नाच नचाती, वैसा ही नाचना पड़ता था।

इधर चंद्रवदनी रुक्मा का मुखमंडल पीला पड़ गया—कपोलों का गुलाबी रंग फीका पड़ गया। विषाद की रेखाएँ उसके विशद ललाट पर स्पष्ट दिखाई देने लगीं। उसका मन चिंतारूपी सरोवर में मानो डूबने-उतराने लगा। वह मन-ही-मन कहने लगी—"गत सप्ताह में तीन बार, और आज तीन दिन भी नहीं हुए—दो बार! हा विधाता, क्या मेरी सब आशा, मेरा सब प्रेम-पूर्ण प्रयत्न यों ही गया? क्या मेरी सब चेष्टा, मेरे सब उद्योग निष्फल हुए?" ऐसा कह उसने अपनी लंबी भुज-लताओं से अपना मुँह ढक लिया। क्षण-भर के लिये उसका उभरा हुआ वक्षःस्थल उठने-बैठने लगा। वह मन-ही-मन रोने और कहने लगी—"बस, अब हो चुका—सब प्रयत्न व्यर्थ गया! अब यह दिनों-दिन गिरते ही जायँगे। इस शराबख़ोरी से सैकड़ों की जो दशा हुई है, इनकी भी वही होगी। हम लोग दर-दर भीख माँगते फिरेंगे। मैंने तो बहुत प्रयत्न किया; यह इतने दिन सम्हले भी रहे; पर मालूम होता है, अब फिर कुसंग में पड़ इनका अधःपतन हो गया। हे अग्निदेव, तुम्हीं अब मुझ-जैसे अशरण की शरण हो।"

रुक्मा को विश्वास हो गया कि बहरामजी घूमने नहीं, कलारी गए हैं, और अपने नीच मित्रों के साथ बैठकर प्याले-पर-प्याले उड़ावेंगे। यह उनकी पुरानी लत है। रुक्मा का पति पर अगाध प्रेम है। विवाह के पहले उसके पिता ने उसे बहुत रोका था कि ऐसे आदमी से संबंध जोड़ने से तू सुखी न रह सकेगी। इसलिये यह विचार छोड़ दे। पर प्रेम ने उसे अंधा कर दिया। बाप ने समझाया कि बहुत-से गुण तो बहराम में अच्छे हैं—पर एक बहुत भारी दोष है: उसका हृदय बहुत निर्बल है, जिससे वह दूसरों के कहने में जल्द आ जाता है। उसकी संगति भी बहुत बुरी है, और वह इस बात को स्वीकार करता है कि मेरे मित्र अच्छे नहीं हैं। पर उसका हृदय इतना कमज़ोर है कि वह न तो इन लोगों से अलग होता और न शराब की मात्रा कम करता है।

पर रुक्मा को अपने रूप, यौवन, सतीत्व और बहरामजी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का इतना गर्व था कि वह समझती थी कि पति को ठीक मार्ग पर लाना मेरे लिये कठिन न होगा। पिता को वह यही उत्तर देती थी कि बहरामजी को त्यागने से मेरा सारा जीवन व्यर्थ हो जायगा, और इसमें संदेह नहीं कि मेरे ऐसा करने से वह निराश हो और भी शीघ्र बिगड़ जायँगे। जब मैं उनके साथ दिन-रात रहूँगी, और अपने प्रेम से उन्हें बाँध लूँगी, तो वह अपने इष्ट-मित्रों का फिर नाम भी न लेंगे।

रुक्माबाई ने इसी उच्च उद्देश्य से बहरामजी के ही साथ, पिता की इच्छा के विरुद्ध, विवाह किया था। विवाह हो जाने पर दिन-रात वह यही उद्योग करती थी कि फिर वह कुसंगति में न पड़ने पावें। नव प्रणय-सूत्र से बँधे हुए वह कई महीने तो अपने घर को ही स्वर्ग समझता रहा, और बाहर जाना बंद कर दिया। उसके पुराने मित्र उसे तरह-तरह के ताने देते, और कहते कि बहरामजी तो अब अपनी बीबी के हाथ बिक चुका है। उसकी आज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता। पर बहरामजी उनके ये व्यंग्य सुनकर चुप रह जाता। जब तक पत्नी का आकर्षण प्रबल रहा, तब तक तो उसके मित्रों की एक न चली। पर मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि उसे अच्छी-से-अच्छी वस्तु भी निरंतर के सहवास से नीरस-सी मालूम पड़ने लगती है। वह सुख-सामग्री में भी परिवर्तन चाहता है। उसे स्त्री की संगति भी चाहिए, और समान वय तथा

शीलवाले मित्रों की भी। निदान बहरामजी अपने मित्रों की संगति के लिये तरसने लगा। उसकी इच्छा इतनी प्रबल हो गई कि वह अपनी प्रेममयी पत्नी को भी धोखा देकर घूमने के बहाने शाम को कभी-कभी बाहर जाने लगा।

अभी तक तो रुक्मा को संदेह ही था; पर आज उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि मेरा सब उद्योग निष्फल हुआ। बहरामजी फिर उसी पुराने कंटकमय पथ का पथिक बन गया। वह इसी प्रकार बिसूरती और अपने भाग्य को धिक्कारती रही कि इतने में साढ़े १० बज गए। वह जानती थी, अभी उसके आने में डेढ़-दो घंटे की देर है। इतने में किसी ने खिड़की पर तीन बार खट-खट-खट किया। रुक्मा पति के जल्द आने के लिये अग्निदेव को धन्यवाद देती हुई दरवाज़ा खोलने के लिये दौड़ी। दर-वाज़ा खोलकर वह वहीं खड़ी हो गई कि पति की भीगी हुई बरसाती उतारकर जल्द खूँटी पर टाँग दूँगी; किंतु उसे मालूम हुआ कि दरवाज़े से थोड़ी दूरी पर जैसे दो मनुष्य आपस में बातचीत कर रहे हैं। पानी ख़ूब ज़ोर का बरस रहा था। बातचीत साफ़ नहीं सुनाई देती थी। इतने में बातचीत करनेवाले दरवाज़े की ओर आते हुए मालूम पड़े। पति के साथ कोई दूसरा पुरुष है, यह जान कर रुक्मा को बड़ा दुःख हुआ। वह मन मारकर दरवाज़े से हट गई, और भीतर जाकर कमरे में खड़ी हो गई। उसने देखा कि द्वार पर बहरामजी हाथ बढ़ाए खड़ा कह रहा है—"स्वागत प्रिय मित्र, स्वागत!! आप भीतर चलें। ऐसी वर्षा में मैं आपको अपने दरवाज़े से कैसे लौटने दूँ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आपको थोड़ी देर के लिये अवश्य ठहरना होगा।" फिर भीतर की ओर मुँह फेरकर, बहरामजी ने पुकारकर कहा—"प्यारी रुक्मा, यह देखो, मेरे परम मित्र बरजोरजी दरवाज़े पर खड़े हैं, और तुमसे बिना मिले ही जाने को कहते हैं। आकर इनका स्वागत करो, और भीतर ले चलो। मेरी नहीं मानते, पर तुम्हारी ज़रूर सुनेंगे।"

बरजोरजी का नाम सुनते ही रुक्मा की छाती धड़-कने लगी। वह जानती थी, बहरामजी को कुपथ में ले-जानेवाला यही बरजोरजी है। पर पति के बुलाने पर कैसे इनकार करे। निदान नीचा सिर किए हुए वह दरवाज़े पर आई, और बिना ऊपर की ओर देखे उसने बरजोरजी को प्रणाम किया। बहरामजी बोला—"देखो रुक्मा, यही वह बरजोरजी हैं, जिनके बारे में मैं रोज़ कहा करता था।" और मित्र, "यही मेरी वह रुक्मा है, जो अब मेरे घर की स्वामिनी है।"

इसके बाद रुक्मा लौटकर कमरे में जा बैठी। उसे इतनी रात को बरजोरजी का आना बहुत बुरा लगा; पर करती क्या।

दोनों मित्र भीतर आए। दोनों ने भीगी हुई बरसाती उतारकर खूँटियों पर टाँग दीं। फिर आगे बढ़कर बर-जोरजी ने रुक्मा की ओर देखा, और मन-ही-मन उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर बोला—

"श्रीमतीजी, इस बेमौक़े आकर मैंने जो आपको कष्ट दिया है, इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। मैं ऐसी धृष्टता कदापि न करता। पर कई महीनों के बाद आज रास्ते पर बहरामजी से मेरी भेंट अकस्मात् हो गई, और वह मुझे यहाँ घसीट लाए। आज ही मैं बहुत दिनों के बाद स्वदेश लौटा हूँ। अपराधी मैं नहीं हूँ, बहरामजी मुझे खींच लाए हैं। आप क्षमा कीजिए।"

बरजोरजी और कुछ कहना ही चाहता था कि बहरामजी ने उसकी बात काटकर कहा—"बस, बहुत हुआ भई। यह सब कहने की ज़रूरत नहीं। रुक्मा आपके आने से बहुत ख़ुश है।" फिर रुक्मा से कहा—"ज़रा अँगीठी तो तैयार कर दो।" और बरजोर, "तुम यहाँ आकर बैठो—लो यह सिगरेट का डिब्बा। भई, हम लोगों ने शराब तो नहीं पी; पर एक तो आप कई महीनों में आए हैं, दूसरे जाड़ा बहुत है। फिर आपको ऐसे पानी में जाना है। इसलिये एक पैग बरांडी का ले ही लीजिए। गृहस्थी में ज़रूरत बनी ही रहती है। एक बोतल रक्खी है।" रुक्मा, "ज़रा उस अल्मारी से बरांडी की बोतल तो ला दो। लो, यह चाबी; और हाँ, प्याले भी लिए आना।"

रुक्मा ने बोतल और प्याले लाकर रख दिए।

बरजोरजी—भई बहराम, उनको इतनी तकलीफ़ क्यों दे रहे हो। पीने-पिलाने की बात छोड़ो। मैं भी घर जाता हूँ—तुम लोग आराम से सोओ।

बहरामजी—तकलीफ़! यह कैसे? क्यों रुक्मा, क्या तुमको इनके आने से तकलीफ़ हुई?
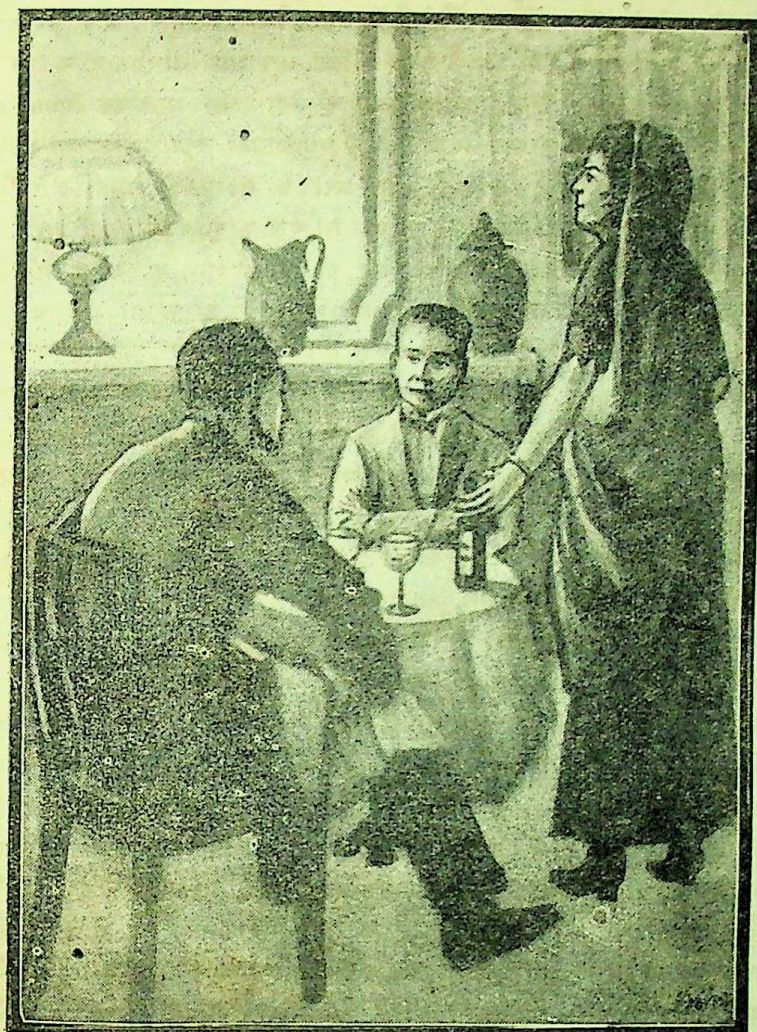
"रुक्मा न बोतल और प्याले लाकर रख दिए"

रुक्मा कोई जवाब न देकर स्टोव पर काफ़ी तैयार करने लगी। चुपचाप वह अपने पति की ओर कनखियों से देखती जाती थी। उसे वह बहुत उत्तेजित-सा मालूम होता था—चुप नहीं बैठ सकता था। साथ ही बरजोरजी का नाम सुनकर उसकी पूर्व-स्मृति जागृत हो उठी। विवाह के पहले उसके पिता ने इसी बरजोरजी के बारे में कहा था कि इसी ने बहरामजी के सदृश सज्जन को कुपथ में डाला है, और वह उसका सर्वनाश किए बिना न रहेगा। जब तक वह इस दुनिया को अपने अपवित्र जीवन से कलुषित करता रहेगा, मुझे शांति न मिलेगी। उसे रुपए की कमी नहीं है, और न उस पर किसी का अंकुश ही है। वह नर-योनि में पूरा राक्षस है। उसने बहरामजी को दो बार पाप के गड्ढे में पटका है, और फिर भी पटकेगा। बहराम के दुर्बल हृदय पर बरजोरजी का दबाव पड़े बिना नहीं रह सकता। रुक्मा ने उस समय तो अपने पिता के इन वचनों पर ध्यान नहीं दिया था; पर पीछे उसे मालूम हो गया कि वह सच कह रहे थे। बरजोरजी का अद्भुत सौंदर्य स्त्री-पुरुष, दोनों पर जादू का-सा काम करता था, और वह अभी तक न-जाने कितने घर बिगाड़ चुका था। रुक्मा ने काफ़ी का प्याला बरजोरजी के पास रखते हुए एक बार उसके चेहरे की ओर भर-नज़र देखा। देखते ही उसके हृदय में एक विचित्र भाव उत्पन्न हुआ—अपने पति के नाश करनेवाले की ओर जो घृणा होनी चाहिए थी, वह न हुई!

इसी समय साढ़े १२ बजे। बरजोरजी घर जाने को उठ खड़ा हुआ। बहरामजी ने बहुत आग्रह किया कि पानी ज़ोर से बरस रहा है, यहीं सो जाओ; पर उसने स्वीकार न किया, और हँसते-हँसते दोनों से बिदा माँगी। इस वक़्त दोनों मित्र लैंप के सामने खड़े थे। दोनों के चेहरों पर प्रकाश पड़ रहा था। रुक्मा की नज़र दोनों पर पड़ी। उसके मन में आया कि रूप में मेरा पति बरजोरजी के सामने कुछ नहीं है। पर शीघ्र ही वह सँभल गई, और मन-ही-मन अफ़सोस से सोचने लगी, इस दुष्ट की ओर देखने से मेरा हृदय ऐसा क्षुब्ध क्यों हो गया, न-जाने इसकी आँखों में ऐसी आकर्षण-शक्ति कहाँ से आ गई है। अग्निदेव, रक्षा करो।

रुक्मा इस तरह सोच ही रही थी कि बरजोरजी उससे हाथ मिलाकर बाहर चल दिया। बहरामजी भी उसके साथ-साथ पहुँचाने गया। इस वक़्त रुक्मा का हाल विचित्र

हो रहा था। उसे तन-बदन की सुध नहीं थी। बरजोरजी के हस्त-स्पर्श से उसके शरीर में बिजली-सी दौड़ गई थी—रोमांच हो आया था। उसे आश्चर्य यह था कि पर पुरुष के स्पर्श में यह शक्ति कैसी! सद्भावों को नष्ट करनेवाले ये अधम भाव कैसे!! रुक्मा कुछ देर इसी प्रकार विचलित रही; पर पति के लौटते-लौटते उसने अपने को सम्हाल लिया। बहरामजी ने आकर पूछा—क्यों रुक्मा, बरजोरजी कैसा रँगीला जवान है?

रुक्मा—हाँ, चालाक तो पूरा है।

बहराम—यह तो है; पर सौंदर्य की बात क्यों नहीं कहतीं?

रुक्मा—होगा, मुझे इससे क्या?

बहराम—वाह, तुमको क्या हुआ है? क्या उसे देखकर तुमने अपना हृदय नहीं खोया? क्या ऐसा भी कोई रमणी-हृदय है, जो उसे देख मुग्ध न हो जाय? आजकल सभ्य स्त्री-समाज में तो वह कन्हैया समझा जाता है; सभी उसे बरजोर न कहकर चितचोर कहती हैं।

रुक्मा—तुम्हारे इस मित्र को देखकर मैं प्रसन्न नहीं हुई। कारण पूछते हो? मैं कारण नहीं जानती—अपने हृदय के भाव को जानती हूँ।

क्षण भर चकित-सा रहकर बहरामजी बोला—रुक्मा, यह क्या कहती हो? बरजोरजी की भेंट से एक स्त्री का प्रसन्न न होना बड़े अचरज की बात है। अभी तुमने उसे पहचाना नहीं। वह बहुत ही अच्छा आदमी है। उसने मुझे कैसी-कैसी आफ़तों से बचाया है। अभी विलायत से लौटा है, अपने ही पड़ोस में रहेगा।

रुक्मा कुछ न बोली। बहरामजी ने मुँह बनाकर कहा—न-जाने तुम्हें यह मनहूसी कहाँ से आ गई है। क्या बैठे-बैठे थक गई हो? तो चलो, सोओ।

रुक्मा—बरजोरजी को लौटे कितने दिन हुए? क्या तुमसे उसकी भेंट आज ही हुई है?

बहरामजी—डेढ़ महीना हुआ, क्यों?

रुक्मा ने इस 'क्यों' का कोई उत्तर न दिया। बहरामजी ने लैंप की रोशनी कम कर दी थी, नहीं तो रुक्मा की दशा देख उसे बड़ा आश्चर्य होता। रुक्मा को अब पूरा पता लग गया कि बहरामजी शाम को इसी दुष्ट से मिलने जाया करता है, और पुरानी लत फिर पड़ गई है। 'बरजोरजी अपना सर्वनाश किए विना न रहेगा।' जैसे-तैसे वह पलँग तक पहुँची, और चुपचाप लेट गई। उसकी चिंता और क्षोभ का ठिकाना न था। साथ ही बहरामजी भी बड़ा दुःखी था। वह विवाह के समय अपनी पत्नी से प्रतिज्ञा कर चुका था कि अब कभी शराब न पिऊँगा, और बरजोरजी की अनुपस्थिति में उसने इस प्रतिज्ञा का पालन भी किया था; पर डेढ़ महीने से वह फिर पीने लगा था। वह बहुत लज्जित था, और बार-बार अपने को धिक्कारता भी था; पर न तो बरजोरजी का साथ छोड़ सकता था, और न शराब।

बहरामजी तो थोड़ी ही देर में सो गया; पर रुक्मा को नींद कहाँ! उसके सामने तो सर्वनाश मूर्तिमान् होकर खड़ा था। इसके बाद दो-ही चार सप्ताहों में रुक्मा ने देखा कि पति पर मेरा प्रभाव घटता और बरजोरजी का बढ़ता जाता है। अभी तक बहरामजी जब अधिक पी जाता, तो घर न आता था; पर उसके चेहरे से, उसकी खूराक के घटने तथा अन्य कई बातों से रुक्मा को मालूम हो गया था कि पीने की मात्रा बढ़ती ही जाती है।

बरजोरजी के पास अपार धन था; लोगों को खूब खिलाता-पिलाता और नाच-रंग में बुलाता था। इसी से सब उसे अच्छा कहते और उसकी बड़ी प्रशंसा करते थे। वह इतना चरित्र-भ्रष्ट था कि ठिकाना नहीं। पर धनी पुरुषों के दोष नहीं देखे जाते!

निदान बहरामजी की मात्रा बहुत बढ़ गई। उससे काम होना भी कठिन हो गया। बरजोरजी ने उससे इस्तीफ़ा दिला दिया, और घर ख़र्च के लिये रुपए देने लगा। अस्तु, बहरामजी उसका क्रीतदास-सा बन गया। इससे रुक्मा के हृदय पर बड़ा धक्का लगा, और उसने बरजोरजी से जब बहुत कुछ कहा-सुना, तो उसने बहरामजी को अपने ही यहाँ नौकर रख लिया, तथा उसे दूसरे-दूसरे शहरों में काम के बहाने भेजने और वहाँ बहुत दिनों तक रखने लगा। इस अर्से में वह रुक्मा के घर आता और घंटों बैठता। रुक्मा को तुरंत मालूम हो गया कि इस दुष्ट के हृदय में पाप है। अपनी पापमयी वासना की तृप्ति के लिये ही इसने मेरे पति को अपने चंगुल में फँसाया है। तब तो उस सती की बहुत ही बुरी स्थिति हो गई। यदि बरजोरजी को अप्रसन्न करती है, तो उसके पति पर इस दुष्ट का जो क़र्ज़ है, उसके न दे सकने से वह जेल जाता है; और जो उसे नहीं डाँटती,

तो वह समझूंगा कि यह भी मुझे चाहती है । विकट स्थिति आ गई ।

धीरे-धीरे बरजोरजी की रुक्मा के साथ छेड़छाड़ होने लगी । बहरामजी के बाहर जाने पर वह इसके पास आता, और बड़ा प्रेम दिखलाता—सैकड़ों तरह के प्रलोभन देता, और बहरामजी की निंदा करता । एक दिन वह रात्रि के समय आ पहुँचा, और रुक्मा को बुरी तरह सताने लगा । बोला—आप अपने भाग्य को क्यों ठुकराती हैं ? ऐसे शराबी के पास रहकर आपको क्या सुख मिलेगा ! यदि मैं आज ही उसे नौकरी से निकाल दूँ, तो फिर तुम दोनों की क्या गति हो ?

रुक्मा—आपको शर्म नहीं आती ! बहरामजी आपको भाई समझते हैं, और आप उनके साथ ऐसा विश्वासघात करना चाहते हैं ! उनकी जो गति हुई है, वह भी आप ही के कारण है । क्यों, आपने इसी उद्देश्य से यह सब षड्यंत्र रचा है न ?

बरजोरजी—क्या अब भी इसमें कोई संदेह है ? यदि यह पाप है, बुरा काम है, विश्वासघात है, तो अब आप ही के यौवन-सौंदर्य का परिणाम है । आपको क्या मेरे ऊपर दया नहीं आती ? ख़ैर, मुझ पर न सही ; पर अपने तथा अपने पति पर तो आनी ही चाहिए । मुझे निराश करने से क्या होगा—जानती हो ? बहरामजी पर मेरा १० हज़ार क़र्ज़ है ।

इतना कहकर उसने रुक्मा का हाथ पकड़ना चाहा । उसने घबराकर चीख़ मारी । इतने में खिड़की से कूदकर कोई भीतर आया । बरजोरजी उसे देखते ही बहुत घबराया । रुक्मा उससे लिपट गई, और बार-बार कहने लगी—इस पापी से मुझे बचाओ—बचाओ ।

बहरामजी ने जैसे-तैसे उसे शांत किया ! फिर बरजोरजी की ओर बड़ी घृणा से देखकर कहा—रे शैतान, तेरे ये मनसूबे ? इतने दिन साथ रहकर भी तूने सती को न पहचाना ! मैं बड़ी देर से खड़ा-खड़ा तेरे कलुषित प्रस्तावों, प्रलोभनों और डाँट-डपट को सुन रहा था । हाय, क्या ऐसी सती स्त्री को मेरे-सदृश अयोग्य पति मिलना था ! पर नहीं, वह मेरा इस पाप के गड्ढे से शीघ्र ही उद्धार करेगी । अब तू मुझे अपना मुँह मत दिखला, यहाँ से चला जा—दूर हो मेरी नज़र से—नहीं तो इस तमंचे से तेरा सिर उड़ा दूँगा ।
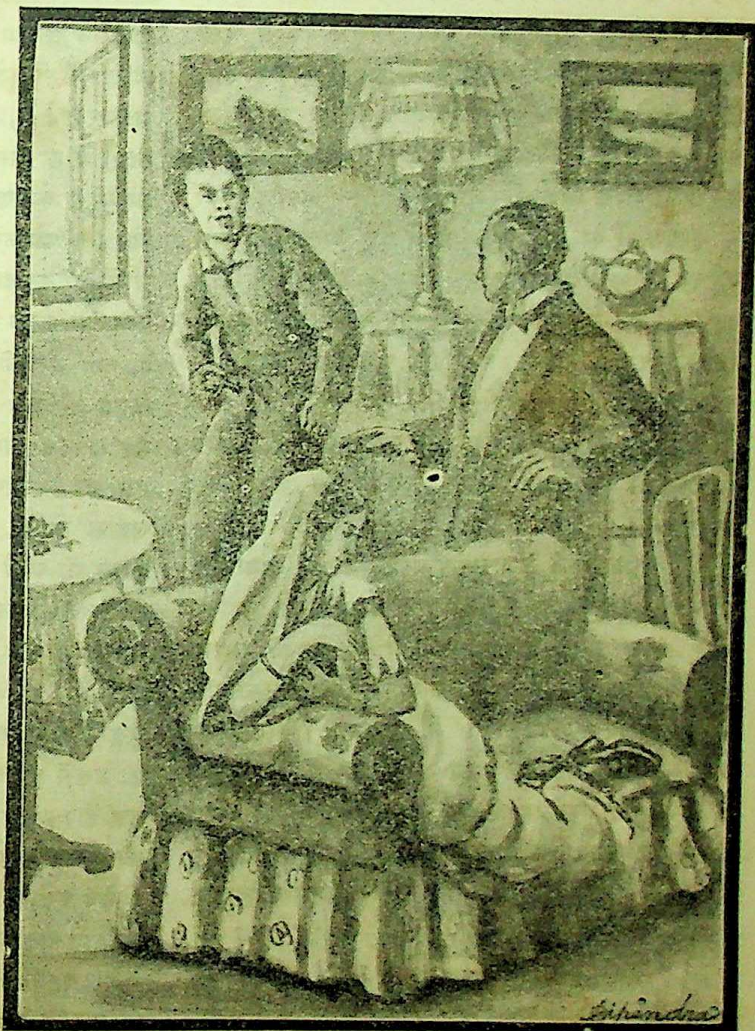
"नहीं तो इस तमंचे से तेरा सिर उड़ा दूँगा"

बरजोरजी—वाह साहब, दस हज़ार की भी कुछ याद है ?

बहरामजी—हाँ, यह ले अपने १० हज़ार।

ऐसा कहकर बहरामजी ने सौ-सौ के कई नोट टेबिल पर बिछा दिए। बरजोरजी उन्हें लेकर अनाप-शनाप बकता हुआ घर से बाहर हुआ।

रुक्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ। ये नोट कहाँ से आए ? वह दिल में बहुत घबराई हुई थी। बहरामजी ने उसकी चेष्टा देखकर हँसकर कहा—रुक्मा, तुम-सरीखी ऐसी निःस्पृह सती का पति चोर नहीं हो सकता। मैं ये नोट चोरी करके नहीं लाया हूँ। देखो, वह बैग ऐसे ही नोटों से भरा है। मेरे मामा जमशेदजी युगंडा रेलवे के ठेकेदार थे। उनको क्या मालूम कि मैं ऐसा अधम, नारकी निकला। विदेश ही में उनकी मृत्यु हो गई। उनके कोई नहीं था—मैं ही उनका वारिस था। मरते वक़्त वह मेरे नाम विल कर गए थे। उन्हीं के वकील ने डेढ़ लाख रुपए आज ही भेजे हैं। इतनी संपत्ति पाकर मैं इस पापी का काम छोड़ सीधे घर आया हूँ। पास पहुँचने पर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि भीतर कोई बात कर रहा है। मैं खिड़की के समीप खड़ा-खड़ा सुनता रहा। अब मुझे मालूम हुआ कि तुम कैसी सती हो, और बरजोरजी कैसा पापी है।

अग्निदेव को धन्यवाद दो कि उस दुष्ट का क़र्ज़ अब मेरे सिर से उतर गया। मेरे हृदय में अब अतुल बल आ गया है।

यह धक्का लगने से सचमुच बहरामजी का कायापलट हो गया। उस रुपए से उन्होंने ख़ूब रोज़गार बढ़ाया, और आज बंबई के करोड़पतियों में उनकी गणना है। रुक्मा को अब कोई और काम नहीं है। उसका सारा समय शराब की पिकेटिंग में जाता है। उसने एक मादक-द्रव्य-निवारिणी सभा खोल रक्खी है। इसमें वे ही स्त्रियाँ भरती होती हैं, जो पुरुष जाति का सुधार करने की प्रतिज्ञा करके आती हैं।

रघुवरप्रसाद द्विवेदी

श्रीमती सरोजिनी नायडू

(पूर्वार्द्ध)

[प्रस्तावना]

मती सरोजिनी नायडू का नाम भारत-भर में सुविख्यात है। भारतीय महिलाओं में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। उत्कृष्ट कवित्व-शक्ति, सराहनीय समाज-सेवा, असीम देश-भक्ति आपके प्रधान गुण हैं। आपकी राज-नीतिक कृतियों के कारण ही भारतीय समाज आजकल आपसे विशेष परिचित है। वास्तव में पिछले कई वर्षों से आप राजनीतिक क्षेत्र में अग्रसर हुई हैं, और अपना संपूर्ण समय राजनीतिक कार्यों में ही लगा रही हैं। परंतु यथार्थ में आपकी कीर्ति का मुख्य कारण आपकी कविता ही है, और यह कीर्ति अंत तक प्रधानतः उसी नींव पर स्थित रहेगी। कुछ लोगों का कहना है कि आपने कवि के कल्पना-मंदिर का परित्याग करके जो राजनीति के कुटिल पथ पर पैर रक्खा है, वह आपकी कविता के हक़ में अच्छा नहीं। इस विषय पर सदा दो सम्मतियाँ रहेंगी। कुछ भी हो, आज यह स्त्री-रत्न भारतीय स्वराज्य-युद्ध में तत्पर है। आपके इस रण में भाग लेने से स्वराज्य-आंदोलन को कितना सहारा मिला, यह कहना अनावश्यक है। यह बतलाना भी व्यर्थ है कि आपने अपने व्यक्तिगत प्रभाव के कारण राष्ट्रीय दलों में एकता तथा उत्साह का कितना संचार किया है, और आप पर राष्ट्रीय दलों की कितनी श्रद्धा है ! हाँ, यह बतलाना उचित है कि इस स्वराज्य-युद्ध में जिस पक्ष का ग्रहण श्रीमती सरोजिनी ने किया है, उसमें कुटिल चालों का काम नहीं है। यह तो खुला युद्ध है। इसमें देश-परायणता, स्वार्थ-त्याग और बलिदान की आवश्यकता है। इस युद्ध में भी श्रीमतीजी का एक विशेष कर्तव्य है। एक स्थल पर आपने लिखा है—

"वीर आत्माएँ जहाँ रण में खड्ग ले जाती हैं,
वहाँ मैं अपना गीत-रूपी पताका ले जाती हैं।"

वास्तव में यही बात है। यह युद्ध केवल अहिंसात्मक युद्ध है। आपके उत्साह-जनक उद्गार केवल छंदोबद्ध ना

हैं। आपके भाषण में हमें कविता का ही आनंद आता है। उसका उद्देश्य प्रोत्साहन-मात्र है। तात्पर्य यह कि राजनीतिक क्षेत्र में भी श्रीमतीजी अपने कवित्व के आदर्श से च्युत नहीं हुईं, ऐसी हमारी धारणा है।

सभी देशों के इतिहास में हम एक ऐसी अवस्था की कल्पना कर सकते हैं, जब कि स्वतंत्रता-युद्ध के लिये प्रत्येक प्राणी की आवश्यकता होती है; प्रत्येक व्यक्ति के लिये देश-सेवा अनिवार्य हो जाती है। यदि श्रीमती सरोजिनी ठीक ऐसी ही अवस्था में अपने कविता के व्यसन को स्थगित करके राजनीति के क्षेत्र में आ गईं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? आश्चर्य की बात तो तब होती, जब उनकी-सी एक देशाभिमानिनी स्त्री ऐसा न करती। इसके पूर्व, अन्य समयों में, अन्य देशों में, अन्य कवियों ने भी ऐसा ही किया है; और फिर उन्हें जब अपने प्रिय व्यसन में लीन होने का अवसर मिला, तो उनकी कविता ने विशेष चमत्कार प्राप्त किया। अस्तु, मतलब यह कि श्रीमती प्रधानतः कवि हैं; और यद्यपि राजनीति में भी उनका महत्त्व-पूर्ण भाग है, तथापि उनका निरूपण विशेषतः कवि की भाँति ही होना चाहिए।

(१)

श्रीमती सरोजिनी का जन्म, दक्षिण-भारत की प्रसिद्ध मुसलमानी रियासत हैदराबाद की राजधानी में, १३ फ़रवरी, सन् १८७९ ई० में हुआ। आपके पिता का नाम श्रीअघोरनाथ चट्टोपाध्याय था। इन्होंने ब्रह्मनगरम् के एक प्राचीन तथा कुलीन ब्राह्मण-वंश में जन्म लिया था। इनके पूर्वज समस्त पूर्व-बंगाल में, अपनी संस्कृतज्ञता तथा योगाभ्यास के लिये, प्रसिद्ध रह चुके थे। सरोजिनी के पिता ने स्वयं बड़ी उच्च शिक्षा पाई थी। उन्होंने सन् १८७७ ईसवी में, स्कॉटलैंड के प्रसिद्ध एडिनबरा-विश्वविद्यालय से, विज्ञानाचार्य (डॉक्टर ऑफ़् साइंस) की उपाधि प्राप्त की थी। तदनंतर जर्मनी के प्रसिद्ध विद्या-केंद्र 'बॉन' में भी बड़ी योग्यता से शिक्षा पाई। इस प्रकार योरप से शिक्षा प्राप्त करके लौटने पर आपने ही हैदराबाद में निज़ाम-कॉलेज की स्थापना की; और जब तक जीवित रहे, शिक्षा के क्षेत्र में ही स्वार्थत्याग के साथ अपना समय व्यतीत करते रहे। श्रीअघोरनाथ चट्टोपाध्याय बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। परोपकार और विज्ञान, ये ही दो आपके व्यसन थे; इन्हीं में आप अपना धन ख़र्च किया करते थे। आपकी लोकप्रियता प्रसिद्ध थी। आपका द्वार सदा, सभी के लिये, खुला रहता था। आपके यहाँ सभी धर्मों के विद्वान् जमा हुआ करते थे। राजा से रंक तक, महात्मा से लेकर गुंडों तक, सभी आपके यहाँ समान-रूप से स्वागत पाते थे। आपकी आत्मा महान् थी; सत्य के अनुसंधान में सदा तत्पर रहते थे। उनका जीवन बड़ा पवित्र था। बड़े भारी वैज्ञानिक होकर भी आपने कवि-हृदय पाया था। अस्तु, सरोजिनी ने कवित्व का अंश केवल अपने पिता से ही नहीं प्राप्त किया। इनकी माता श्रीमती वरदासुंदरी देवी भी कवि थीं। अपनी युवावस्था में इन्होंने भी बँगला-भाषा में कुछ अत्यंत सुंदर कविताओं की रचना की।

ऐसे प्रतिभाशाली मा-बाप की संतान सरोजिनी स्वयं कैसे प्रतिभाशालिनी न होती। सरोजिनी तथा उनके भाई-बहनों ने अपने माता-पिता के निरीक्षण में जैसी शिक्षा पाई, वैसी आजकल के ज़माने में बहुत कम लोगों को नसीब होती है। सरोजिनी अपने माता-पिता की पहली संतान हैं। इनके सभी भाई-बहनों को शुरू से ही अँगरेज़ी-

भाषा की शिक्षा दी गई। यह शिक्षा बहुत विधि-पूर्वक दी जाती थी। स्वयं डॉक्टर अघोरनाथ उस ओर ध्यान देते तथा अपनी संतान पर तीव्र निरीक्षण रखते थे। ९ वर्ष की अवस्था में सरोजिनी को केवल अँगरेज़ी में संभाषण न कर सकने के अपराध में दंड मिला था। इसका उल्लेख सरोजिनी ने स्वयं किया है।

श्रीमती सरोजिनी ने अपने कतिपय पत्रों में अपने पिता तथा अपनी बाल्यकाल की शिक्षा का वर्णन किया है। इनके पिता इन्हें गणित-शास्त्र तथा विज्ञान की विदुषी बनाने के उद्योग में लगे थे। परंतु इन विषयों में सरोजिनी की विशेष अभिरुचि न थी। यद्यपि बाल्यावस्था में कविता लिखने की ओर इनका विशेष ध्यान न था, तथापि यह बड़ी कल्पनाशील थीं। आप अपने एक पत्र में लिखती हैं—"एक दिन, जब कि मेरी अवस्था ११ वर्ष की थी, मैं बीज-गणित के एक प्रश्न पर बैठी खीझ रही थी; सवाल ठीक निकलता ही न था। उसके बदले एक पूरी कविता मेरे मन में आ गई, और मैंने उसे लिख डाला।"

बारह वर्ष की अवस्था में सरोजिनी ने मदरास-युनिवर्सिटी की मैट्रिक्युलेशन (प्रवेशिका)-परीक्षा पास कर ली। उस समय भारत में स्त्री-शिक्षा, आजकल के देखते, बहुत पिछड़ी दशा में थी। ऐसी छोटी अवस्था में मैट्रिकुलेशन-परीक्षा ही पास कर लेने से संपूर्ण भारत में आपका नाम हो गया। पर स्वयं सरोजिनी को अपनी इस सफलता पर विशेष प्रसन्नता नहीं हुई। इँगलिस्तान के प्रसिद्ध साहित्यिक मिस्टर आर्थर साइमंस से, यह प्रसंग आने पर, आपने स्वयं कहा था—"मैं सच कहती हूँ, इससे मुझे प्रसन्नता नहीं हुई। ऐसी बातों से मुझे प्रसन्नता नहीं हो सकती।" बात यह है कि सरोजिनी को कविता की धुन लग चुकी थी; और यद्यपि उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा करता था, तथापि वह कविता के अध्ययन में ही विशेष लगी रहती थीं।

आपने तेरह वर्ष की अवस्था में, स्कॉट की अँगरेज़ी-कविता 'लेडी ऑफ़ दि लेक' के ढंग पर, १,३०० पंक्तियों की एक कविता छः ही दिनों में रच डाली। उसी अवस्था में इन्होंने २,००० पंक्तियों का एक नाटक भी बनाया। इधर डॉक्टर लोग इनका स्वास्थ्य देखकर यह कहते थे कि इन्हें पुस्तक छूने न देनी चाहिए। परंतु सरोजिनी कुछ न मानतीं। यहाँ तक कि उक्त रचना उन्होंने केवल डॉक्टर की आज्ञा की अवहेला-मात्र करने के लिये की थी। यह रचना बड़ी भावमयी हुई। नियमित पाठ-क्रम बंद हो जाने के कारण सरोजिनी ने बाहरी किताबें खूब पढ़ीं। आप लिखती हैं—"अपनी समझ में मैंने १४ और १८ वर्ष की अवस्था के बीच ही विशेष अध्ययन किया है। इसी बीच में मैंने एक उपन्यास भी लिखा। और, रोज़नामचों के तो बड़े-बड़े पोथे ही लिख डाले।"

श्रीमती सरोजिनी का जीवन-संग्राम इसी छोटी अवस्था से ही शुरू हो जाता है। सरोजिनी का प्रेम श्रीगोविंद-राजलु नायडू से हो गया। डॉक्टर गोविंदराजलु नायडू (सरोजिनी के पति) यद्यपि एक प्राचीन तथा कुलीन वंश के हैं, तथापि अब्राह्मण हैं। उनसे सरोजिनी का प्रेम हो जाना सरोजिनी के घरवालों को अच्छा नहीं लगा। उधर नायडू के पक्षवाले भी यह संबंध पसंद न करते थे। यद्यपि सरोजिनी के मस्तिष्क में स्वतंत्र विचारों के बीज पड़ चुके थे, तथापि दोनों पक्षवालों के प्रतिरोध के कारण उनका विवाह गोविंदराजलु से उस समय न हो सका। अस्तु, सरोजिनी ने इस प्रणय को स्थगित तो कर दिया; परंतु विवाह का विचार नहीं छोड़ा।

सरोजिनी को हैदराबाद के निज़ाम की ओर से विलायत जाने के लिये एक वज़ीफ़ा मिल गया। सन् १८९५ ईसवी में, अपनी इच्छा के प्रतिकूल, सरोजिनी उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिये इँगलिस्तान भेजी गईं। वहाँ पहले तो इन्होंने लंदन के प्रसिद्ध किंग्स कॉलेज में, और फिर गर्टन में रहकर विद्याध्ययन किया। इँगलिस्तान में वह लगभग तीन वर्षों तक रहीं। इसके बाद वहाँ भी उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा, जिसके कारण वह सन् १८९८ ई० में हैदराबाद लौट आईं।

इँगलिस्तान में रहकर श्रीमती ने अपने समय का बहुत अच्छा उपयोग किया। विद्या-लाभ के अतिरिक्त आपने वहाँ के कई बड़े-बड़े साहित्य-सेवियों से परिचय प्राप्त किया। उस छोटी अवस्था में भी अपने उच्च विचारों के कारण तथा व्यक्तिगत प्रभाव द्वारा आपने वहाँ बहुत-से बड़े लोगों के हृदयों में स्थान प्राप्त कर लिया। इँगलिस्तान में रहते समय आपने इटाली की भी सैर की। इटाली के ऊपर आप जी-जान से मोहित हो गईं। उस विषय में अपने विचारों को प्रकट करते हुए जो पत्र आपने मिस्टर आर्थर साइमंस के पास भेजे थे, इन

इस बात का पता चलता है कि आप पर इटाली का कितना बड़ा प्रभाव पड़ा था। श्रीमती सरोजिनी के ये पत्र अत्यंत उत्कृष्ट तथा सुंदर अँगरेज़ी के नमूने हैं। उनमें प्राच्य की झलक भी स्पष्ट है।

भारत में लौटने के तीसरे ही महीने सरोजिनी ने, १९ वर्ष की अवस्था में, अपने प्रणयपात्र श्रीगोविंद-राजलु नायडू से विवाह कर लिया। यद्यपि इस विषय में, भारत-भर में, नाना प्रकार की टिप्पणियाँ हुईं, तथापि सरोजिनी ने अपने स्वतंत्र विचारों को कार्य-रूप में परिणत करके दिखला दिया। सरोजिनी का वैवाहिक जीवन बड़ा सुखमय रहा है। आपके चार संतानें भी हैं। श्रीमतीजी को कविता के अनुशीलन तथा सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने का पूर्ण अवकाश मिलता रहा है।

(२)

हम यह बतला चुके हैं कि सरोजिनी ने ग्यारह वर्ष ही की अवस्था से काव्य-रचना आरंभ कर दी थी। इँगलिस्तान जाने के समय आपकी अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी। उस समय तक वह बहुत-सी कविताएँ लिख चुकी थीं। सरोजिनी के कवि-जीवन की एक घटना बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। वह हमारे लिये केवल मनोरंजन की ही वस्तु नहीं, शिक्षा-प्रद भी है। इस घटना के लिये हम एक वयोवृद्ध तथा प्रतिष्ठित अँगरेज़ी-साहित्यिक—मिस्टर एडमंड गॉस—के चिरकृतज्ञ रहेंगे। सौभाग्य-वश आप अभी जीवित हैं आपकी अवस्था ७९ वर्ष की है। आप अँगरेज़ी-साहित्य के महारथियों में हैं। आप ही ने एक दूसरी भारतीय स्त्री-कवि—कुमारी तरु दत्त—की रचनाओं का पाश्चात्य भूखंड में प्रचार किया था।

सौभाग्य-वश, इँगलिस्तान में पहुँचने के थोड़े ही समय बाद सरोजिनी का इनसे परिचय हो गया। सरोजिनी इनके यहाँ आने-जाने लगीं। भला मिस्टर गॉस से यह बात कब छिपी रह सकती थी कि सरोजिनी बड़े उत्साह से कविता लिखा करती हैं, और वह भी अँगरेज़ी-भाषा में! गॉस साहब ने इनकी कविताएँ देखने की इच्छा प्रकट की। सरोजिनी ने अपनी कविताओं का बंडल उन्हें दे दिया। गॉस ने एकांत में इनकी रचनाओं का अध्ययन और मनन किया। सरोजिनी के लिये ऐसे उत्कट समालोचक को संतुष्ट करना सहज न था। मिस्टर गॉस को ये कविताएँ कृत्रिम और प्रेरणा-विहीन प्रतीत हुईं। उन्हें बड़ी निराशा हुई। ऐसी अवस्था में उन्होंने जो किया, उसके लिये सरोजिनी के पाठक उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे। इस घटना का वर्णन उन्होंने स्वयं सरोजिनी की एक पुस्तक की भूमिका में किया है। आप लिखते हैं—"श्रीमती सरोजिनी ने जो पद्य मुझे दिए, वे पिंगल, व्याकरण तथा भावों की दृष्टि से दोष-रहित थे; परंतु उनमें एक बड़ी भारी कमी यह थी कि वे नितांत व्यक्तित्व-शून्य थे। भावों तथा कल्पना की दृष्टि से वे पाश्चात्य के रंग में रँगे हुए थे। उनमें टेनिसन और शेली के रंगों का आभास होता था। यदि मैं भूल नहीं करता, तो उनमें ईसाई-मत का-सा त्याग भी झलकता था। मैंने विषाद-पूर्वक उन्हें उठाकर अलग रख दिया। यह तो अनुकरण करनेवाले पक्षी की वाणी थी।"

परंतु फिर मिस्टर गॉस ने लेखिका की अल्पावस्था की ओर ध्यान दिया—उसके उत्साह को तोड़ना उचित न समझा। उन्होंने सरोजिनी को अपनी सच्ची अनुमति देने का निश्चय किया, जिसका तात्पर्य यह था—"झूठे अँगरेज़ी

भावों में डूबी हुई अपनी सब रचनाओं को रद्दी काग़ज़ की टोकरी में डाल दो। एक विचारशील भारतीय युवती से, जिसने हमारी भाषा का ही नहीं, हमारे पिंगल का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया है, हम पाश्चात्य भावों तथा कल्पनाओं की प्रतिध्वनि की आशा नहीं करते। हम प्राच्य भावों और कल्पनाओं का परिचय उससे प्राप्त करना चाहते हैं; धर्म के उन प्राचीन मंतव्यों का दिग्दर्शन चाहते हैं, जिनका प्राच्य देशों में उसी समय अनुभव हो चुका था, जब पाश्चात्यों को अपनी आत्मा की स्थिति का ही ज्ञान न था।" उन्होंने यह आशय भी प्रकट किया—"तुम अँगरेज़ी की तरह पक्षियों—रोबिन और लवे—का वर्णन अपनी कविता में करना छोड़ दो। इसी प्रकार हमारे फलों, फूलों, वृक्षों तथा दृश्यों और भूदेशों के वर्णन का भी सदा के लिये परित्याग कर दो; हमारे गिरजाघरों के घंटों को भूल जाओ। अपने देश और अपने प्रांत की नदियों, पर्वतों, मंदिरों, उद्यानों, वनस्पतियों तथा निवासियों का वर्णन करो—इनके सहज प्राकृतिक भावों को व्यक्त करो। सारांश यह कि भारतीयता धारण करो; पाश्चात्य कवियों की नक़ल करने की चेष्टा में अपने व्यक्तित्व का नाश न कर डालो।"

सरोजिनी को यह बात लग गई। उन्होंने धन्यवाद-पूर्वक उस वृद्ध साहित्यिक की सम्मति स्वीकृत कर ली। इसके बाद स्वयं मिस्टर गॉस का यह कहना है—"सन् १८६९ के बाद श्रीमती सरोजिनी ने कोई भी ऐसी रचना नहीं की, जिसमें उनकी भारतीयता स्पष्ट न झलकती हो।" यह घटना, वास्तव में, पाश्चात्य देशों का सभी बातों में अनुकरण करनेवालों के लिये शिक्षा-प्रद है। स्वयं सरोजिनी ने अपनी कृतज्ञता इस प्रकार प्रकाशित की थी—अपनी पहली कविता-पुस्तक 'स्वर्ण-देहली' (The Golden Threshold) मिस्टर गॉस को समर्पित करते हुए लिखा था—"यह पुस्तक मिस्टर एडमंड गॉस को समर्पित है, जिन्होंने सर्व-प्रथम मुझे 'स्वर्ण-देहली' का मार्ग दिखाया।"

सरोजिनी की चार कविता-पुस्तकें प्रकाशित हुई है।* इनमें पहली पुस्तक तो यही 'स्वर्ण-देहली' है। यह

पहले-पहल सन् १९०५ में प्रकाशित हुई थी। इसके कई संस्करण हुए हैं। इस पुस्तक में जो कविताएँ संगृहीत हैं, उनमें से अधिकांश सन् १८९६ और १९०५ के बीच लिखी गई थीं। कुछ पद्य और गीत तो उस समय के लिखे हुए हैं, जब आप लंदन में थीं। शेष वहाँ से लौटने पर हैदराबाद ही में लिखे गए थे। इस संग्रह में बाल्यावस्था तथा तरुणावस्था के आरंभ में लिखी हुई कविताएँ हैं। इसमें संदेह नहीं कि कविताएँ सभी प्रथम श्रेणी की और चुनी हुई हैं।

* ये सभी पुस्तकें लंदन के प्रसिद्ध प्रकाशक 'विलियम-हेनामन' ने प्रकाशित की हैं।

इसकी भूमिका इँगलिस्तान के प्रसिद्ध साहित्यिक पूर्वोक्त मिस्टर आर्थर साइमंस ने लिखी है। इसी पुस्तक द्वारा सरोजिनी की ख्याति की नींव पड़ी। एक भारतीय स्त्री का अँगरेज़ी-भाषा में उत्कृष्ट कविता लिखना ही एक बड़े महत्त्व की बात थी। इनकी कविता का बड़ा आदर हुआ। इँगलिस्तान के प्रायः सभी बड़े पत्रों में प्रशंसात्मक आलोचनाएँ निकलीं। भारतवर्ष में सरोजिनी यों भी अप्रसिद्ध न थीं। विदेशों में इनकी रचना की प्रशंसा सुनकर भारत-वासियों का हृदय खिल उठा। इनकी कीर्ति भारत-भर में और भी फैल गई।

सरोजिनी की दूसरी पुस्तक का शीर्षक था—'जीवन और मृत्यु-विषयक कविताएँ' (Poems of Life and Death)-शीर्षक सार्थक है। आपकी तीसरी पुस्तक—'काल-पक्षी' (The Bird of Time)—तो बहुत ही प्रसिद्ध हुई। यही आपकी सर्वोत्तम पुस्तक है। यह सन् १९१२ में प्रकाशित हुई थी। अतएव इनकी पहली पुस्तक और इस पुस्तक के प्रकाशन में सात वर्षों का अंतर है। इस बीच में आपने सामाजिक तथा सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना आरंभ कर दिया था। मानसिक और शारीरिक श्रम के कारण आपका स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता था। इन कार्यों में लगे रहने पर भी आपने कविता का व्यसन छोड़ा नहीं था। बीच-बीच में भारतीय तथा विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती ही रहीं। इस पुस्तक में उन्हीं कविताओं का संग्रह है। 'काल-पक्षी' में श्रीमती सरोजिनी की कविता ने और भी प्रौढ़ता प्राप्त कर ली। इनके यश की वृद्धि हुई; पाठकों की संख्या बढ़ी। इनकी ख्याति अँगरेज़ी-भाषाभाषी देशों तक ही नहीं फैली, बल्कि इनकी रचनाओं के अनुवाद फ्रेंच और जर्मन-भाषाओं में भी हुए। इस पुस्तक की भूमिका के लेखक वही महाशय एडमंड गॉस हैं, जिन्होंने सरोजिनी को भारतीय रंग में डूबी हुई कविताएँ करने का परामर्श दिया था। फिर पाँच वर्षों के बाद, सन् १९१७ में, आपकी चौथी पुस्तक—'टूटा हुआ डैना' (The Broken Wing)—प्रकाशित हुई। अब तक प्रकाशित कविता-पुस्तकों में यही आपकी अंतिम पुस्तक है।

सामाजिक तथा सार्वजनिक कार्यों की ओर सरोजिनी की जो प्रवृत्ति आरंभ ही से थी, उसका वर्णन आ चुका है। आपकी यह प्रवृत्ति बढ़ती गई। इसके कारण कविता के व्यसन को भी किंचित् स्थगित करना पड़ा। इस अंतिम पुस्तक में एकत्र की गई अधिकांश कविताएँ सार्वजनिक कार्यों से समय निकालकर, सन् १९१४-१६ में, लिखी गई थीं। ज्यों-ज्यों सरोजिनी सार्वजनिक कार्यों में अधिकाधिक लीन होती गईं, त्यों-त्यों उनके कवित्व में कुछ क्षीणता आती गई। समालोचकों ने उन्हें पहले से ही जता दिया था कि राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण करना आपकी कविता को क्षति पहुँचावेगा। परंतु देश-सेवा के प्रश्न उन्हें महत्तर जान पड़े; और इसमें संदेह नहीं, कविता की ओर उन्होंने समुचित ध्यान नहीं दिया। फल यह हुआ कि आपकी अंतिम पुस्तक कविता की दृष्टि से उतनी उत्कृष्ट नहीं हुई, जितनी कि प्रथम तीन पुस्तकें। यद्यपि इस पुस्तक के कुछ अंश हमें पूर्व-सरो-

जिनी की स्मृति दिलाते हैं, तथापि सब मिलाकर यह पुस्तक पहली पुस्तकों से गिरी हुई है।

समालोचकगण श्रीमती सरोजिनी की राजनीतिक प्रवृत्ति को उनकी कवित्व-शक्ति के ह्रास का कारण बतलाते हैं। पर हमारा उनसे मतभेद है। हम स्वीकार करते हैं कि इन दोनों बातों में पारस्परिक संबंध है। परंतु वह संबंध कैसा है? हमारे विचार में उनकी राजनीतिक प्रवृत्ति उनके कवित्व के ह्रास का कारण नहीं, परिणाम है। हमारा यह अनुमान करना अनुचित है कि सरोजिनी अपने वास्तविक उद्देश्य से विमुख हैं। वास्तव में वह कवि हैं; स्वयं अनेकों बार इस बात पर ज़ोर दे चुकी हैं कि मैं कवि हूँ, राजनीतिज्ञ नहीं। परंतु कविता के लिये प्रेरणा हुआ करती है। उस प्रेरणा को कवि ही समझ सकता है। सरोजिनी की यह प्रेरणा क्षीण हो रही थी। उन्होंने उसे रोकने का प्रयास अपनी अंतिम पुस्तक में किया है। पर वह असफल रहा। वे रचनाएँ अनैसर्गिक प्रतीत हुईं। विना प्रेरणा के कविता रचना ठीक नहीं कहा जा सकता। प्रेरणा जीवन से संसर्ग प्राप्त होने पर जाग्रत् होती है। हमारी राय में, राजनीति के क्षेत्र में उनका आना अपनी लुप्त प्रेरणा को पुनः प्राप्त कर लेने का साधन होगा। उनके समालोचक भी यह स्वीकार करते हैं कि हम सरोजिनी से भविष्य में आशा रख सकते हैं। वह भविष्य जहाँ तक शीघ्र आवे, अच्छा है। यह निश्चय है कि वह अब जो कविताएँ लिखेंगी, उनमें नया रंग रहेगा। सरोजिनी के जीवन में हमें नित्य-प्रति परित्याग तथा तपश्चर्या की मात्रा अधिकाधिक दिखलाई पड़ती है। हमें आशा है, श्रीमती सरोजिनी की आगामी कविताओं में हम वह रंग पावेंगे, जो उनकी 'स्वर्ण-देहली'-पुस्तक की अंतिम कविता—'पद्मासीन बुद्ध'—में है।

(३)

श्रीमती सरोजिनी की कविता की विशेषताओं की कुछ आलोचना भी आवश्यक है। सरोजिनी का प्रधान गुण उनकी भारतीयता है। यद्यपि श्रीमती की रचनाएँ अँगरेज़ी में होती हैं, और यद्यपि उक्त भाषा की शैली, प्रवृत्ति तथा उसके विचार-केंद्र हमसे सर्वथा पृथक् हैं, तथापि इन रचनाओं में हमें अपने देश के भावों का ही प्रतिबिंब मिलता है। उनमें कहीं भी विदेशीयता की बू नहीं आने पाई। किस प्रकार मिस्टर एडमंड गॉस के उपदेश से सरोजिनी की प्रेरणा स्वदेशी भावों के प्रति जाग्रत् हुई थी, यह हम पहले लिख चुके हैं। कुछ भी हो, इसके अतिरिक्त कि सरोजिनी की रचनाएँ विदेशी भाषा में होती हैं, उनकी कविता में और कोई विदेशीपन नहीं आने पाया। उनकी कविता में सर्वत्र अपने देश के दृश्यों का, फल-फूल-लता-पल्लवों का, पशु-पक्षियों का वर्णन तथा अपने ही देश की जनता के रस्म-रवाज, उत्सवों और त्योहारों का वृत्तांत, अपने देश की ऋतुओं का हाल एवं अपने ही देश की सरिता और पर्वतों से प्रेम पाया जाता है। सारांश यह कि अपने ही देश और समाज के चित्र अंकित हुए हैं। यही नहीं कि विषयों के चुनाव में ही भारतीयता देख पड़ती हो, प्रत्युत उपमाओं और अलंकारों में भी भारतीयता झलकती है। सरोजिनी की रचनाएँ प्रधानतः अँगरेज़ी-पाठकों के निमित्त लिखी गई हैं; और जिस प्रकार हमारे देश के रहन-सहन, आचार-विचार और सभ्यता का दिग्दर्शन कराया गया है, उससे बहुत बड़ा देश-हित का साधन होता है। इससे पूर्व और पश्चिम का संपर्क घनिष्ठ होता है। इनकी कविता की प्रशंसा करते हुए विलायत के एक प्रसिद्ध पत्र ने लिखा था—"इन कविताओं ने एक ऐसा नया द्वार खोल दिया है, जिसके द्वारा यदि पाश्चात्य लोग चाहें, तो पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।" वास्तव में बात भी यही है। श्रीमती सरोजिनी देश-प्रेम में डूबी हुई हैं; परंतु उनका स्वदेश-प्रेम संकुचित नहीं है। यह देश-प्रेम उनकी दृष्टि में उस महान् विश्व-प्रेम का अंग-मात्र है, जिसके लिये समस्त संसार की महान् आत्माएँ प्रयत्नशील हैं। यही कारण है कि उनकी कविता ने केवल भारतवासियों से ही नहीं, विदेशियों से भी प्रशंसा पाई है। उनका प्रेम वर्ग, जाति अथवा संप्रदाय-विशेष तक ही संकुचित नहीं है। उनकी सहानुभूति सर्व-व्यापी है। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, पारसी आदि के भेदभावों से वह बहुत ऊपर और बहुत पृथक् हैं। सन् १९१५ की कांग्रेस में आपने भारत-माता की वंदना में एक कविता पढ़ी थी। उसके अंतिम अंश का अनुवाद नीचे दिया जाता है। देखिए, किस प्रकार भारत की सभी जातियों के लोग भारत-माता की स्तुति करते हैं—

हिंदू—"माता, हमारी अर्चना के पुष्प तेरे सिर के किरीट बनेंगे!"

पारसी—"माता, हमारी आशा की ज्योति तेरा आवरण बनेगी !"

मुसलमान—"माता, हमारी प्रेम-रूपी तलवारें तेरी रक्षा करेंगी !"

ईसाई—"माता, हमारे धर्म का संगीत तेरी सेवा में रहेगा !"

सभी धर्मावलंबी—"क्या हमारी उत्कट भक्ति द्वारा तेरा कल्याण न हो सकेगा ? हे सम्राज्ञी, हे देवि,सुनो,—हम तुम्हारी वंदना करते हैं ।"

कितने संकोच-रहित शब्द हैं !

जिस प्रकार उनकी कविता में जाति-पाँति का भेद नहीं, उसी प्रकार ऊँच-नीच का भी नहीं है। स्वयं श्रीमतीजी ने उच्च कुल में जन्म लिया है, धन की गोद में पली हैं ; परंतु वह प्राणी-मात्र से सम-भाव रखती हैं । हमारे सरल ग्रामीणों के हृदयों में उनकी अच्छी तरह से पैठ है । उन्हें उनके सुख-दुःख, राग-रंग और रहन-सहन की केवल जानकारी ही नहीं, उनसे सच्ची सहानुभूति भी है। यही कारण है कि हमारे ग्रामीणों के विषय में वह बड़ी सुंदर कविता कर सकती हैं । उनकी कविताओं में हमें अपने ग्राम्य जीवन का सजीव परिचय प्राप्त होता है ।

श्रीमती का यह दृढ़ विश्वास है कि संसार के इतिहास में भारत को एक महान् कार्य का संपादन करना है ; और यद्यपि इस समय इसकी अवस्था गिरी हुई है, पर विना इसके योग के संसार की अशांति और त्रास दूर न हो सकेंगे । आपने अक्सर अपनी कविता में इसी भाव का वर्णन किया है । इसकी पूर्ति के लिये आप सदा अपने देश-वासियों को प्रोत्साहित करती रहती हैं । भारत-माता के सम्मुख जो महान् उद्देश्य है, उसकी किसी भाँति पूर्ति होनी चाहिए । 'भारत-माता के प्रति'-शीर्षक एक पद्य में आप लिखती हैं—

"अंधकार से ग्रस्त, रुदन करती हुई जातियाँ तेरे नेतृत्व की प्रतीक्षा कर रही हैं × × × मा, हे मा, तू सो क्यों रही है ? × × × तेरी प्रतिष्ठा करने के लिये तेरा भविष्य तेरा आवाहन कर रहा है ।"

सरोजिनी की कविता में वह आशावाद है, जो पराजित होना नहीं जानता ।

उनकी कविता का एक दूसरा प्रधान गुण उसकी संगीत-संगति है । जिस समय सरोजिनी से मिस्टर आर्थर साइमंस ने अपने स्फुट पद्यों को एकत्र करके छपाने का अनुरोध किया था, उस समय आपने अपनी अनिच्छा प्रकट करते हुए लिखा था—"मेरा संगीत पक्षियों के संगीत की भाँति है, उसी प्रकार क्षणिक है × × × क्या यह संभव है कि मैंने सुंदर गीत लिखे हैं, और वे प्रकाशन करने के योग्य हैं ?" इस पर उक्त समालोचक ने यह यथार्थ टिप्पणी की है—"इन पद्यों की विशेषता यही है कि इनमें पक्षियों का-सा संगीत है ।" यही सरोजिनी की कविता का वास्तविक तथा प्रधान गुण है । इनकी सभी कविताएँ छोटी हैं ; परंतु उनमें भावों की एकाग्रता और शब्दों का मितव्यय है । अँगरेज़ी में ऐसी कविताओं को 'लिरिक्स' कहते हैं । इसी प्रकार की कविताएँ उनके लिये सहज और उनकी प्रकृति के अनुकूल हैं । मैं यह अनुमान करने का साहस करता हूँ कि बड़ी कविताएँ लिखने में कदाचित् वह इतनी सफल न हों । कारण, एकाग्रता और विस्तार, इन दोनों ही में प्रतिद्वंद्विता है ; और इसमें आश्चर्य ही क्या, जो हाथीदाँत के टुकड़ों पर काम करनेवाला नक़्क़ाश नाट्यमंच के बड़े-बड़े परदे बनाने के योग्य न ठहराया जाय । यह बात नहीं कि उनकी कविताओं में चित्रों की विभिन्नता न हो—प्रत्येक पंक्ति एक नया चित्र आँखों के सामने उपस्थित करती है । परंतु हमें केवल एक झलक मिलती है—हमारे नेत्र अतृप्त रह जाते हैं, और सौंदर्य-पिपासा निरंतर बनी ही रहती है । ऐसा प्रभाव केवल अत्यंत उत्कृष्ट श्रेणी की कविता ही हमारे ऊपर डाल सकती है ।

अँगरेज़ी पर आपको जो अधिकार प्राप्त है, वह अत्यंत सराहने योग्य है । उस भाषा में आपकी कहाँ तक पहुँच है, इसकी सच्ची विवेचना अँगरेज़ ही कर सकते हैं । महाशय एडमंड गॉस-जैसे सहज में प्रसन्न न होनेवाले विद्वान् और समालोचक की निम्न-लिखित सम्मति इस संबंध में भी बहुत मूल्यवान् है—

"वास्तव में मैं यह विश्वास करने के लिये अप्रस्तुत नहीं हूँ कि आज तक जितने हिंदोस्तानियों ने अँगरेज़ी में रचनाएँ की हैं, उनमें इन (सरोजिनी)की रचनाएँ सबसे चमत्कारिक, सबसे मौलिक तथा सबसे शुद्ध होती हैं ।"

समालोचक का तात्पर्य पद्य-रचना से जान पड़ता है । एक दूसरे बड़े अँगरेज़ समालोचक ने इनकी भाषा की

प्रशंसा करते हुए लिखा था—"ये कविताएँ रचना की दृष्टि से तो निर्दोष हैं ही ; पर कवि की पूर्वीयता ने इनमें एक विशेष रंग ला दिया है । इनकी कविताएँ पढ़ने के बाद हमें अपनी मातृ-भाषा और भी मधुर प्रतीत होती है।"

आपकी भाषा की इससे अधिक और क्या प्रशंसा हो सकती है ? आप अँगरेज़ी की विदुषी अवश्य हैं ; परंतु आपने अपने पूर्वीय रंग को छोड़ा नहीं, और इस प्रकार आपकी रचनाओं में पूर्व और पश्चिम के सम्मिलन का अच्छा दिग्दर्शन होता है । आपकी भाषा अलंकृत, प्रवाहमयी और सुंदर होती है । आपका गद्य भी अत्यंत सरस होता है । सरलता के भी अनेकों उदाहरण मिलते हैं । परंतु आपकी कविता सरल हो चाहे अलंकृत, सदा उच्च साहित्यिक कोटि की होती है । अँगरेज़ी में आपके प्रवेश और अधिकार का एक यह भी प्रमाण है कि गूढ़-से-गूढ़ भावों को आप बहुत थोड़े शब्दों में सरसता-पूर्वक प्रकट कर देती हैं ।

सरोजिनी को केवल अँगरेज़ी पर ही नहीं, बल्कि उसके पिंगल पर भी असाधारण अधिकार है । आपने अनेकों अँगरेज़ी-छंदों में कविता की है, और सभी प्रकार के छंदों में सफलता भी पाई है । आपने छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी पंक्तियों के छंदों का प्रयोग किया है । आपने भारतीय जोगीड़ों पर 'इंडियन डांसर्स'(Indian Dancers)-शीर्षक देकर एक कविता की है । इसमें छंद-रचना-कौशल की पराकाष्ठा दिखला दी है । भाषा, भाव, छंद और शब्द-विन्यास, सभी का अपूर्व सम्मिलन है । पढ़कर जी फड़क उठता है, और उन्हीं जोगीड़ों के साथ नाचने लगता है । खेद है, उनका अनुवाद असंभव है । त्वरित गतिवाले छंद आपको विशेष प्रिय हैं । उक्त कविता की मादकता 'प्रेम-नृत्य' (The Dance of Love)-शीर्षक कविता में भी मिलती है । परंतु वहाँ नर्तकों में उतनी द्रुत गति नहीं है । कारण, इस कविता में रात्रि अधिक बीत चुकी है । इनकी कुछ कविताएँ सुनकर मेरे एक साहित्य-प्रेमी मित्र ने मुझसे कहा था—"सरोजिनी का संगीत कहीं शेली (Shelley) का-सा है, तो कहीं स्विनबर्न (Swinburne) का-सा ।" अँगरेज़ी-साहित्य में, संगीत की दृष्टि से, इन्हीं दो कवियों का स्थान सबसे ऊँचा है । सच बात यह है कि सरोजिनी का अपना रंग निराला ही है । अपने छंदों में सरोजिनी ने कुछ भारतीय छंदों का भी समावेश किया है ; कई कविताएँ उर्दू लय में लिखी हैं । 'सुनलिनी के लिये लोरी' (Slumber-song for Sunalini)-शीर्षक कविता बंगाली-लय में अत्यंत सुंदर हुई है । इस प्रकार सरोजिनी ने अपने छंदों में भी पूर्वीयता का परित्याग नहीं किया ।

आगे कह चुके हैं कि अपनी कविताओं के विषय चुनने में सरोजिनी ने अपनी पूर्वीयता, बरन् भारतीयता भली भाँति दिखलाई है । यहाँ पर बहुत-से उदाहरण नहीं दिए जा सकते, और अनुवाद में मूल का स्वाद ही कहाँ तक आ सकता है, विशेष कर जब पद्य का अनुवाद गद्य में हुआ हो—'सती'-शीर्षक एक कविता मूल में अत्यंत हृदय-स्पर्शिनी है—

"हे मेरे जीवन के दीपक, काल के होंठों ने तुझे अकस्मात् अपनी श्वास से बुझा दिया है । कुछ भी हो, अब तेरी विगत ज्योति पुनरुज्जीवित नहीं हो सकती × × × हे प्रिय, क्या जीवित अंधकार ही सदा के लिये मेरा आवास होगा ?

"हे मेरे जीवन-तरु, काल के निर्दयी पैरों ने तेरी जड़ तक कुचल डाली है । कोई भी वस्तु अब तुझे तेरा अतीत गौरव प्रदान नहीं कर सकती × × × वृक्ष के शुष्क हो जाने पर कहीं उसके पल्लव जीवित रह सकते हैं ?

"हे मेरे जीवन-प्राण, काल की तीखी तलवार ने हम लोगों को खंडित शब्द की भाँति पृथक् कर दिया है—हमें, जो वास्तव में एक हैं, दो कर दिया है × × × आत्मा के प्रयाण कर जाने पर क्या कभी मांस-पिंड जीवित रह सकता है ?"

कुछ अन्य कविताएँ, जिनकी ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है, निम्न-लिखित हैं—'एक राजपूत प्रेम-संगीत' (A Rajput Love-song), 'राधा का गीत', 'वसंत पंचमी', इंद्र की प्रार्थना (a Hymn to Indra) लक्ष्मी, 'वृद्धा स्त्री' (The old Women) 'पालकी-वाल' (The Palanquin bearers), 'पर्दा-नशीन', 'नल के प्रति दमयंती', 'शाहज़ादी ज़ेबुन्निसा का संगीत', 'इमामबाड़ा' । 'मेंहदी की प्रशंसा में'-शीर्षक कविता भी बड़ी सुंदर है । उसकी अंतिम कुछ पंक्तियों का भाव यह है—

"तिलक (बिंदी) की लालिमा दुलहिन के मस्तक की शोभा के लिये है ;

पान की लालिमा सुंदर होठों की शोभा के लिये है ;
परंतु कमल-जैसे करों की शोभा के लिये
मेंहदी ही की लालिमा है।"

'यौवन के प्रति'-शीर्षक कविता का भाव यह है—

"हे यौवन, प्यारे संगी यौवन, क्या तू चला जायगा? तू और मैं, बहुत दिनों तक एक ही साथ रहे हैं, एक ही साथ देश-देशांतरों में उषा का पान किया और एक ही साथ आकाश के नीचे फल चुने हैं !

"हे चपल मित्र, कल तक तो मैं भविष्य के अविच्छिन्न तथा असीम आह्लाद का स्वप्न देखा करती थी × × ×। तू जो चला जायगा, तो आज से मैं क्या अतीत काल के ही भंगुर सुखों का स्वप्न देखूँगी ?

"मैं तुझे तेरी अस्थिर तथा झूठी प्रतिज्ञा से मुक्त करती हूँ। परंतु हे मेरे साथी, विदा होने से पहले मेरे नेत्र-पुटों का तथा भौंहों को एकबार चूम ले। मैंने तेरी मूर्ति को अपने हृदय में स्थापित किया है।"

प्रेम से उपजे हुए 'आह्लाद' का चित्र देखिए—

"मेरे प्रिय, मेरी आँखों को मूँद लो। मेरी आँखें अपार आनंद से उसी प्रकार क्लांत हो रही हैं, जिस प्रकार प्रखर और तीव्र प्रकाश से हो जाती हैं।

"ओह मेरे होठों को, जो गायन के कारण थक गए हैं, एक चुंबन से मौन कर दो।

"हे मेरे प्रिय, मेरी आत्मा को त्राण दो। मेरी आत्मा प्रेम की वेदना तथा भार से वर्षा के मारे हुए फूल की शोभा की भाँति म्लान है। अब तो दर्शन देकर मेरी आत्मा को त्राण दो।"

इसमें संदेह नहीं, श्रीमती की कविता का एक बड़ा अंश प्रेम और शृंगार-रस में डूबा हुआ है, तथापि और रसों का अभाव नहीं है। 'पद्मासीन बुद्ध' पढ़कर हम शांत-रस में डूब जाते हैं। यथा—

"हे प्रार्थना-मय नेत्रोंवाले, अभय-मुद्रा में स्थित पद्मासीन भगवान् बुद्ध, यह कैसा अक्षुण्ण, अनंत तथा रहस्यमय परमानंद तुम्हें प्राप्त है ! तुम्हारी कैसी परम शांति है, जिसका हमारी दृष्टि को आभास नहीं हो सकता, और जो मनुष्य-संसार के लिये दुर्लभ है !

"हमारे कोलाहल-पूर्ण जीवन-पथ में परिवर्तन की वायु सदा चलती रहती है। आनेवाले दिवस की व्यथाएँ बीते हुए दिवस के दुःखों का स्थान ले लेती हैं। एक स्वप्न के बाद दूसरा स्वप्न आता है, एक समस्या के अनंतर दूसरी समस्या उपस्थित होती है, और अंत में काल जीवनरूपी जाल को विच्छिन्न कर देता है।

"हमारे लिये दुःख और यातनाएँ हैं, अपने गर्व के खंडित रहस्य हैं, पराजय के कठिन पाठ हैं। हमारे लिये ऐसे पुष्प हैं, जो दुष्प्राप्य हैं; ऐसे फल हैं, जो वर्जित हैं। हमारे लिये वह परम शांति कहाँ, जिस पर, हे पद्मासीन भगवान् बुद्ध, तुमने अधिकार प्राप्त कर लिया है !

"हम अपनी कष्ट-साध्य अभिलाषाओं की तृप्ति में असफल रहते हैं, उस दैवी उच्च शिखर पर चढ़ते हुए हमारे पैर थक जाते और हमारे विश्वास शिथिल पड़ जाते हैं। परंतु संसार की कोई वस्तु हमारी ईश्वरीय वासना को न रोक सकती और न उस पर विजय प्राप्त कर सकती है।

"अंत-स्थान दूर और अस्पष्ट है ; परंतु वह निरंतर हमें अपनी ओर बुला रहा है। हमारे संपूर्ण जीवन के दिवस अनंत के एक क्षण-मात्र हैं। हे पद्मासीन, तुम्हारे निर्वाण-पद को हम कैसे प्राप्त कर सकेंगे ?"

सरोजिनी की कविता में स्थान-स्थान पर उनके स्त्रीत्व का परिचय मिलता है। प्रत्येक विषय पर उन्होंने स्त्री के विचार-केंद्र से दृष्टि डाली है, और उसी प्रकार वर्णन भी किया है, जैसा कि उचित है। उनका प्रकृति-वर्णन बहुत सच्चा और सुंदर होता है।

यद्यपि सरोजिनी की सहानुभूति सर्वव्यापी है, यद्यपि उनकी कविता में हिंदू-मुसलमान-पारसी-ईसाई आदि का भेद-भाव नहीं मिलता, तथापि यह कहना यथार्थ ही है कि उस पर हिंदूपन की छाप है ; जीवन के प्रश्नों पर अवेक्षण का ढंग सर्वथा हिंदू का ही है।

सरोजिनी कवित्व के महान् आदर्श को भली भाँति समझती हैं। उनका कविता का आदर्श स्वयं बहुत ऊँचा है। अपनी कविता में, और अन्यत्र भी, आपने इस आदर्श के उद्गार भी प्रकट किए हैं। 'इन दि फ़ारेस्ट' (वन में)-शीर्षक पद्य में आप लिखती हैं—

"हे मेरे हृदय, हमें शीघ्र ही उठना होगा, और संसार-युद्ध तथा जन-समूह के कोलाहल में सम्मिलित होना होगा। × × × हे मेरे हृदय, आ, हम उठें और अपने बचे हुए स्वप्नों को एकत्र करें। हम जीवन की वेदना पर संगीत की वेदना से विजय प्राप्त करेंगे।"

सरोजिनी की सदा से यह इच्छा रही है कि वह कवि का वास्तविक उद्गार प्राप्त करें। अपनी कविता के विषय में वह अपने एक पत्र में लिखती हैं—

"यह संभव है कि मैंने सौंदर्य-पूर्ण पद्य लिखे हैं × × × आप जानते हैं, मेरा कला का आदर्श कितना उच्च है, और मेरी दृष्टि में मेरे तुच्छ और स्फुट पद्य मुझे पूर्णरूप से सुंदर नहीं प्रतीत होते। मेरा तात्पर्य उस सनातन सौंदर्य से है, जिसकी मुझे महती अभिलाषा रहती है।"

यद्यपि अपनी कविता के संबंध में सरोजिनी की आशंका निर्मूल है, तथापि इस अवतरण से हमें उनके महान् आदर्श की झलक ज़रूर मिलती है। वास्तविक कवित्व का उद्गार प्राप्त करना श्रीमती के जीवन की प्रधान आराधना है। इसी आराधना में वह अनंत सुख तथा दुःख का अनुभव करती हैं। आपने एक दूसरे पत्र में लिखा है—

"वास्तव में मैं कवि नहीं हूँ। मुझमें कल्पना है, अभिलाषा है; परंतु उद्गार नहीं है। यदि मैं एक भी ऐसी कविता लिख लूँ, जो सौंदर्य तथा उच्च भावों से पूर्ण हो, तो मैं सदा के लिये सुख-पूर्वक मौन हो जाऊँ...।"

अन्यत्र आप लिखती हैं—

"जब तक जीवित हूँ, मेरी आत्मा की यह असीम अभिलाषा रहेगी कि मैं कविता करूँ—एक ही पद्य, सनातन कविता की एक ही पंक्ति। कदाचित् मैं अपनी इस उत्कट इच्छा की (जो मेरे लिये अत्यंत प्रसन्नता और असीम दुःख, दोनों का कारण है) पूर्ति हुए विना ही मर जाऊँगी।"

कवित्व ही उनका परम उद्देश्य है, और उसी की पूर्ति की आप याचना करती हैं। 'गर्डेन' (पुरस्कार)-शीर्षक पद्य में आपने अपने लिये यह याचना की है—

"धर्माध्यक्ष और महात्मागण अपने-अपने धर्म में प्रसन्न रहें। नृपति अपनी सेनाओं सहित कीर्तिशाली कार्यों का संपादन करें; पराजितों को शांति प्राप्त हो; बलशालियों को आशा-प्रदान हो। × × × परंतु हे मेरे स्वामिन्, मुझे संगीत का आनंद प्राप्त हो।"

यह निर्विवाद है कि सरोजिनी को प्रधानतः कवि का आसन प्राप्त है। हमारे देश के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में भी आपने बहुत उच्च स्थान ग्रहण किया है। परंतु जिस समय हमारी राजनीतिक अशांति दूर हो जायगी, जातिगत वैमनस्य शांत हो जायँगे, तब चिर-रूप से हम सरोजिनी की कविता द्वारा उनकी स्मृति की रक्षा करेंगे।

(४)

समाज-सेवा राष्ट्र-सेवा का एक अंग है, और राजनीति तथा समाज-सेवा में जो घनिष्ट संबंध है, वह पृथक् नहीं हो सकता। यदि सरोजिनी के समाज-सुधार-संबंधी कार्यों का वर्णन उनकी राजनीतिक कृतियों से विभिन्न किया जाता है, तो केवल इस कारण कि राष्ट्र-हित-साधन के निमित्त उनकी विविध सेवाओं का यथार्थ अनुमान हो सके।

श्रीमती सरोजिनी के समाज-सुधार-संबंधी कार्यों का उनके जीवन की पूर्वावस्था ही में आरंभ हो चुका था। सरोजिनी का सुधार-कार्य बहुत व्यावहारिक रहा है। वह उन समाज-सेवकों की भाँति नहीं है, जो सभा-मंच से बड़े-बड़े व्याख्यान तो देते हैं; परंतु उन्हीं मंतव्यों के अनुसार अपने व्यावहारिक जीवन में आचरण नहीं करते। आप अपने विचारों को न केवल स्वतंत्र रूप से प्रकट करती हैं, वरन् उन्हें व्यवहार में भी लाती हैं। अनेकों बाधाएँ उपस्थित की जाने पर भी आपने जो डॉक्टर नायडू से विवाह कर लिया, वह इसी निर्भीकता का एक उदाहरण है। एक उच्च कुल की ब्राह्मण-रमणी एक अब्राह्मण वंश में विवाह कर ले, इसे समाज बड़ी धृष्टता समझता था; परंतु उसे उन्होंने कर दिखाया। आप जाति-पाँति के भेद-भावों को तुच्छ समझती हैं, और कुलीनता पर किसी जाति-विशेष का अधिकार मानने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं। पुराने विचारों के लोग उनकी इस स्वतंत्रता के विषय में चाहे, जो कुछ समझें; परंतु इसमें संदेह नहीं कि भारत की भावी संतानें अधिकाधिक इस प्रवाह में बह रही हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि सरोजिनी इस विषय में उस समय अगुआ बनी थीं, जब हमारी जनता के साधारण विचार आज से कहीं अधिक कट्टर थे।

यह कहना न होगा कि जाति-पाँति के भेद-भावों को निर्मूल समझकर ही श्रीमती सरोजिनी अस्पृश्य तथा पतित जातियों के उद्धार में जी-जान से संलग्न तथा उनके उत्थान के लिये निरंतर प्रयत्नशील रही हैं। सरोजिनी, हमारे देश के सभी विचारशील नेताओं की भाँति, इसे

उन भारतवासियों के लिये घोर पाप-कर्म समझती रही हैं, जो स्वार्थ-वश अपने अन्य भाइयों तथा बहनों को पतितावस्था में रखने के इच्छुक हैं। अपने अस्पृश्य तथा पतित भाई-बहनों के पक्ष में सरोजिनी ने अनेकों बार अपनी आवाज़ बलंद की है, और उनके उद्धार के कार्यों में बराबर सहयोग देती रही हैं। दो वर्ष हुए, बंबई में अस्पृश्य जातियों के साथ एक सहभोज किया गया था। उसमें सभी दलों के प्रधान नेता सम्मिलित थे। उस भोज में आपने एक बड़ी प्रोत्साहन-पूर्ण वक्तृता दी थी। कहा था—"यह बड़े सौभाग्य की बात है कि भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों के नेता इस महान् कार्य में सम्मिलित हैं। यह कार्य दल-विशेष का नहीं, संपूर्ण समाज का है। भारत के लिये यह बड़ी लांछना की बात है कि उसकी संतानों का एक बड़ा भाग पतित अथवा अस्पृश्य समझा जाय। बिना उन्हें साथ लिए हम अपने राजनीतिक मंतव्यों में कदापि सफल नहीं हो सकते।"

अछूतों की समस्या संपूर्ण भारत में, विशेष कर दक्षिण-भारत में, बड़ा उग्र रूप धारण किए हुए है। सरोजिनी अपने दक्षिण-भारत के दौरे में इस प्रश्न पर निरंतर प्रकाश डालती और इसे हल करने में लगी रही हैं। दक्षिण-भारत में अछूत जातियों का पक्ष लेकर इन्होंने कई बड़े मर्मस्पर्शी भाषण दिए हैं। मई, १९२३ में, कानफ्रेंस की सभानेत्री के पद से आपने एक व्याख्यान दिया था। उससे एक अवतरण दिया जाता है। श्रीमती अस्पृश्यों के प्रति केवल मौखिक सहानुभूति से संतुष्ट होनेवाली नहीं हैं। आप व्यावहारिक प्रयत्न चाहती हैं। आपने कहा था—

"मित्रो, कितने सहज कपट से हम अस्पृश्यता को दूर करने के प्रश्न पर अपनी अनुमति दे देते हैं। पर जब व्यवहार का समय आता है, तब अपने घरों में ऐसे सैकड़ों बचाव करने लग जाते हैं, जिसमें हम अपनी जाति से निकाल न दिए जायँ। मैंने इस विषय पर बड़े-बड़े सुधारकों को कहते सुना है कि 'अछूत जातियाँ अपने लिये अवश्य अलग कुएँ बना लें। यदि वे लोग अपने लिये अलग मंदिर बनाते हैं, तो हमें कोई आपत्ति नहीं है।' परंतु मैं कहती हूँ, मित्रो, क्या वे तुम्हारी ही भाँति मनुष्य नहीं हैं? वे उसी मिट्टी के बने नहीं हैं, उसी सुख-दुःख के चक्र में नहीं पड़े हैं? क्या तुम्हारी तरह उनके हृदय में भाव नहीं हैं, तुम्हारी ही तरह वे भोजन नहीं करना जानते, तुम्हारी ही तरह वे साँस नहीं लेते? तुम्हारी तरह वे भी गुलाम हैं, बरन् तुम्हारे ही कारण वे और भी अधिक गुलाम बने हुए हैं। आज, २०वीं शताब्दी में, तुम उन स्वतंत्र जातियों के अधिकार की बराबरी का दावा करते हो, जिन्होंने भेद और अत्याचार को दूर कर दिया है, यह क्या तुम्हारे लिये धृष्टता की बात नहीं है? छूतछात का भाव दूर करना क्या हमारे लिये अपनी ही बेड़ियों का काटना नहीं है? क्या यह हमारा धर्म नहीं है कि अपनी जन्म-भूमि के मस्तक से इस कलंक को दूर करें; क्योंकि हमीं इस कलंक के कारण हैं?"

मदरास में, ऑक्टोबर, १९२२ में, एक सार्वजनिक व्याख्यान में, आपने इसी विषय पर ब्राह्मणों को संबोधन करके कहा था—

"जब तक तुम अछूतों की समस्या को हल नहीं कर लेते, तब तक स्वतंत्रता की बात करने के भी अधिकारी नहीं हो। आख़िर स्वतंत्रता है क्या वस्तु? क्या तुम्हीं दिल्ली और शिमले की व्यवस्थापक-सभाओं में जाओगे, जिनको प्रतिनिधि-रूप में बोलने का कुछ अधिकार नहीं प्राप्त है? तुम व्यवस्थापक-सभाओं में जाकर करोगे क्या? किनके प्रतिनिधि कहलाओगे? सचाई के साथ क्या कह सकते हो कि तुम्हारे हृदयों में देश की भलाई का भाव है? तुम ऐसा कदापि नहीं कह सकते। गलियों के पत्थर तुम्हारे विरुद्ध साक्षी देंगे। जंगलों के वृक्ष तुम्हें धिक्कारेंगे; क्योंकि जंगल और पहाड़ियाँ उन लोगों के संतप्त अश्रुओं को जानते हैं, जिनके सामने आने ही में तुम अपनेको अपवित्र समझने लगते हो।"

ये वाक्य बड़े तीव्र हैं; परंतु जो लोग दक्षिण-भारत की इस समस्या से कुछ भी परिचित हैं, वे बतलावेंगे कि वहाँ अस्पृश्यों की व्यवस्था कितनी दारुण है।

समाज-सुधार सेवा-भाव से करना चाहिए, परोपकार जताने के लिये नहीं। इसी भाव से सरोजिनी सदा प्रेरित रही हैं। समाज सुधार के आदर्शों पर आपने १९१८ में, दिल्ली में, अखिल भारतवर्षीय सोशल सर्विस कानफ्रेंस की सभानेत्री के पद से जो व्याख्यान दिया था, वह अक्षरशः मनन करने के योग्य है। उसी व्याख्यान में सेवा-भाव का महत्त्व बतलाते हुए आपने कहा था—

"दानशीलता के भाव से प्रेरित होकर ग़रीबों की सहायता करना उनका ऐसा अपमान करना है, जो उनके लिये मृत्यु से भी बुरा है। कारण, धनियों को धन का गुमान है, और रूपवानों को अपने सौंदर्य का। कवियों के पास उनकी प्रतिभा है; परंतु ग़रीबों के पास केवल एक मान है। यदि समाज-सेवा करना चाहते हो, तो विनय-भाव से करो। इसी से तुम्हारी सेवा को दीन, दुखी और मरते हुए लोग स्वीकार करेंगे। इसी कारण ग़रीब तुम्हारे हाथों से वह जल ग्रहण करेंगे, जिनसे उनके प्राणों की रक्षा की संभावना है।"

कैसे सुंदर वाक्य हैं! इस अवतरण से सरोजिनी की समाज-सेवा के आदर्शों पर सम्मति जानी जा सकती है।

यों तो समाज-सुधार के सभी अंगों पर सरोजिनी ने ध्यान दिया है, परंतु आपका स्त्रियों के उत्थान-संबंधी कार्य विशेष रूप से गणनीय है। इस संबंध में इनका कार्य बड़ा महत्त्व रखता है। स्वयं स्त्री होने के कारण—और एक अत्यंत विदुषी, समाज-प्रिय तथा चमत्कारिक स्त्री होने के कारण—इनके प्रभाव तथा संपर्क का दायरा बहुत विस्तृत है, और अपनी लोक-प्रियता के कारण इनको स्त्री-सेवा करने के विशेष साधन प्राप्त हैं। इनका संपर्क न केवल परदे के बाहरवाली स्त्रियों से है, बरन् इनकी घनिष्ठता परदे में रहनेवाली कुल-रमणियों से उसी भाँति है, जिस भाँति स्वतंत्र विचारोंवाली तथा राज-नीतिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली स्त्रियों से है। चारों ओर भारत में घूम-घूमकर इन्होंने स्त्री-समाज के आगे व्याख्यान दिए हैं। अपने ही नगर हैदराबाद में बड़े-बड़े घरानों की परदानशीन स्त्रियों से इनकी घनिष्ठता है। फिर यह भी है कि आप हिंदू, मुसलमान, पारसी आदि सभी जातियों की स्त्रियों से ख़ूब परिचित हैं। अपने व्यक्तिगत प्रभाव, उदाहरण और उपदेश द्वारा जो उत्तेजना तथा उत्साह यह हमारी स्त्री-जाति को देती रही हैं, वह कदापि साधारण नहीं है। परंतु इनकी स्त्री-समाज की सेवा का यहीं अंत नहीं होता। पुरुष-समाज से स्त्रियों के अधिकारों को स्वीकृत कराने तथा दिलवाने में भी यह बराबर उद्योगशील रही हैं।

सरोजिनी स्वयं परदा नहीं करतीं; परंतु जहाँ तक हम जानते हैं, इन्होंने आज तक परदे की प्रथा के विरुद्ध एक भी शब्द नहीं कहा। उनका विश्वास है कि परदे के अंदर रहनेवाली रमणियाँ उसी प्रकार शिक्षित हो सकती हैं, जिस प्रकार परदे से बाहर रहनेवाली। सरोजिनी ने 'परदानशीन'-शीर्षक एक सुंदर कविता भी लिखी है। परंतु वह यह अच्छी प्रकार जानती हैं कि परदे की प्रथा बहुत काल तक नहीं चल सकती। आपने एक स्थान पर कहा है—

"इस पुरानी सामाजिक प्रथा की बुराई-भलाई का विवेचन किए विना ही मैं विश्वास-पूर्वक कह सकती हूँ कि परदे की प्रथा अन्य पुरानी प्रथाओं की भाँति उठ रही है। हमारी जातीय जागृति की आवश्यकताओं के मुक़ाबले में यह अधिक काल तक अक्षुण्ण नहीं रह सकती।"

सरोजिनी का स्त्री-शिक्षा-संबंधी प्रयास बहुत स्तुत्य है। स्त्री-शिक्षा के विषय में यह बहुत समय से प्रयत्न कर रही हैं। इनकी प्रथम सार्वजनिक वक्तृता, जो आपने सन् १९०६ ई० में अपने ही नगर हैदराबाद में, दी थी, इसी स्त्री-शिक्षा के विषय पर थी; और इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं कि आप इतने वर्षों से इस दिशा में निरंतर प्रयत्न करती आ रही हैं। दिसंबर, सन् १९०६ में, कलकत्ते में, अखिल भारतीय जातीय सोशल कानफ्रेंस में, इन्होंने 'स्त्री-शिक्षा' पर एक ओजस्विनी वक्तृता दी थी। तब से अब तक उनके विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उक्त व्याख्यान से नीचे दिए लंबे अवतरण के लिये पाठक क्षमा करेंगे; क्योंकि इसमें सरोजिनी के विचार-प्रवाह का ठीक परिचय प्राप्त होता है—

"यह मुझे एक विचित्र बात मालूम होती है—और इस विचित्रता में कौतूहल और दुःख, दोनों सम्मिलित हैं—कि आज बीसवीं शताब्दी के आरंभ में, भारतवर्ष में, हम सभी जगह अपनी सार्वजनिक सभाओं में स्त्री-शिक्षा-संबंधी प्रस्ताव उपस्थित कर रहे हैं। यह वही भारतवर्ष है, जो पहली शताब्दी के आरंभ में भी पूर्ण सभ्य था, और संसार को उन उज्ज्वल स्त्री-रत्नों को आदर्श-स्वरूप अर्पण कर चुका था, जो बुद्धि और विद्या, दोनों ही के ऊँचे शिखर पर पहुँची हुई थीं। परंतु काल की कुटिल गति के कारण इस वैचित्र्य का सामना करना पड़ता है। अब समय आ गया है कि हम इस बात पर विचार करें कि यह आपत्ति हम लोगों के ऊपर से कैसे दूर हो सकती है, और किस प्रकार हम ऐसा कार्य कर सकते हैं कि हमारी सफलता स्त्री-शिक्षा के संबंध में व्यर्थ प्रस्तावों

के पास करने तक ही न रह जाय। इस महत्त्व-पूर्ण काल में, जब कि सभी ओर कठिनाइयाँ हैं, और सभी ओर लोग उद्योग कर रहे हैं, जब कि भारत की सभी जातियाँ एक सर्वोच्च राष्ट्रीय आदर्श की एकता के लिये प्रयत्न कर रही हैं, यह विचारना चाहिए कि सभी प्रवाहों की सफलता उस प्रश्न पर निर्भर है, जिसे लोग स्त्रियों का प्रश्न कहते हैं। राष्ट्रीयता का निर्माण आप लोगों के नहीं, हम लोगों के हाथों में है।"

इसी वक्तृता में यह भी कहा था—

"यह ईश्वर का दिया हुआ अधिकार है कि प्रत्येक मनुष्य स्वच्छ वायु का सेवन करे। क्या एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को इस अधिकार से वंचित कर सकता है? यदि नहीं, तो किसी मनुष्य को क्या अधिकार है कि एक दूसरे की आत्मा को अपने जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार से रोके? परंतु वास्तव में, मेरे मित्रो, भारतवर्ष का यही हाल है। भारतीय स्त्रियों के विषय में भारतीय मर्दों ने यही किया है। यही कारण है, भारत के पुरुषो, तुम्हारी आज यह दशा है। तुम्हारे पिताओं ने तुम्हारी माताओं को उनके परंपरागत अधिकार नहीं दिए, और इसी से तुम्हें भी अपने अधिकार नहीं मिले। अतएव मेरी प्रार्थना है कि अपनी स्त्रियों को उनके प्राचीन अधिकार दो; क्यों कि, जैसा कि मैं कह चुकी हूँ, राष्ट्र के सच्चे निर्माता पुरुष ही नहीं हैं, और उन्नति करने में हम लोगों की सहायता पाए बिना तुम्हारी सभाएँ और अधिवेशन व्यर्थ हैं। अपनी स्त्रियों को शिक्षा दो, तभी राष्ट्र का भला होगा। यह बात आज भी सत्य है; सदा सत्य रही है, और सदा सत्य रहेगी कि वे ही हाथ, जो पालनों को झुलाते हैं, संसार पर आधिपत्य करते हैं।"

सन् १९१८ में, बंबई की एक वक्तृता में आपने कहा था—

"हम कोई ऐसी बात नहीं माँग रही हैं, जो हमारे आदर्शों के विपरीत हो। हम उन्हीं पुराने अधिकारों को चाहती हैं, जो हमारी अजर-अमर संपत्ति हैं। हम केवल यही चाहती हैं कि हमें इस बात का अवसर दिया जाय कि हम अपने शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा को बढ़ा सकें—उन्नत कर सकें—उनका ऐसा विकास कर सकें कि हम तुम्हारे आगे एक आदर्श उपस्थित कर सकें। हमारा तात्पर्य कवि की कल्पना के असंभव स्त्रीत्व से नहीं, बल्कि उस स्त्रीत्व से है, जिसके द्वारा हम सफल गृहिणी और पुष्ट माताएँ बन सकती हैं, जिसके द्वारा वीर माताएँ बनकर अपने पुत्रों को जातीय सेवा का प्रथम पाठ पढ़ा सकती हैं। × × × स्त्री जातीयता की मुख्य कसौटी है। जब स्त्री समाज में अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेती है, तभी प्रधान समस्या हल हो जाती है। समाज का आदर्श स्त्रियों पर निर्भर है। भारत में अगर स्त्रियों के हृदय में यह भाव जाग्रत् कर दिया जाय कि उन पर मातृत्व का महत्त्व-पूर्ण उत्तरदायित्व है, तो समस्या सहज में हल हो जाय। राष्ट्र-निर्माण का अर्थ स्त्रियों से शुरू होना चाहिए; भारतीय स्त्रियों को यह खूब समझा देना चाहिए कि वे खिलौना नहीं हैं, दासी नहीं हैं, केवल पुरुषों के आमोद-प्रमोद की सामग्री नहीं हैं—उनका वास्तविक कार्य है आत्मा के लिये उच्चतम प्रेरणा उपस्थित करना।"

श्रीमती का आदर्श यह है कि भारतवर्ष की प्रत्येक स्त्री शिक्षित हो जाय। आप लिखती हैं—

"हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि प्रत्येक स्त्री

शिक्षित हो। यह कोई बड़ी प्रशंसा की बात नहीं कि एक-आध स्त्री बड़ी पंडिता और गुणवती निकल आवे। व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि यदि कहीं कोई अशिक्षित-अपढ़ स्त्री मिले, तो मर्द उसे देखकर लज्जा से गड़ जायँ।"

सरोजिनी का यह दृढ़ विश्वास है—

"भारत की आत्मा तभी मुक्त होगी, जब स्त्रियों के बंधन टूटेंगे। स्त्रियाँ, जिन्हें तुम पराधीनता में रक्खे हुए हो, जब स्वाधीनता प्राप्त करेंगी, तो वे ही तुम्हारी मुक्ति का भी कारण बनेंगी।"

सरोजिनी भारत के उद्धार के लिये उसकी नई संतानों, युवकों और युवतियों की ओर आशा की दृष्टि से देखती हैं। इसी कारण वह अक्सर नवयुवकों तथा छात्रों के आगे व्याख्यान देने तथा उनके देश-प्रेम को प्रोत्साहित करने का अवसर नहीं जाने देतीं। वह पूर्ण-रूप से समझती हैं कि किसी राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल बनाने का मुख्य साधन उसकी युवा आत्माएँ ही होती हैं। भारत की नई जनता के प्रति उनका प्रेम बहुत पुराना है।

मदरास में, विद्यार्थियों की एक सभा में, सन् १९१७ में, आपने कहा था—"यदि मुझसे कहा जाय कि भाषा के संपूर्ण भांडार से तुम एक ऐसा वाक्य चुनकर कहो, जो तुम्हारे अंतरतम हृदय में भविष्य की आशा-रूप निगूढ़ हो, और उसके बाद चुप हो जाओ, तो मैं वह वाक्य यहीं कहूँगी—'तुम्हीं भविष्य की आशा हो'।"

सन् १९२२ में, अहमदाबाद के विद्यार्थियों की एक कानफ़ेंस में, सभानेत्री के पद से आपने यही अंतरतम इच्छा दूसरे शब्दों में इस प्रकार प्रकट की थी—

"मैं अपने जीवन की सर्वोच्च महिमा तथा सिद्धि इसी में समझूँगी कि मेरी समाधि के शिला-लेख पर ये शब्द अंकित किए जायँ—भारत की नई पीढ़ी से इसे प्रेम था; उसी पर इसको विश्वास था; इसी के साथ इसने काम किया, और उसी के सहयोग से इसने भारत की स्वतंत्रता प्राप्त की।"

सरोजिनी की यह प्रबल इच्छा है कि हमारे नवयुवक भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उन्नति प्राप्त कर अपने देश की यशोवृद्धि करें। परंतु सबसे बड़ी बात यही है कि वे देश के प्रति अपने कर्तव्य को क्षण-भर के लिये भी न भूलें। मदरास के छात्रों की एक सभा में आपने कहा था—

"तुमने महत् आदर्शों को पूर्वजों की थाती के रूप में पाया है। तुम पर बड़े-बड़े कर्तव्यों का भार है। तुम्हारा बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। इससे प्रयोजन नहीं कि तुम कहाँ हो, कौन हो, और क्या काम करते हो। गली में झाड़ू देनेवाला भी देश-भक्त हो सकता है। उसमें भी तुम एक ऐसा उत्तेजक भाव पा सकते हो, जिससे तुम्हारे मन को उच्च प्रेरणा प्राप्त हो सके। तुम चाहे जैसे दीन और अकिंचन हो, जो भार तुम्हारे ऊपर है, उसे टाल नहीं सकते। यह भार तुम्हारे ही वहन करने का है, अतएव तुममें से प्रत्येक इसके लिये बाध्य है कि वह अपना जीवन देश-सेवा में लगावे।"

आपके एक दूसरे व्याख्यान में भी यही तात्पर्य प्रकट होता है—

"जीवन में तुम्हारा चाहे जो क्षेत्र हो, तुम चाहे कितने ही दीन और अकिंचन हो, मगर इस बात को स्मरण रक्खो कि उस महान् सामाजिक व्यवस्था के, जिससे एक देश राष्ट्र बनता है, तुम एक अनिवार्य अंग हो। मैं चाहती हूँ, तुम सब यह स्मरण रक्खो कि किसी देश के महत्त्व के 'कारण' या 'आधार' उस देश के बड़े-बड़े लोग ही नहीं, बल्कि वे साधारण मनुष्य भी होते हैं जो अपने दैनिक जीवन में पवित्रता, सचाई, और साहस के साथ आचरण करते रहते हैं, जो प्रत्येक मनुष्य को वह चाहे किसी जाति या वर्ग का क्यों न हो, उसे जन्म-सिद्ध अधिकार दिलाने में सहायक होते हैं।"

सरोजिनी युवकों को आदर्शों की कल्पना में रत रहने का उपदेश दिया करती हैं। उनका विश्वास है कि आज देश के नवयुवक जिन आदर्शों की कल्पना करेंगे, वे ही कल फलीभूत होंगे। परंतु साथ ही उनका यह भी उपदेश होता है कि ये कल्पनाएँ युवकों को अपने स्वार्थ-लाभ के लिये नहीं, देश-सेवा और समाज-सेवा के लिये करनी चाहिए।

आप केवल युवक छात्रों को ही महान् आदर्शों के प्रति नहीं प्रेरित करतीं, वरन् उनके प्रौढ़ अध्यापकों को भी प्रेरित करती हैं। श्रीमती को प्रायः नित्य ही शिक्षकों से विचार-विनिमय का अवसर मिलता रहता है। आप अध्यापकों को भी उन्हीं भावों से अनुप्राणित करना चाहती हैं, जो स्वयं उनके हृदय में हैं। मदरास प्रांत में, सन् १९१७ में, आपने 'गुरु-जीवन के आदर्श

विषय पर एक बड़ा ललित और प्रभावशाली व्याख्यान दिया था। आपने इस व्याख्यान में, वर्तमान युग की शिक्षा-प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए, शिक्षकों को भारत के प्राचीन आदर्शों की स्मृति दिलाई थी। आपने कहा था—

"वर्तमान-काल की शिक्षा में, विशेष कर भारतवर्ष में, हम लोग इस बात का ध्यान नहीं रखते कि जिस शिक्षा को अध्यापक पाठ्य पुस्तकों द्वारा देते हैं—जो इतिहास की घटनाएँ तथा भूगोल की बातें बतलाते हैं—उससे कहीं अधिक महत्त्व की शिक्षा वह है, जो विद्यार्थियों को उनके संसर्ग तथा व्यक्तिगत प्रभाव से प्राप्त होती हैं। यह व्यक्तिगत प्रभाव हमारी आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में सर्वत्र शून्य-प्राय है। अपनी भारत की यात्राओं में मैं इस बात का विशेष ध्यान रखती हूँ कि शिक्षा के केंद्रों के संसर्ग में आऊँ, और उनके हाल-चाल जानूँ। मैंने यह अनुभव किया है कि शिक्षकों का सम्मान कम है, और वे स्वयं अपना सम्मान यथोचित नहीं करते। शिक्षक का महत्त्व उस सम्मान से अधिक नहीं जाना जाता, जो कि अन्य लोग उसके प्रति प्रदर्शित करते हैं, वरन् उस आत्म-सम्मान से उसकी माप होती है, जिसे वह अपने उद्देश्य पर लक्ष्य रखते हुए स्वयं अपने हृदय में रखता है।"

फिर कहती हैं—

"शिक्षक का कार्य क्या है? वह स्वयं अपने आसन पर बैठा तो रहता है; परंतु अपने देश की भिन्न-भिन्न प्रकार से सेवा करता है। वह राजनीतिज्ञ, कवि, वैज्ञानिक, और व्यवसायी भी है, जैसा कि स्टिवेंसन ने अपने एक संगीत में कहा है—'तलवार का बनानेवाला अपनी भट्टी के पास बैठा रहता है; परंतु साथ-ही-साथ जहाँ-जहाँ उसकी तलवार जाती है, वहाँ-वहाँ वह यात्रा करता है।' वास्तव में तलवार का बनानेवाला ही युद्ध करता है। इसी प्रकार एक मनुष्य—एक शिक्षक—भिन्न-भिन्न रूप से देश की सेवा करता है; क्योंकि वह देश के लिये सैनिक, राजनीतिज्ञ, विद्वान्, व्यवसायी, वकील तथा अन्य लोगों को तैयार करता है, जो कि विविध क्षेत्रों में देश का कार्य करते हैं। हमारा प्राचीन आदर्श यह था कि गुरु सरस्वती की सेवा में लगे रहकर स्वेच्छा-पूर्वक लक्ष्मी से मुख मोड़ता और स्वयं दारिद्र्य को अपनाता था। इसका भाव क्या था? भाव यही था कि गुरु की आत्मा सांसारिक लोभों से अलिप्त रहकर अपने चेलों के लिये ज्ञान-पीयूष प्राप्त करे। × × × मैं यह भी चाहती हूँ, आप लोग इस पर विचार करें कि गुरु किसी जाति अथवा वर्ग-विशेष के कल्याण के लिये नहीं होता; उसका एक आध्यात्मिक साम्राज्य अलग ही है, और उसका कार्य मानव-मात्र के लिये है।"

१९२४ में श्रीमती सरोजिनी नायडू

राष्ट्रीय शिक्षा के बारे में भी सरोजिनी सचिंत तथा

सचेष्ट हैं । परंतु राष्ट्रीय शिक्षा की वर्तमान अवस्था पर बहुत दुःखी हैं । वह हमारी राष्ट्रीय शिक्षा को सरकारी स्कूलों तथा कॉलेजों की शिक्षा की त्रुटि-पूर्ण नक़ल नहीं बनाना चाहतीं । उनका उद्देश्य बहुत ऊँचा है । आपने दक्षिण के अपने एक व्याख्यान में, १९२३ में, कहा था —

"भारत में राष्ट्रीय शिक्षा की क्या अवस्था है ? मेरी समझ में हमारी राष्ट्रीय शिक्षा अब तक बिलकुल असफल रही । यही नहीं, हमारी अधिकांश जातीय पाठशालाएँ सरकारी पाठशालाओं की अपेक्षा कुछ अधिक गंदी भी रही हैं; उनकी पढ़ाई सरकारी स्कूलों की पढ़ाई की अपेक्षा कुछ गिरी हुई रही है; नियम-पालन की दशा और भी बुरी रही है, और विद्यार्थियों तथा उनके शिक्षकों में उच्छृंखलता की मात्रा अधिक पाई गई है । यह क्यों ? उनकी यह धारणा रही है कि अब तो हम स्वराज्य लेने जा रहे हैं; हमें किसी की आज्ञा का पालन करने की आवश्यकता ही क्या ? मैं इन बातों की कल्पना नहीं कर रही हूँ । मेरे पैरों में चक्र है, मैंने भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण किया है । सर्वत्र यही अवस्था देखकर बहुत दुःख होता है । कारण, इससे यह पता चलता है कि हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अभी अयोग्य हैं ।"

सरोजिनी अपनी त्रुटियों की कठोरतम आलोचना करने से नहीं चूकतीं । परंतु उक्त व्याख्यान ही में आपने राष्ट्रीय शिक्षा के वास्तविक आदर्शों को भी हमारे सामने रक्खा है । आप कहती हैं—

'राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य ऐसे भारतीय राष्ट्रवादियों को उत्पन्न करना है, जो भारतीय सभ्यता का पूर्ण ज्ञान रखते हुए हमारे समाज के पथ-प्रदर्शक बनें । हमें अपने इतिहास और अपनी प्राचीन परंपरा का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए । परंतु हममें ऐसा भाव न आना चाहिए, जिससे हम आधुनिक संसार की सिद्धियों का परित्याग कर दें । मेरी समझ में तो राष्ट्रीय शिक्षा का तात्पर्य यह होना चाहिए कि वह भारतवासियों को प्रत्येक बात में अंतरजातीय बनने का सुअवसर दे । हमें विदेशी विचारों को ग्रहण करके उन्हें भारतीय आवश्यकताओं के अनुसार उपयोग में लाना चाहिए । ये विचार चाहे समाज-संबंधी हों, चाहे अर्थ-शास्त्र-संबंधी, और चाहे विज्ञान तथा युद्ध-कौशल-संबंधी ।"

इससे स्पष्ट हो जायगा कि श्रीमती राष्ट्रीय शिक्षा का संकुचित अर्थ [illegible] ग्रहण करतीं, और उनका आदर्श बहुत ऊँचा है ।

रामचंद्र टंडन

घृणा

(१)

रुककर—ठहरो हृदय ! क्रांति की यह उपासना
वर्जित है, है विश्व-प्रेम का सदन निरंतर !
घृणा ! क्या कहा—घृणा ! नरक की विषम-भावना ;
पतित हृदय की नीच वासना पातक गुरुतर ।

यह नीरस उद्गार, वास्तविकता का यह स्वा
और प्रकृति के अमिट नियम का रूप भयंका
आडंबर से पूर्ण, उपेक्षा से है निंदित
"घृणा घृणित है !" गूँज रहा है व्यंग्य निरंतर

(२)

दार्शनिक—यह अप्राकृतिक भाव,
अचल विश्वास—स्वर्ण अक्षर;
विकृत आदर्शवादयुत भ्रांति—
रुदन के शुष्क हास्य का स्वर;
उच्च आकांक्षा का उल्लास ?
ढोंग है—है यह आडंबर !

घृणा, तुझको कहते हैं पाप;
विश्व तुझको देता है शाप ।
पाप से प्रेम—पाप से घृणा,
एक है पुण्य—दूसरा पाप !
इसी को तो कहते हैं न्याय—
न्यायियों का है यही प्रलाप !

(३)

ऐ समाज की तीव्र गरल-सी समालोचना !
अए धर्म के असहनीय कटु ग्रंथित बंधन !
अए नियम के आलंबन की तुम कठोरता !
ऐ अशांति से पूर्ण नरक-भय के दिग्दर्शन !

प्रेम-भाव से पूर्ण स्वर्ग के तुम गायन
हो निःसीम मुक्ति की गरिमा के मीठे स
तुम अनंत की व्यापकता की मृदु-प्रतिध्वनि
और "घृणा है पाप !" न्याय यह कैसा सुंद

(४)

आह रे न्याय !—आह रे न्याय !!
विश्व की निर्दयता के व्यंग !
पतित दूषित समाज की एक
ढोंग— आडंबर-पूर्ण उमंग ।
लोक-प्रियता का क्षणिक उफान,
और समता की तरल तरंग ।
दार्शनिक, ये तेरे सिद्धांत—
भ्रांति ही है इनका आधार ।
धर्म-भ्रम— अस्वाभाविक भाव,
अंध- विश्वास-पूर्ण अविचार !
"क्या कहा नास्तिक !" कैसा प्रश्न !
उठो अंधे, देखो संसार !

(५)

बिना शोक का हर्ष सदा है निपट निरर्थक;
नीरवता यदि न हो, कौन समझेगा फिर रव ?
है विषाद जब, तभी हुआ उल्लास सार्थक;
यदि न घृणा हो, प्रेम-भाव तो हुआ असंभव !
कायरता से वीर, न्याय से अत्याचारी—
सब करते हैं घृणा, पाप से पावन ऋषिवर ;
फिर भी ठहरो हृदय ! सुनो इन उद्गारों को—
"घृणा घृणित है"—गूँज रहा है व्यंग्य निरंतर ।

भगवतीचरण वर्मा

मराठी-साहित्य पर हिंदी का प्रभाव

भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रदेश एक दूसरे से कितनी ही असमानता क्यों न रखते हों, पर हिमालय से रामेश्वर तक या द्वारका से कामाक्षा तक की भूमि एक ही धार्मिक परंपरा से संबद्ध है। भगवान् राम, कृष्ण, अर्जुन, बुद्ध, अशोक, शंकराचार्य इत्यादि के विषय में जो आदर-भाव उत्तर में है, वही दक्षिण में भी ; इन्हें जो गौरव गुजरात में प्राप्त होता है, वही बंगाल में भी । इस प्रकार का घनिष्ठ संबंध सनातन-काल ही से चला आ रहा है। परंतु जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य के समय में सारे भारतवर्ष में धार्मिक जागृति की जो एक ज़ोर की लहर उठी, उसने एकता के भावों को और भी उत्तेजित कर दिया। श्रीशंकराचार्यजी ने अपने संप्रदाय में ज्ञान और भक्ति का ऐसा कुछ मधुर सामंजस्य कर दिया था, जिससे इस्लाम-धर्म के कठोर आघातों को सहकर भी हिंदू-धर्म में जीवित रहने की शक्ति आ गई। लेकिन स्वयं जगद्गुरु का झुकाव ज्ञान-मार्ग की ओर था। यह सबको विदित है कि सर्व-साधारण के लिये ज्ञान-मार्ग सहज नहीं हो सकता। अतः भक्ति-मार्ग ज़ोर पकड़ने लगा, और शीघ्र ही सारे देश को हिला दिया। पहलेपहल तो भागवत-संप्रदायों में केवल उच्च जाति ही के लोगों को प्रवेश मिलता था; परंतु स्वामी रामानंद-जैसे आचार्यों ने रैदास चमार, धना जाट, सेना नाई, कबीर जुलाहे आदि नीच समझी जानेवाली जातियों के भक्तों को अपनाकर भक्ति-धर्म का महत्त्व और भी बढ़ा दिया।

अशिक्षित परंतु सहृदय लोगों के आध्यात्मिक संतोष का ऐसा उत्तम साधन प्राप्त होते ही देश-भर में भक्ति-पूर्ण गीतों की गूँज उठने लगी। उच्च वर्ण के व्यक्तियों के रहते 'भाषा' के संसर्ग से धर्म को अपवित्र करने का दुःसाहस किसी को न होता था; परंतु अब समय ने पलटा खाया, और भारत की वर्तमान भाषाओं का साहित्य निर्माण होने लगा।

हमें यह मानना पड़ेगा कि इस भागवत-धर्म के मूल-प्रवर्तक दक्षिण ही से आए थे। माध्वाचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य प्रभृति दक्षिण-देश ही के निवासी थे। परंतु भारतवर्ष की धार्मिक परंपरा तो सनातन-काल से पवित्र समझी जानेवाली गंगा-यमुना की भूमि ही से संबद्ध थी, और भगवान् कृष्ण तथा मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचंद्रजी के जीवन की लीलाएँ उत्तर ही में हुईं। अतः दक्षिण के ये आचार्य व्रजभूमि या कोशल की ओर खिंच पड़े, और वहीं उन्होंने अपने मठ स्थापित किए।

अब हम यदि महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति पर विचार करें, तो मालूम होगा कि दक्षिण-उत्तर के इस धार्मिक आदान-प्रदान से यह मध्य-स्थित प्रदेश भी अवश्य प्रभावित हुआ। दक्षिण से तामिल और कानडी तथा

उत्तर से हिंदी एवं गुजराती का संसर्ग होने के कारण यह असंभव था कि महाराष्ट्र इनमें से किसी एक के भी प्रभाव से बच जाता। हमें इन सबसे यहाँ मतलब नहीं। हम तो केवल यही देखेंगे कि मराठी पर हिंदी के संघटन का क्या परिणाम हुआ। एक बात और हम यहाँ बतला देना आवश्यक समझते हैं। हमने अपने लेख की काल-मर्यादा १८४७ विक्रम-संवत् तक ही रक्खी है; क्योंकि इसके बाद से गद्य-काल का आरंभ हो जाता तथा भारतीय भाषाओं के साहित्य को वर्तमान रूप प्राप्त होने लगता है।

संगठित भक्ति-धर्म के भाव भले ही दक्षिण से आए हों, पर उत्तर के लोगों ने उन्हें शीघ्र ही अपना लिया। इतना ही नहीं, यहाँ के हिंदी-भाषी आचार्यों ने उत्तर-भारत के धार्मिक मार्ग-दर्शक बनने का गौरव भी प्राप्त कर लिया। महाराष्ट्र-साहित्य के प्रारंभिक काल में तो हम इसका बिलकुल स्पष्ट प्रमाण पाते हैं।

महाराष्ट्र के सर्वप्रथम कवि हैं श्रीमुकुंदराज स्वामी। आपका समय १२४९ समझा जाता है; परंतु हमें तो यह स्वामी रामानंद के समकालीन जान पड़ते हैं। महाराष्ट्र-साहित्य का कुछ थोड़ा-सा ही अवलोकन करने पर हमें रामानंदजी का समय कुछ पीछे हटाने की आवश्यकता मालूम पड़ने लगी। अस्तु, इन मुकुंदराज स्वामी ने अपनी गुरु-परंपरा का वर्णन इस प्रकार किया है—

"आद्य श्रीगुरुनाथू; तेथोनि श्रीहरिनाथू। तयाचा शिष्य श्रीरघुनाथू; ज्ञान-गुण-समुद्र।"

अब मिश्रबंधुओं ने श्रीरामानंदजी की जो गुरु-परंपरा दी है, उसे भी देखिए।

रामानुजाचार्य—हरिनंद और राघवानंद—रामानंद, दोनों में कितनी आश्चर्य-जनक समता है। हमारा अनुमान है कि मुकुंदराज स्वामी के 'आद्य श्रीगुरुनाथू' रामानुजाचार्य ही थे। इस प्रकार महाराष्ट्र के सर्वप्रथम कवि काशी-निवासी राघवानंद के शिष्य एवं रामानंद के गुरु-भाई थे। मुकुंदराज का 'विवेक-सिंधु'-नामक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। परंतु वर्तमान ग्रंथ की भाषा बहुत आधुनिक जँचती है। तो भी हम इस ग्रंथ में मराठी-साहित्य पर हिंदी-प्रभाव के चिह्न देख सकते हैं।

"माझें तेज प्रकटेल, तैं तुझिया वदनीं प्रवेशैल;
तें शिष्यि देहीं संक्रमैल, गुरुवाक्य द्वारें।"

ऐसे रूप पुरानी मराठी में बहुत मिलते हैं।

मुकुंदराज के बाद हम श्रीज्ञानदेव की गुरु-परंपरा में भी उत्तर का प्रभाव पाते हैं। इन्होंने अपने बड़े भाई निवृत्तिनाथजी से दीक्षा ली थी। इनके गुरु थे श्रीगियानीनाथ। यह गियानीनाथ श्रीगोरखनाथजी के चेले थे। गोरखनाथजी के ३७ हिंदी-ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। आपके ६ संस्कृत-ग्रंथ भी उपलब्ध हैं; और जान पड़ता है, आपको मराठी का भी अच्छा ज्ञान था। इनका 'अमरनाथ-संवाद'-नामक एक छोटा-सा मराठी-ग्रंथ भी प्राप्त हुआ है। साथ ही कुछ मराठी-पद भी मिले हैं। इनकी मराठी-कविता का नमूना देखिए—

गंगेचें उदकें; स्नान पैं कीजे।
बाहिर पखालिताँ: भितर कंवि भीजें।
सजिवें तोडुनि बावु; निजिवें पुजिती।
कर्मे करुनि प्राणि; कंवि उद्धरती।
येहि विधिहें जग; पडियेले धांदा।
आत्मलिंग हृदयीं; कोई न बुझती अंधा।

इन पद्यों में हिंदी का प्रभाव कोई भी देख सकता है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह भाषा स्वामी ज्ञानदेव से पहले की है।

ज्ञानदेवजी की भाषा अत्यंत शुद्ध है। आगे की साहित्यिक भाषा का विकास इन्हीं की रचना से हुआ है। इनके समय से भाषा में एक प्रकार की स्थिरता आने लगी। अतः इनके विचारों पर गोरखनाथ और गियानीनाथजी जो कुछ प्रभाव डाल गए हों, उतने ही का परोक्ष संबंध हम हिंदी से जोड़ सकते हैं। अन्यथा इनकी रचना बिलकुल ही स्वतंत्र है।

हमें पहले ज्ञात होता था कि अपनी उत्तर-भारत की यात्रा में ज्ञानदेवजी ने भुआल-कवि के गीतानुवाद की बातें सुन ली होंगी, जिससे श्रीमद्भगवद्गीता का अर्थ-ग्रंथ मराठी में भी सुलभ कर देने का उत्साह उन्हें हो आया होगा। परंतु मिश्रबंधुओं ने भुआल-कवि के ग्रंथ से जो अवतरण दिया है, उसे देखकर तो ग्रंथ का समय संवत् १००० मान लेने के लिये बुद्धि सहसा तैयार नहीं होती। हमारा अनुमान है, वह ग्रंथ पंद्रहवीं शताब्दी के पूर्व का नहीं है। अस्तु, मतलब यह कि श्रीज्ञानदेवजी पर किसी प्रकार का बाहरी प्रभाव पड़ा-सा नहीं ज्ञात होता।

गुरु-परंपरा के प्रभाव का तीसरा उदाहरण है महाराष्ट्र

कवि नाभा-विष्णुदास की। आप प्रसिद्ध भक्त नामदेव से पृथक् व्यक्ति हैं। अभी कुछ दिन पहले तक महाराष्ट्र-साहित्य-विशारद इन दोनों को एक ही समझते थे। किंतु शैली एवं भावों के गंभीर निरीक्षण से अब इनका भिन्न होना प्रमाणित हो गया है। 'महाराष्ट्र-सारस्वत' के रचयिता श्रद्धेय भावेजी इनके गुरु का नाम चिंतामणि बतलाते हैं। प्रमाण-स्वरूप आपने एक अवतरण देकर यह भी लिखा है कि 'चिंतामणि गुरु' का उल्लेख बहुत से पर्वों में पाया जाता है। परंतु हम समझते हैं, इनके गुरु का नाम 'विष्णुदास' ही होना चाहिए। संक्षेप में हमारे प्रमाण ये हैं—

महाराष्ट्र में भक्त कविगण बहुधा अपने नाम के साथ अपने गुरु का भी नाम जोड़ दिया करते हैं। उदाहरणार्थ, अपने गुरु जनार्दन को आदर देने के लिये श्रीएकनाथजी अपने को 'एका-जनार्दन' कहा करते थे। इसी प्रकार और भी कई उदाहरण पाए जाते हैं। इन्होंने अपने को नाभा-विष्णुदास, विष्णुदास-नाभा, नाभा-पाठक या नामदेव, ये चार उपनाम दिए हैं। अतः स्पष्ट ही है कि इनका नाम तो है नामदेव ; परंतु गुरु के कारण इन्होंने अपने को विष्णुदास-नाभा कहा है। फिर हम इनके कई अभंग ऐसे पाते हैं, जिनके अंत में 'नाभा म्हणे विष्णुदासाचाँ' यह है। इसका अनुवाद हिंदी में होगा—विष्णुदास का नाभा कहता है या विष्णुदासजी के शिष्य नामदेव कहते हैं। अस्तु, इसमें संदेह नहीं रह जाता कि 'विष्णुदास' व्यक्तिवाचक संज्ञा है, परंतु इसी के विरुद्ध चिंतामणि 'गुरु' का विशेषण माना जा सकता है। महाराष्ट्र-संतों ने तो गुरु के लिये इस शब्द का प्रयोग बहुत बार किया है। महाराष्ट्र-संतों की माला में 'विष्णुदास'-नाम हमने नहीं देखा। परंतु इसी समय हम ग्वालियर में भी कोई विष्णुदासजी का उल्लेख पाते हैं। हमारे विचार में यही नाभा-पाठक के गुरु थे। यह कोरा अनुमान है। इस प्रकार के संदेह का कारण यही है कि उपर्युक्त विष्णुदासजी के जो ग्रंथ प्राप्त हुए हैं, उनमें और नामदेवजी के ग्रंथ में आश्चर्य-जनक नाम-सादृश्य है। दोनों ने महाभारत का अनुवाद किया है ; दोनों ने स्वर्गारोहण-पर्व स्वतंत्र लिखा है। इस प्रकार ग्रंथों के नाम एवं गुरु के अभिधान को अपने नाम में मिला लेना, दोनों हमारे कथन का समर्थन करते हैं।

नामदेवजी पर हिंदी का प्रभाव पड़ा है, इसका एक और प्रमाण हम देंगे। इन्होंने एक 'बुधबावनी' लिखी है। इसमें 'अ' से लेकर 'ज्ञ' तक सभी अक्षरों से आरंभ होनेवाले पद्यों का क्रमबद्ध संग्रह है। इस प्रकार की यह 'बावनी' मराठी में पहली ही है। परंतु हिंदी में इसके बहुत पहले से इस प्रकार के चित्र-काव्यों का प्रचार था। ककहरे, अलिफ़नामे या अखरावट मेरे विचार में हिंदी ही से मराठी में आए हैं। हमें यह ज्ञात नहीं कि ग्वालियर के विष्णुदासजी ने भी कोई ककहरा लिखा है या नहीं। परंतु यदि लिखा हो, तो यह गुरुशिष्य-संबंध और भी दृढ़ता से जोड़ा जा सकेगा। अस्तु, एक और प्रमाण हम पाठकों के सामने रक्खेंगे। इस 'बुधबावनी' के अंत में ग्रंथ के समय का उल्लेख इन शब्दों में है—"स्वस्त १६३३ वरदयै माहासुदी १४ सैकु लिपितं।" महाराष्ट्र में विक्रम-संवत् का उपयोग करनेवाले यही एक-मात्र कवि हैं। संवत् का प्रयोग सदा से उत्तर-भारत ही में अधिक रहा है। अतः नामदेवजी का उत्तर से बहुत घनिष्ठ संबंध रहा होगा। फिर 'लिपितं' अपनी कैफ़ियत अलग ही दे रहा है। ग्वालियर की पोशाक भी बेचारा नहीं उतार पाया। इस प्रकार पाठक देखेंगे कि नाभा-पाठक की रचना पर हिंदी का कैसा प्रभाव पड़ा है।

शिष्य-समुदाय पर गुरु के विचारों का कैसा प्रभाव पड़ता है, यह बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं। इसी से समता रखता हुआ प्रभाव है संतों का सहवास। हमारे देश में तीर्थ-यात्रा की प्रथा बहुत पुरानी है। परंतु इसे उपर्युक्त धार्मिक जागृति ने और भी उत्तेजित किया। महाराष्ट्र का पंढरपुर, बंगाल की जगन्नाथपुरी, सौराष्ट्र का डाकोर इत्यादि इसी प्रवृत्ति के स्थानिक उदाहरण हैं। परंतु गोकुल-वृंदावन या वाराणसी-जैसे सार्वदेशिक तीर्थस्थानों का पर्यटन कर अपने भक्ति-भावों को दृढ़ करने की महत्त्वाकांक्षा भी बहुत-से कवियों ने पूरी कर ली। इन धार्मिक केंद्रों में आते ही यहाँ के साधु-महंतों तथा उनकी भाषा का कुछ-न-कुछ प्रभाव इन यात्रियों पर अवश्य ही होता था। इस प्रभाव के उदाहरण महाराष्ट्र में अनेक हैं। पहले हम भक्त-श्रेष्ठ नामदेवजी को लेंगे। आप श्रीज्ञानदेव स्वामी के प्रभाव की कक्षा में थे। अतः स्वाभाविक तो यह था कि नामदेवजी की कविताओं

पर इनके विचारों का प्रतिबिंब पड़े ; परंतु इन दोनों की भक्ति में एक अत्यंत स्पष्ट भेद यह है कि ज्ञानदेवजी ने ज्ञान-जन्य भक्तियोग को अधिक महत्त्व दिया है, और श्रीनाभदेव की रचना में भाव-युक्त भक्ति का प्राधान्य पाया जाता है। इस पृथक् धारा की व्याख्या करना तब तक असंभव है, जब तक हम नाभदेवजी का संबंध इस प्रकार की भक्ति के मूल-अधिष्ठान उत्तर-भारत से नहीं जोड़ देते।

"पृथ्वी चीं तीर्थें करावीं समस्त पाहावे महंत साधुजन।"

इस प्रकार ज्ञानदेवजी का आदेश पाने पर नाभदवे ने उनके साथ समस्त भारत का पर्यटन किया। फल यह हुआ कि उनकी स्वाभाविक भावोत्कटता ने और भी ज़ोर पकड़ा। आप संस्कृत के पंडित तो थे नहीं ; अतः इस पर्यटन में उनके लिये विचार-विनिमय का एक-मात्र साधन हिंदी ही थी। इनकी भावोत्कटता, विरह-वेदना तथा अत्यंत सरल भाषा की सर्व-परिचित उपमाओं से गंभीर आध्यात्मिक ज्ञान-बोध करने की शक्ति हम महात्मा कबीर में भी पाते हैं। दोनों समकालीन थे। दोनों पर हमारे विचार में उत्तर के संतों का प्रभाव पड़ा।

इस पर्यटन का दूसरा फल यह हुआ कि महाराष्ट्र-भक्त-कवियों में हिंदी के प्रति प्रेम हो आया। वे हिंदी में भी आत्माभिव्यंजन का परिचय देने लगे। स्वर्गीय श्रीजगन्मोहन वर्माजी ने लिखा है—"मुसलमानों के पीछे अठारहवीं शताब्दी तक एक ऐसा समय था, जब जैसे फ़ारसी पढ़ना शिक्षित समुदाय के लिये ज़रूरी हो गया था, वैसे ही हिंदी-भाषा में कविता करना कवि होने का प्रधान चिह्न समझा जाता था।" हमें इस कथन के मान लेने में केवल एक ही आपत्ति है, और वह यही कि किसी भी सच्चे भक्त के मुँह से हृदय के उद्गार यदि निकल पड़ते हैं, तो 'कवि' की उपाधि से विभूषित होने की इच्छा से नहीं, प्रत्युत इसीलिये कि वे हृदय में रह नहीं सकते। मनुष्य की रागात्मकता इतनी प्रबल होती है कि वह अधिक-से-अधिक व्यक्तियों से एकरूप होना चाहता है। हमारे विचार में आत्माभिव्यंजन की उत्कटता ही ने भक्तजनों को हिंदी में कविता करने के लिये बाध्य किया। हाँ, जब लोगों के चित्त भक्ति-भाव से रिक्त हो गए या जब इन भावों की प्रबलता कम हो गई, तब भले ही लोग कवि कहलाने की लालसा से हिंदी में पद्य-रचना करने लगे हों। अस्तु, कहने का अभिप्राय यह कि श्रीनाभदेवजी ने महाराष्ट्र में एक नई प्रथा-सी प्रचलित कर दी। उन्होंने स्वयं हिंदी में कविताएँ की हैं, जिनका एक संग्रह सिक्खों के आदि-ग्रंथ में पाया जाता है—

अभिअंतर काला रहै, बाहेर करै उजास ;
'नाम' कहै हरि-भगति बिनु, निहचै नरक-निवास।
अभिअंतर राता रहै, बाहेर रहै उदास ;
'नाम' कहै मैं पाइयो, भाव-भगति-बिसवास।

का ले आरति दास करै, तीनि लोक जाकी जोति भरै।
कोटि भान जाके नख की सोभा, कहा भयो कर दीप फिरै।
सात समद जाके चरन निवासा, कहा भयो जल-कुंभ भरै।

इनके अनंतर श्रीएकनाथजी का समय आता है। आपने भी बहुत दिनों तक काशी में निवास किया ; परंतु संस्कृत के अच्छे ज्ञाता होने के कारण इनकी रचना पर हिंदी का कोई प्रभाव पड़ा-सा नहीं दिखलाई देता। हाँ, आपने हिंदी में कविताएँ अवश्य की हैं। खेद है, हम उन पद्यों का नमूना नहीं देख सके। श्रीमहीपतिजी ने अपने 'भक्त-विजय'-ग्रंथ में एकनाथजी का चरित्र लिखा है। उसमें एक प्रसंग यों है—एकनाथजी जब अपने गुरु की शरण में गए, तो कुछ ही दिनों में उन्होंने जनार्दन स्वामी को प्रसन्न कर लिया, यहाँ तक कि उपास्य देवता श्रीदत्तात्रेय के दर्शन कराने का अभिवचन भी एकनाथजी को मिल गया। दोनों अरण्य में गए। वहाँ अकस्मात् अनसूया-सुत श्रीदत्तात्रेयजी प्रकट हुए। श्री-जनार्दन स्वामी ने उन्हें प्रणाम किया। फिर—

"यवन-भाषेनें अनसूया-सुत ; जनार्दनाशीं गोष्ठी बोलत।
हें दृष्टी सी देखतां एकनाथ ; आश्चर्य करितां यानसीं।"

अब यदि यह देखा जाय कि 'यवन-भाषा' से किस भाषा का अभिप्राय हो सकता है, तो हमें ज्ञात होगा कि हिंदी के अतिरिक्त उस समय की दूसरी कोई भाषा यवन-भाषा नहीं हो सकती। अतः हम यह भी कह सकते हैं कि इसके बाद एकनाथजी ने हिंदी का अध्ययन अवश्य किया होगा। इस प्रकार इस उत्तरीय या यवन-भाषा की ओर एकनाथजी बहुत पहले से आकृष्ट हुए जान पड़ते हैं।

पर्यटन के कारण हिंदी की ओर आकृष्ट हुए कवियों में एक मुकुंद भी हैं। इनका संवत् १७५८ में गुरुमंत्र लेना पाया जाता है। 'मिश्रबंधु-विनोद' में भी एक मुकुंद कवि का उल्लेख है। उसमें इनका जन्म १७०५, तथा

कविता-काल १७३० दिया है। दोनों का एक ही व्यक्ति होना असंभव नहीं। महाराष्ट्रीय मुकुंद औरंगज़ेब के शाहज़ादे मुअज़्ज़म के यहाँ नौकर थे। यहाँ कुछ धन जोड़कर आपने तीर्थ-यात्रा की। इस तीर्थ-यात्रा का वर्णन आपने मराठी में कविता-बद्ध भी किया है। सुना है, इन्होंने निमाड़ी, गुजराती, मारवाड़ी, व्रजभाषा इत्यादि में भी कविताएँ की हैं।

एक बार हिंदी-पद्य-रचना की प्रथा चल पड़ने पर महाराष्ट्र के बाहर न जानेवाले कवियों ने भी हिंदी-प्रेम का परिचय दिया है। इनमें हम प्रसिद्ध संत तुकाराम की गणना करते हैं। आप महाराष्ट्र-इतिहास के ऐसे काल में रहे हैं, जब इस देश में स्वाभिमान की मात्रा खूब ही बढ़ी हुई थी। समर्थ श्रीरामदास स्वामी तथा स्वराज्य-संस्थापक श्रीशिवाजी भी इसी समय हुए हैं। इस समय महाराष्ट्र में व्यापकता के स्थान पर घनिष्ठता आ गई थी। तो भी संत तुकाराम का झुकाव आध्यात्मिक विषयों ही की ओर होने के कारण उन्होंने [illegible] दी-पद-रचना की है।

समर्थ श्रीरामदास स्वामी ने हिंदी में कोई पद्य-रचना की है या नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता*; परंतु इनका शिष्य-संप्रदाय शीघ्र ही हिंदी की ओर झुकने लगा। संप्रदाय में स्त्रियों का भी प्रवेश हो गया था। अनेक विदुषी इनके विद्यापीठ में निवास करके ज्ञान प्राप्त करती थीं। इन्हीं में हम एक बयाबाई का वर्णन पाते हैं। बयाबाई ने हिंदी में बहुत ही मनोहर कविता की है। एक उदाहरण देखिए—

> बाग रँगेली महल बना है;
> महल के बीच में झुलना खुला है।
> इस झुलने पर झूलो रे भाई;
> जनम-मरन की भूल न आई।
> 'दास बया' कहे गुरु मैया ने;
> मुझको झुलाया सोहि झुलाने।

इसे देखकर हिंदी के व्यापक प्रभाव का गर्व होने लगता है।

श्रीएकनाथजी के समकालीन जनी-जनार्दन का विवरण तो इनके पहले ही आ जाना चाहिए था। इनकी हिंदी-कविता का नमूना देखिए—

> जब तूँ आया ; तब क्या लाया ?
> क्या लिजावेगा ; किने भुलाया ?
> झूठा धंदा पडिया फंदा ; देखत क्यों हो अंधा ?
> कहत जनार्दन, सुन अरे मन ;
> न भूल, न छोड़ रे, उस साईं के चरन।

स्वभावतः ही भाषा पुरानी है ; क्योंकि जनी-जनार्दन का समय संवत् १६२८ तक है। उपर्युक्त पद्य का तीसरा चरण हमें श्रीगोरखनाथजी के इस पद्य का स्मरण दिलाता है—

> येहि विधि हैं जग, पडिए लें धांदा ;
> आतमलिंग हृदयीं, कोई न बुझती अंधा।

अमृतराय कवि भी इसी श्रेणी में आ सकते हैं। आपका जन्म संवत् १७५५ में हुआ था। आपके काव्य एक प्रकार के शब्दालंकार-युक्त चित्र ही हुआ करते थे। आपका 'हरिकथा-संकीर्तन' बहुत ही चित्ताकर्षक हुआ करता था। कीर्तन में आप स्वयं अपनी रचना का भी उपयोग किया करते थे। इनका एक आशीर्वादात्मक हिंदी-पद हम नमूने के तौर पर देते हैं—

> तुम चिरंजीव कल्याण रहो, हरिकथा सुरस पीवो ;
> हरिकीर्तन के साथी सज्जन, बहुत बरस जीवो।
> ऊँचा मंदिर मेहेल सुनेरी, महल मुलुख बस्ती ;
> पुत्र-पौत्र, धन, सुंदर कामिनि, सुगुण-रूप हस्ती।
> सस्ता दाना, पाणी निर्मल, गंगाजल गेहरा ;
> रंग-राग, घर, बाग-बगीचे, रुपए हुन मोहरा।
> 'अमृतराय' के अमृत बचन—तुम सदा सुखी रहियो ;
> सबल, पुष्ट, आरोग्य, अनामय, आनँद मो रहियो।

अभी तक हमने गुरु-परंपरा, पर्यटन तथा इस पर्यटन-जनित हिंदी-प्रेम के कारण पड़ी हुई प्रथा के प्रभाव का वर्णन किया है। अब हम हिंदी-साहित्य-ग्रंथों के अप्रत्यक्ष परिणाम का विचार करेंगे। तुलसीदासजी का 'रामचरित-मानस' तथा नाभादासजी का 'भक्तमाल', इन दो ग्रंथों का प्रभाव हम मराठी-साहित्य पर देख सकते हैं। हमारा अनुमान है कि रामचरित-मानस की रचना मूल-भक्तमाल से पहले हुई। प्रियादास की टीका तो अवश्य ही रामायण के बाद बनी। अतः पहले हम इसी का विचार करेंगे।

रामदास स्वामी की शिष्य-परंपरा में एक गिरिधर

---

* श्रीआठले-कृत "समर्थांचे सामर्थ्य"-नामक पुस्तक के अंत में श्रीरामदास स्वामी का एक हिंदी-कवित्त दिया है।

स्वामी हो गए हैं। इनका रचना-काल संवत् १७७६ है। यह किसी बाइयाबाई के शिष्य थे। शायद यह 'बाइयाबाई' वही बयाबाई हों, जिनकी कविता का नमूना हम ऊपर दे आए हैं। यदि यह ठीक है, तो बहुत संभव है, अपने गुरु का हिंदी-प्रेम इनमें भी आ गया हो। परंतु इस हिंदी-प्रेम ने एक नया ही रूप धारण किया। जहाँ तक हमें मालूम है, इन्होंने हिंदी में कोई पद्य-रचना नहीं की; हाँ, रामभक्त होने के कारण अपने उपास्य देवता के चरित्र पर पाँच ग्रंथ अवश्य लिखे हैं। हमें इन सबसे यहाँ कोई प्रयोजन नहीं; केवल 'सुंदर-रामायण' ही हमारे लिये अधिक महत्त्व रखती है। यह ग्रंथ दोधक-वृत्त की ७४६ चौपाइयों में लिखा गया है। पर श्रीआजगावकर ने अपने "महाराष्ट्र-कवि चरित्र" में जो उदाहरण दिए हैं, वे सब अभंग वृत्त में हैं। हमको स्वयं 'सुंदर-रामायण' देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ; पर मराठी-साहित्य-भर में हमें चौपाई-छंद का कोई ग्रंथ नहीं मिला, और न ऐसे किसी ग्रंथ का वर्णन ही हमने सुना है। गिरिधर स्वामी का समय तुलसीदासजी से १०० वर्ष बाद है। इस समय तक गोस्वामीजी की रामायण भारतवर्ष-भर में प्रसिद्ध हो गई थी। हिंदी से चिर-संबद्ध महाराष्ट्र में भी अवश्य ही उसका पठन बहुत जगह होता रहा होगा, और गिरिधर स्वामी-जैसे रामभक्त ने तो उसे अवश्य ही सुना होगा। हमारी दृढ़ धारणा है कि राम-भक्ति की ओर प्रबल प्रवृत्ति संभवतः गुरु का हिंदी-प्रेम तथा गोस्वामीजी की चौपाइयों का श्रुतिमाधुर्य, इन सभी ने गिरिधर स्वामी को अपनी 'सुंदर-रामायण' को उसी छंद में रचने के लिये प्रेरित किया होगा। गिरिधर स्वामी इस वृत्त के माधुर्य पर मुग्ध हो गए थे, इसका एक अप्रत्यक्ष प्रमाण हम ग्रंथ के नामकरण ही में पाते हैं। आपने शायद दोधक-वृत्त की सुंदरता ही के कारण इसे 'सुंदर-रामायण' कहा है। कवि ने यह कल्पना करके ग्रंथ का प्रारंभ किया है, मानो लव-कुश अपने अपूर्व स्वर में यह रामचरित गा रहे हैं—

राम-कथा हे लव-कुश गाती ; सुर-मुनि चकित ते पहिनाती।
रामरुपें स्वरूं दिसताती ; कोण कुमार प्रभू म्हणताती।
काय अपूर्व हें गायन याँचें ; रामरुपें चि स्वरूप जयाँचें।
कोण जनक निज स्थान तयाचें; उत्कट तप वाल्मिक सखयाचें।

मराठी से बिलकुल अनभिज्ञ पाठक भी इसे गा सकते हैं।

दूसरा ग्रंथ है नाभाजी का भक्तमाल। यह ग्रंथ संवत् १६७० के लगभग लिखा गया। संवत् १७६६ में प्रियादासजी ने इस पर एक विषम टीका लिखी। शीघ्र ही यह भारत के सारे भक्त-समाज में प्रसिद्ध हो गया। कुछ ही वर्षों में बंगाल के प्रसिद्ध श्रीनिवासाचार्यजी के शिष्य कृष्णदास-बाबाजी ने इसका बँगला छायानुवाद कर डाला। महाराष्ट्र में भी इसके आधार पर कई संत-चरित्र लिखे गए। यहाँ के 'मार्तंडबुवा'जी ने कुछ साल बा[illegible] 'भक्ति-प्रेमामृत'-नामक टीका लिखी। दासोदिगंबर ने भी मराठी में जो 'संत-विजय'-नामक ग्रंथ लिखा है, उसमें नाभाजी का उल्लेख किया गया है।

परंतु महाराष्ट्र में श्रीमहीपति के ही भक्त-चरित्र अत्यंत प्रिय हैं। इनका समय है संवत् १७७२ से १८४[illegible] तक। इन्होंने तीन पूर्ण ग्रंथों में भक्त-चरित्रों का वर्णन और नाभाजी का उल्लेख भी बड़े आदर के साथ किया है। ये ग्रंथ निरे अनुवाद नहीं हैं। कवि ने इतिहास-संशोधक की पद्धति पर ज्ञातव्य बातें एकत्र की हैं; बहुत-से संतों के वंशजों के घर जाकर उनसे बहुत-सी बातें पहले जान ली हैं। नाभाजी या प्रियादास ने गोस्वामी तुलसीदासजी के माता-पिता का नाम नहीं दिया; परं[illegible] इनके 'चरित्र' में पिता का नाम पाया जाता है। महाराष्ट्र-संतों की जीवनी अत्यंत परिपूर्ण है। इतन[illegible] ही नहीं, गुजरात के भक्त-श्रेष्ठ नरसी मेहता का जीवन-चरित भी अधिक विस्तृत है।

पर मालूम पड़ता है, कवि ने नाभाजी का ग्रंथ अच्[illegible] तरह नहीं पढ़ा; क्योंकि इसमें इनका चरित्र भक्तमाल से क[illegible] जगह भिन्न है। स्वयं महीपति ने एक स्थान पर कहा है—

त्याचीं पदें ऐकोनि कानीं ;
ग्रंथ लिहिला महाराष्ट्र-वाणीं।

अर्थात् उसके पद कान से सुनकर यह ग्रंथ मरा[illegible] भाषा में लिखा है।

हमने भी इनका 'भक्त-विजय'-ग्रंथ पढ़ा है। उससे यही ज्ञात होता है कि इन्होंने हिंदी-ग्रंथ प्रत्[illegible] शायद ही देखा हो; क्योंकि आप लिखते हैं, मूल [illegible] प्रियादासजी ने संस्कृत में लिखा, और उसके आधार [illegible] नाभाजी ने उसे 'ग्वाल्हेर-भाषा' में परिणत किय[illegible]

भक्तमाल-ग्रंथ को बिलकुल सरसरी तौर से भी देखनेवाला इस प्रकार न लिखेगा। अस्तु, हम इस मराठी-ग्रंथ में एक ऐसा उल्लेख पाते हैं, जिससे ग्रंथ का तुलसीदास के जीवन-काल ही में पूर्ण हो जाना सिद्ध होता है। बाबू राधाकृष्णदासजी ने 'तुलसीदास-संबंधी वर्तमान काल के कथन से' प्रमाणित किया है कि भक्त-माल १६८० के अनंतर न बनी होगी। 'भक्त-विजय' में श्रीमहीपति भी लिखते हैं कि अकबर बादशाह की शरण आने पर तुलसीदासजी श्रीकृष्ण-दर्शन के लिये मथुरा जाने के लिये निकले। गोकुल-वृंदावन होते हुए वह मथुरा पहुँचे। इन तीर्थ-स्थानों के भ्रमण में उन्हें प्रियादासजी के दर्शन हुए। प्रियादास के लिखे 'संत-चरित्र'-ग्रंथ की सूचना उन्हें पहले ही मिल गई थी, अतः उसे सुनने की इच्छा प्रकट की। प्रियादास मन में सहम गए; सोचने लगे, चारों युगों के भक्तजनों के चरित्र तो वर्णन किए हैं, कलियुग के समस्त वैष्णव भक्तों की जीवनी भी लिखी है; परंतु तुलसीदासजी की जीवनी नहीं लिखी। इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि एक आश्चर्य-घटना हो गई। प्रियादास को नहीं मालूम हुआ, और श्रीरामचंद्रजी ने स्वयं तुलसीदासजी का जीवन-चरित्र लिखकर ग्रंथ में समाविष्ट कर दिया। फिर प्रियादासजी ने वह ग्रंथ सब वैष्णवों को सुनाया, और सबने उस पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

इस किंवदंती में और बातें सत्य हों या असत्य, किंतु इतना अवश्य विदित होता है कि तुलसीदासजी का जीवन-चरित्र शायद पहले नहीं लिखा गया था। परंतु उसके बाद शीघ्र ही नाभाजी ने उसे छंदोबद्ध कर भक्तमाल में गूँथ दिया। तात्पर्य यह कि मूल-भक्तमाल कुछ पहले ही लिखा जा चुका था, तो भी श्रीतुलसीदासजी की कथा नाभाजी ने शीघ्र उसमें मिला दी। हमारा अनुमान है, भक्तमाल की रचना १६६०-१६७० के बीच ही में हुई होगी।

भक्ति-धर्म ही से संबंध रखनेवाले सैन नाई का भी हम वर्णन करना चाहते हैं। इनकी चर्चा स्वतंत्र रीति से करने का कारण यह है कि इनका निवास-स्थान हम निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकते। परंतु इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि यह किसी मुसलमान बादशाह या नवाब के यहाँ नौकर थे। 'भक्त-विजय' में इनके स्वामी को 'अविंध' कहा है, और मराठी में 'अविंध' मुसलमान ही के अर्थ में प्रयुक्त होता था। स्वयं इनके एक अभंग में हम यों लिखा पाते हैं—

"बादशहाचे द्वारीं, सेना न्हावी काम करी।"

मिश्रबंधु इन्हें रीवाँ-निवासी मानते हैं। कुछ भी हो, इन्होंने जिस प्रकार हिंदी में रचना की है, उसी प्रकार मराठी में भी। कहा जाता है, मराठी में इन्होंने एक ग्रंथ भी लिखा है; परंतु उसका कुछ पता अभी तक नहीं लगा। सैन नाई काशी के प्रसिद्ध रामानंदजी के शिष्य थे। अतः इनकी रचना पर हिंदी का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। हमें इनका केवल एक ही अभंग देखने को मिल सका।

अब हम धर्म-जन्य प्रभावों को छोड़कर राजनीतिक प्रभावों का विचार करेंगे। शिवाजी के समय से मराठी-साहित्य में एक नए अंग का प्रवेश हुआ। यह था शाहीरों या भाटों का गान। मराठी में सबसे पुराना 'पोवाड़ा' (पँवारा?) या वीर-रसात्मक चारण-काव्य १७२० में लिखा गया। परंतु इसके पहले ही शिवाजी के पिता शहाजी के आश्रय में बहुत-से अनेक भाषा-कोविद कवि रहा करते थे। हिंदी-काव्य का तो आरंभ ही चंदबरदाई के 'पृथ्वीराज-रासो' से हुआ है। इतने दिनों तक महाराष्ट्र में स्वतंत्रता का अभाव होने के कारण साहित्य का यह अंग सूना पड़ा था। परिस्थिति अनुकूल होते ही, शहाजी ही के समय से, महाराष्ट्र ने यह वीर-रसात्मक चारण-काव्य अपनाया। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि यद्यपि भारतवर्ष के किसी भी भाग में चारणों का गायन, संस्कृत-साहित्य की कृपा से, उस समय भी अपरिचित न था, तथापि इस प्रकार के काव्य को सामयिक उत्तेजना हिंदी-चारणों के गानों ही से मिली। शहाजी के अनंतर उनके पुत्र शिवाजी के दरबार में भूषण का जो उदार सम्मान हुआ, वह किसी से छिपा नहीं है। आजकल कुछ सज्जन यह प्रमाणित करने की चेष्टा कर रहे हैं कि भूषण शिवाजी के समय में महाराष्ट्र में आए ही नहीं। परंतु हमारी समझ में यह चेष्टा व्यर्थ है। शिवाजी को लिखे हुए संत तुकाराम ही के पत्र में भूषण-कवि का उल्लेख है। अप्रासंगिक होने के भय से हम इस विषय पर अपने अन्य प्रमाण यहाँ नहीं देना चाहते। अस्तु, इन मराठी-'पोवाड़ों' में भी कहीं-कहीं हिंदी-पद आ गए हैं। ऊपर हमने जिस पोवाड़े का उल्लेख किया है, उसमें निम्न-लिखित हिंदी-पद पाए जाते हैं।

तूरे कुनबी का छोरा खेतबाड़ी कर-कर भरना ,
दिवाण का सारा ।
अब्दुल्ला जाति का भटारी; मिथ्या करता दुकानदारी ।
बिजापुर में दुकान तेरा; लड्डू जिलबी बेचहारा ।
तूरे भटारनी का छोरा ; हम राजा परलिया तोरा ।

कहा जाता है, शिवाजी ने स्वयं कुछ पद-रचना की है । इनके माने हुए मराठी पद्यों में बहुत-से उत्तर के शब्द भी आए हैं । मालूम नहीं, आपने हिंदी में भी कुछ रचना की है या नहीं ।

इस प्रकार हम देख चुके कि हिंदी का मराठी पर कैसा और कितने अंशों में प्रभाव पड़ा है । परंतु आदान-प्रदान चाहे व्यापारिक हो या साहित्यिक, एक ही पक्ष से संबंध नहीं रखता । जिस प्रकार हिंदी का मराठी-साहित्य पर प्रभाव पड़ा है, उसी प्रकार मराठी ने भी हिंदी-साहित्य को उपकृत किया है । इस लेख में केवल हिंदी का मराठी पर प्रभाव दिखलाया गया है । मराठी का हिंदी पर क्या प्रभाव पड़ा, इस पर फिर कभी लिखा जायगा ।

गोविंद-रामचंद्र चाँदे

संसार के तत्त्व

प्राक्कथन

संसार के अत्यंत प्राचीन-काल ही से लोगों के मन में ये प्रश्न उठते रहे कि संसार क्या है, संसार कैसे बना, संसार के मूल-कारण क्या हैं, और संसार में कितने तत्त्व हैं ? हम यह किसी लेख में बतला चुके हैं कि मनुष्य में स्वाभाविक उत्सुकता है । यही उत्सुकता सब विज्ञान, शास्त्र और दर्शनों की जड़ है । किसी बालक के काम देखिए । उसके प्रत्येक काम में उत्सुकता है । पर क्रमशः उत्सुकता की मात्रा दिन-दिन घटती जाती है । शिक्षा का काम इस उत्सुकता को सजग रखना है । बालकों की एक और प्रकृति है । मनोवैज्ञानिक उसे स्वकीयता कहते हैं । बालक सबको अपना बनाना चाहता है । किसी बच्चे को कुछ दीजिए, वह चट उसे मुँह में रख लेता है । मैंने अपने बच्चे को एक गेंद दिया ; देखा कि वह उसे भी मुँह में रखना चाहता है । अब मनुष्य की यही दो प्रकृतियाँ संसार के तत्त्व की जिज्ञासा में सहायक हुईं । आदि-काल में मनुष्य बड़ी कठिनाई से रहते थे । उनमें कला का इतना विकास नहीं था । उन लोगों ने अपने को प्रकृति की गोद में पाया । चारों ओर प्रकृति-ही-प्रकृति थी । अस्तु, प्रकृति के बीच में रहने के लिये यह अत्यंत आवश्यक था कि उसका उन्हें ज्ञान हो, जिससे वे प्रकृति पर अधिकार पावें । संसार के विषय में अनेक प्रश्न उठे—संसार क्या है, कहाँ से निकला है, कहाँ जायगा, संसार के तत्त्व क्या और कितने हैं ? हम यहाँ इन सब प्रश्नों का एकसाथ इस छोटे-से लेख में समाधान नहीं कर सकते । इस पर तो पोथे-के-पोथे लिखे जा सकते हैं । इस छोटे-से लेख में हमारा उद्देश्य अंतिम प्रश्न का समाधान करना है ।

पहला प्रश्न यहाँ यह है कि संसार में तत्त्व कितने हैं—एक, दो या अनेक ? ये तीनों मत समय-समय पर प्रचलित हुए । दर्शन-शास्त्र की इस समस्या को हम और आप 'संख्या-समस्या' के नाम से पुकार सकते हैं । दूसरा प्रश्न है—इन तत्त्वों का संगठन कैसा है, अथवा दूसरे शब्दों में ये तत्त्व क्या हैं ? क्रमशः हम इन दोनों समस्याओं के विषय में लिखेंगे । हमारा दृष्टिकोण ऐतिहासिक दार्शनिक का रहेगा ।

संख्या-समस्या

प्रश्न है कि संसार के तत्त्वों की संख्या कितनी है ? अब देखना है कि यह समस्या लोगों के मन में कैसे और क्यों उठी ? आदि-काल में लोगों ने देखा कि समुद्र का पानी गरम होकर वाष्प-रूप में परिणत हो जाता है । फिर वाष्प शीतल वायु के संपर्क से मेघ बनती है । अंत में यही मेघ पानी होकर बरसता है । गऊ घास खाती है, घास खाने से दूध बनता है, दूध पीने से मनुष्यों में शक्ति का आधिक्य होता है । फिर शुक्र के, संभोग-काल में, रज से मिलने पर बच्चा बनता है । फिर वह बच्चा युवा होकर आप भी और बच्चे पैदा करता है । परमात्मा की कैसी लीला है ! ये सब घटनाएँ आदि-कालीन पुरुषों की आँखों के समक्ष थीं । अतएव स्वभावतः उनके मन में यह प्रश्न उठा कि संसार में कितने तत्त्व हैं ? कुछ लोगों का कहना है कि संसार में बस, एक ही तत्त्व है । हम जितनी चीज़ें देखते हैं, वे सब-की-सब

इसी के परिवर्तन-मात्र हैं। दूसरे लोग कहते हैं कि संसार में दोनों हैं, और इन्हीं दोनों से संसार बना है। तीसरे मतवालों का कहना है कि संसार में जितने पदार्थ हैं, उतने ही तत्त्व भी। इन तीनों मतों को क्रमशः अद्वैतवाद, द्वैतवाद तथा अनेकवाद के नाम से हम पुकारेंगे। कारण, इनसे हमारा आशय साफ़-साफ़ झलकता है।

अद्वैतवाद अथवा एकतत्त्ववाद

इस पर कुछ लिखने के पहले हम यह कह देना उचित समझते हैं कि यह अद्वैतवाद वेदांत का अद्वैतवाद नहीं है। यहाँ केवल इतना ही कहना है कि संसार का यह एकतत्त्व है। यह एकतत्त्ववाद पाश्चात्य दर्शन में अत्यंत प्राचीनतम काल से है। यूनान के दर्शन-शास्त्र ही से इसका प्रारंभ होता है। उस समय प्रकृति की महत्ता के कारण लोग चकाचौंध हो गए थे। अतएव उस काल का दर्शन-शास्त्र भी प्रकृति-विषयक था। जिस प्रकार बच्चे को शैशव में आत्मा और अनात्मा का भेद नहीं मालूम रहता, ठीक उसी प्रकार आदि-काल में मनुष्यों को आत्मा और प्रकृति का भेद नहीं ज्ञात था। अतएव प्रकृति को आत्मा की जड़ भी मानते थे। इस प्रकार उनके तत्त्व भी प्राकृतिक ही होते थे।

ग्रीस-देश में सबसे पहला दार्शनिक थेलिस हुआ। थेलिस ने देखा कि पानी कभी तो भाप हो जाता है, कभी तरल रहता है और कभी ठोस हो जाता है। अतएव यह तीनों ही अवस्था में रह सकता है, और इसलिये यही संसार की जड़ है। हमारे यहाँ भी लिखा हुआ है—"अपेव ससर्जादौ", अर्थात् सबसे पहले केवल पानी ही था। उसके उपरांत और-और चीज़ों की सृष्टि हुई। यह बात हमारे यहाँ के दशावतारों से और भी पुष्ट हो जाती है। इसी प्रकार अनैक्सिमेंडर ने असीम को और अनैक्सिमिनस ने वायु को तत्त्व माना। फिर हिरैक्लिटस ने अग्नि को और पॉइथागोरस ने संख्या को तत्त्व माना। परंतु यह एकतत्त्ववाद चेतन नहीं था। संसार का तत्त्व केवल एक माना जाता था सही; पर सभी में एकता नहीं मानी जाती थी, और न एकता की चेतनता ही लोगों में थी। इस युग में एकता पदार्थों की आवश्यक संगति नहीं रही।

यह एकता की चेतना ज़ेनोफ़ोन, पारमिनाइडिस, ज़ेनो, मिलिसस इत्यादि एलिएटिक लोगों के समय में उठी है। इन लोगों के मत में स्थिति के लिये एकता अनिवार्य और आवश्यक है। यही एकता सत्य और असत्य, तथ्य और अतथ्य, सत्त्व और भ्रम का भेद है। और भी परिवर्तन और अनेकता अनुभवाधीन हैं। हम अनेक पदार्थ देखते हैं। कोठरी में लेख लिख रहे हैं; एक ओर जँगला है, दूसरी ओर किवाड़े, कुर्सी, टेबिल, रैकेट, आलमारी, किताब, काग़ज़, तेल की शीशियाँ, आइना, कंघी, दावात, क़लम, ताला-कुंजी, लालटेन, चौकी आदि अनेक पदार्थ हैं। अब किसी एक पदार्थ को ले लेते हैं। मान लीजिए, कुर्सी। आप बतला सकते हैं, कुर्सी कैसे बनी—वृक्ष लगे थे, लकड़ी काटी गई, तख़्ते निकाले गए, और कुर्सी बनाई गई। पर यह वृक्ष कहाँ से आया? बीज से, और यह बीज दूसरे वृक्ष से। इसी भाँति अनेक परिवर्तन होते गए। ये परिवर्तन, अधीनता और अनेकता हम अपनी आँखों से देखते हैं, अथवा दूसरे शब्दों में ये दोनों अनुभव के ही अधीन हैं। अतएव अनुभव से हम लोग केवल भ्रम को ही जानते हैं। तत्त्व के लिये तो अनुभव के परे ज्ञान तक जाना होगा। ज्ञान ही से हम सत्य तक पहुँच सकते हैं। अफ़लातून में अनेकतत्त्ववाद की अपेक्षा एकतत्त्ववाद कहीं अधिक है। आपके मत में 'मंगल' का संवित् ही सब घटनाओं तथा सब पदार्थों का मुख्य तत्त्व है। अर्थात् जितने पदार्थ हैं, सब 'मंगल-संवित्' से प्रेरित हैं। जितनी घटनाएँ हैं, सब उसी के कारण होती हैं। वही एक मुख्य तत्त्व है, जिससे सारा संसार अपने अन्य तत्त्वों के साथ निकला है। अरस्तू अधिकतर अनेकतत्त्ववादी हैं। उनके मत में 'शुद्ध-संवित्' केवल आदि-प्रवर्तक है, और इसलिये कोई-न-कोई पदार्थ अवश्य ही है, जिसका यह संवित् प्रवर्तक है। अब ये पदार्थ अनेक हैं। अतएव सिद्ध हुआ कि अरस्तू साहब का झुकाव अनेकवाद की ओर है। इस तरह हम यह देख चुके कि अफ़लातून और अरस्तू के मतों में दोनों सिद्धांत हैं।

मध्यकालीन दार्शनिकों का भी मत कभी तो एकतत्त्ववाद की ओर झुकता रहा, और कभी अनेकतत्त्ववाद की ओर। किसी के मत से ईश्वर और किसी के मत से मनुष्यों में तथ्य रहा। परंतु मध्यकाल का अधिक झुकाव अफ़लातून की ओर अर्थात् एकतत्त्ववाद की ओर ही

था। आधुनिक काल में भी दोनों मतों का तारतम्य रहा। यद्यपि डेकार्ट महाशय ने 'मूर्त' और 'आत्मा' नाम के दो तत्त्व माने, तथापि उनको भी हम एकतत्त्ववादी किसी अर्थ में कह सकते हैं। आपके मत में मूर्त और अमूर्त अथवा आत्मा की स्थिति ब्रह्म ही पर है। ब्रह्म एक मुख्य तत्त्व है, जिससे मूर्त और अमूर्त, ये दो गौण तत्त्व निकले हैं। 'पारमार्थिक सत्ता' केवल ब्रह्म ही में है, तथा मूर्त और अमूर्त में केवल व्यावहारिक सत्ता है। स्पाइनोज़ा के मत में मूर्त और अमूर्त, ब्रह्म के अनेक गुणों में से दो हैं। हम केवल इन्हीं दो गुणों को देख सकते हैं। अन्य गुण हमारे ज्ञान के परे हैं। यह मत हमारे यहाँ परमात्मा के विराट् स्वरूप से मिलता-जुलता है। यथा—

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ;
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ।

केंट फ़िक्ट, शिलिंग तथा हिगल साहब एकतत्त्ववादी हैं। कोई मुख्य तत्त्व को आत्मा का कार्य, कोई पारमार्थिक अभेद और कोई परम स्थिति को संसार का मुख्य तत्त्व मानते हैं। शापेनहार भी एकतत्त्ववादी हैं। आपके मत से संसार का मुख्य तत्त्व इच्छा है। इसी से सारे संसार का प्रादुर्भाव है। संसार दुःखमय है, और इच्छा संसार की जड़ है। अतएव इच्छा दुःख की जड़ है। इसलिये इससे जहाँ तक बन पड़े, बचे ही रहना चाहिए। आपका मत हमारे यहाँ के बौद्धमत से मिलता-जुलता है। वर्तमान काल के दार्शनिकों में लोट्ज़, वान-हार्टमैन, फेकनर, डूहरिंग आदिकों को एकतत्त्ववादी कह सकते हैं।

एकतत्त्ववादी अपने मत के समर्थन में तर्क उपस्थित करते हैं ; पर अनेकतत्त्ववादी साधारणतः कोई तर्क नहीं करते। उनके तर्क चार प्रकार के हैं। यहाँ पर क्रमशः उन तर्कों का दिग्दर्शन-मात्र करा देंगे—

(१) फ़िक्ट, शिलिंग तथा हिगल का कहना है कि जो तर्क के सामने सबसे अधिक साधारण है, सबसे अधिक सार्वजनीन है, सबसे अधिक लोकगत है, जिसमें कुछ भी व्यक्तिगत नहीं है, वह अवश्य ही एक है। इसमें किंचित् संदेह नहीं है। जितने व्यक्तिगत संवित् हैं, सब उसी प्रधान संवित् से निकले हैं। प्रत्येक विशेष प्रतिज्ञा साधारण प्रतिज्ञा से निकली है। अस्तु, संवित् और सत्ता में अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। हम देख चुके हैं कि 'संवित्' प्रधान संवित् से निकले हैं। अतएव यह भी सिद्ध हुआ कि प्रधान संवित् सभी सत्ताओं की जड़ है। अतएव 'प्रधान संवित्' ही एकतत्त्व है, और इसी एक तत्त्व से शेष सब तत्त्व निकले हैं।

(२) प्लेटो, अफ़लातून, लोट्ज़, वान-हार्टमैन इत्यादि का कहना है कि जो सबसे आदिम है, वह अवश्य ही एक है—अनेक नहीं हो सकता। कार्य-कारण की परंपरा अवश्य ही एक कारण की ओर खींचकर ले जायगी। अब मनुष्य के मन की प्रकृति है कारण-कार्य-परंपरा का पता लगाना। बच्चे को जब से चेतना आती है, तब से वह जो कुछ देखता है, उसका कारण जानना चाहता है। बच्चे को आम खाने को मिला। वह आम खाने लगा। अपनी मा से पूछा, यह आम कहाँ से आया—वृक्ष कैसे हुआ—बीज कहाँ से आया ?

(३) एलिएटिक दार्शनिकों का कहना है कि जो चीज़ है, वह अवश्य ही एक होगी ! डुहरिंग साहब का मत भी ऐसा ही है। आपका कहना है कि सर्वव्यापी पदार्थ अवश्य ही एक है।

(४) अफ़लातून प्रभृति का कहना है कि जो अत्यंत उत्तम और सुंदर है, वह अवश्य ही एक है।

द्वैतवाद तथा अनेकतत्त्ववाद

इस मत के अनुसार संसार के दो या दो से अधिक तत्त्व हैं। संसार में इतने भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं कि सबको एक करना अत्यंत असंभव है। एमपिडोक्लस साहब की राय में संसार के चार तत्त्व हैं—अग्नि, अप्, क्षिति तथा मरुत्। हमारे यहाँ के पाँच तत्त्वों में से उनके मत में केवल 'व्योम'-नामक तत्त्व का अभाव है। यह मत चार्वाक-मत से मिलता-जुलता है। 'प्रेम' और 'द्वेष'-नामक दो शक्तियाँ हैं। इन्हीं के कारण उनके चार तत्त्वों से संसार के भिन्न-भिन्न पदार्थों का प्रादुर्भाव हुआ है। सम में प्रेम और विषम में द्वेष होता है। बहुतों के मत से संसार के तत्त्व परमाणु हैं। ये अनेक हैं। इन्हीं अनेक परमाणुओं से यह संसार बना है। अनैक्सैगोरस साहब के मत से आत्मा और प्रकृति-नामक दो तत्त्व हैं। प्रकृति में भिन्नता और आत्मा में एकता है। अफ़लातून और अरस्तू के विषय में हम यह बतला ही चुके हैं कि इनके मत में दोनों मतों का समीकरण है। मध्यकालीन दर्शन में भी कहीं-कहीं अनेकवाद की चर्चा मिलती है। डेकार्ट के मत से शरीर और आत्मा नाम के दो तत्त्व हैं। लेबनिज़

भी अनेकवादी ही हैं। आपके मत से संसार के अनेक तत्त्व हैं। हर्बर्ट साहब भी अनेकवादी हैं। आजकल के दार्शनिकों में उंट साहब को अनेकतत्त्ववादी कह सकते हैं। यहाँ पर यह बात बड़े मार्के की है कि अनेकतत्त्ववाद अपने समर्थन में कभी तर्क उपस्थित नहीं करता, जैसा पहले लिख चुके हैं। इसी बात से दोनों मतों के दृष्टिकोण की भिन्नता स्पष्ट झलक जाती है।

"बाण"

भारत में सहकार

किसानों की दशा सुधारने का काम भारत के लिये एक जटिल समस्या है; क्योंकि भारत के किसान क़र्ज़ के बहुत भारी बोझ से दबे हुए हैं। अवर्षण, वर्षा की कमी, टिड्डी-दल या अतिवर्षा से फ़सलों के नष्ट हो जाने या पैदावार कम होने पर अधिकांश किसानों को आधे-पेट रहना पड़ता है, और बहुत-से भूख से तड़प-तड़पकर मर जाते हैं। सहकार का आश्रय लेने से यह दशा बहुत कुछ सुधर सकती है। इसी उद्देश्य से जर्मनी के प्रजाकीय बैंकों की सफलता देखकर पूना के तत्कालीन ज़िला-जज मि० वेडरबर्न और महामना रानाडे आदि कुछ सज्जनों ने एक स्कीम बनाकर भारत-सरकार की सेवा में पेश की। किंतु वर्षों के बाद भारत-मंत्री ने उसको नामंज़ूर कर दिया। सबसे पहले मदरास-प्रांत ने यह काम हाथ में लिया। सन् १८९२ में सर फ़्रेडरिक निकलसन कृषि-सहयोग-समितियों और बैंकों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये योरप भेजे गए। वहाँ से लौट आने पर आपने सरकार को अपनी एक रिपोर्ट दी। इस रिपोर्ट में आपने यह बात साफ़ शब्दों में लिखी है कि सहयोग-प्रवृत्ति के प्रचार के प्रारंभ में योरप के देशों की जैसी दशा थी, उससे कहीं अच्छी दशा इस वक़्त मदरास-प्रांत की है। आपने ज़ोरदार शब्दों में सरकार से सिफ़ारिश की है कि क़ानून आदि सभी आवश्यक साधनों द्वारा सहयोग-प्रवृत्ति के प्रचार-कार्य में मदद दी जानी चाहिए। इसी रिपोर्ट में शिक्षित भारतवासियों को लक्ष्य कर एक स्थान में लिखा है—

भारतवर्ष के गाँवों में वैसी ही बुद्धिमत्ता और सामाजिक स्थिति के लोग मौजूद हैं, जैसी बुद्धि और सामाजिक अवस्था के लोग इस वक़्त योरप में सहकारी-संस्थाओं का संचालन और पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। वास्तव में उत्साही और परिश्रमी लोगों की ही ज़रूरत है। जन-सेवा के पवित्र उद्देश्य से काम करनेवाले सज्जन ही इस काम को हाथ में लेकर देश का बड़ा उपकार कर सकते हैं।

यही लेखक एक दूसरे स्थान पर लिखते हैं—

देहात की साखवाली संस्थाओं का भविष्य उन लोगों पर निर्भर है, जो जन-साधारण के साथ रहते और साधारण जनता में गिने भी जाते हैं, तथा जो अपनी बुद्धि, दूरदर्शिता और कार्य-शक्ति के कारण साधारण जनता से कुछ ऊँचे दरजे के माने जाते हैं। जर्मनी और इटाली में साखवाली सहयोग-संस्थाओं की स्थापना करनेवाले सज्जन इसी दरजे के आदमी थे। यदि 'रेफ़िसन'-शब्द से किसी ख़ास व्यक्ति या पद्धति का नाम निर्देश करने पर भी उस महान् आत्मा की शक्ति, धैर्य, अविचल भक्ति आदि गुणों के साथ-ही-साथ सहकारिता के किफ़ायतशारी, पारस्परिक सहायता, आत्मविश्वास आदि गुणों का अनुकरण किया जाय, तो इस रिपोर्ट का सारांश दो शब्द में बताया जा सकता है, और वह यह है—रेफ़िसन को अपनाओ।

पर मदरास-सरकार ने इस रिपोर्ट पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया। बाद को यह रिपोर्ट लॉर्ड कर्ज़न के हाथ में पड़ गई। उन्होंने इसकी एक-एक प्रति प्रांतिक सरकारों को भेजकर उनकी सम्मति मँगवाई। इसी बीच में संयुक्त-प्रांत, पंजाब और बंगाल में सहकारी-सभाओं की स्थापना के लिये स्वतंत्र प्रयत्न होने लगे, और कुछ सभाएँ स्थापित भी की गईं। इन सभाओं को अच्छी सफलता मिली।

सन् १९०४ में 'कोऑपरेटिव क्रेडिट-सोसाइटीज़'-नामक क़ानून बनाया गया। इस क़ानून के नाम से ही यह बात प्रकट होती है कि साखवाली सहकारी-सभाओं के लिये ही इसकी सृष्टि की गई थी। कृषक, छोटे-छोटे कारीगर आदि थोड़ी पूँजीवाले लोगों के हित-साधन के लिये ही यह क़ानून बनाया गया था। सोचा यह जाता था कि सरकारी नियंत्रण और स्वीकृति के बिना इन संस्थाओं का कार्य चल नहीं सकेगा।

'इंडियन कंपनीज़ ऐक्ट' की कोई भी धारा इन समितियों की रजिस्ट्री कराने के लिये उपयुक्त न थी, अतएव एक दूसरे क़ानून का बनाया जाना अनिवार्य हो गया। प्रांतिक सरकारों को रजिस्ट्रार की नियुक्ति करने का अधिकार दे दिया गया। सहकारी-सभाओं का संगठन करना, उनकी रजिस्ट्री करना, सभाओं के हिसाब की जाँच करना, उनकी देख-रेख और नियंत्रण करना तथा योग्य सलाह देना आदि काम का भार रजिस्ट्रार पर रक्खा गया। अठारह वर्ष या इससे अधिक अवस्था के व्यक्ति को सभा का सभ्य बनने का अधिकार दिया गया है। किसी भी गाँव, जाति या धंधे के दस या उससे अधिक व्यक्ति मिलकर सभा क़ायम कर सकते हैं। ८० प्रतिशत सभासद् किसान हों, तो उसे देहाती-सभा कहते हैं; और इसी परिमाण में अन्य लोग हों, तो उसे नागरिक-समिति कहते हैं। देहाती-सभा की ज़िम्मेदारी अमर्यादित रक्खी गई, और नागरिक-समितियों को अपनी ज़िम्मेदारी मर्यादित या अमर्यादित रखने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी गई। यह नियम रक्खा गया कि देहाती-सभा का सब-का-सब मुनाफ़ा, सरकार का दूसरा हुक्म होने तक, स्थायी कोष में जमा किया जाया करे, और नागरिक-समितियाँ अपने मुनाफ़े का कम-से-कम $\frac{४}{५}$ भाग स्थायी कोष में जमा करें। प्रत्येक सभा अपने सभ्यों को रक़म उधार दे सकती है; किंतु रजिस्ट्रार की आज्ञा के विना दूसरी सभा को क़र्ज़ देने का अधिकार उनको नहीं दिया गया। किसी सभासद् को एक हज़ार से ज़्यादा रुपए की क़ीमत के हिस्से ख़रीदने का अधिकार नहीं है। इन सभाओं के हिस्से कोर्टों द्वारा न तो नीलाम ही किए जा सकते हैं, और न ज़ब्त ही हो सकते हैं। मालगुज़ारी और ज़मीन का लगान चुका देने के बाद सभा से क़र्ज़ लेकर ख़रीदा हुआ सामान और खेती की पैदावार पर सभा का ही हक़ रहता है। सभा का क़र्ज़ चुका देने के बाद ही दूसरे लोग अपने क़र्ज़ में इन चीज़ों को ज़ब्त करा सकते हैं। विना फ़ीस लिए हरएक सभा का हिसाब सरकार की तरफ़ से जाँचा जाता है, और सभाएँ आय-कर, स्टांप-ड्यूटी और रजिस्ट्रेशन की फ़ीस से भी मुक्त कर दी गई हैं।

शीघ्र ही सारे देश में अनेकों ऐसी सभाएँ स्थापित हो गईं। किसी देश में, इतने थोड़े समय में इतनी ज़्यादा संख्या में, सभाएँ स्थापित न हुई होंगी। बड़ौदा, ट्रावनकोर, मैसूर, हैदराबाद, इंदौर आदि कई देशी-राज्यों में भी सहकारी-महकमे क़ायम किए गए, और ये बड़ी शीघ्रता से उन्नति करते जा रहे हैं। मैसूर-राज्य में तो इन सभाओं ने ग़ज़ब की उन्नति की है।

सन् १९०४ में जो क़ानून बना, वह कई अंशों में असंतोष-प्रद था। अतएव सन् १९१२ में दूसरा क़ानून बनाया गया। इस क़ानून की रू से सभाओं के हिसाब-किताब की जाँच, उनका प्रबंध तथा रजिस्ट्रेशन आदि-संबंधी कुछ सुधार किए गए। इस क़ानून की रू से जिन सभाओं की रजिस्ट्री न कराई गई थी, उनको अपने नाम के साथ सहयोग या सहकारी-शब्द का उपयोग करने की मनाही कर दी गई। मुनाफ़े की १० सैकड़ा तक की रक़म को शिक्षा आदि सार्वजनिक कामों में व्यय करने का अधिकार दिया गया। किंतु विना फ़ीस लिए हिसाब-किताब जाँचने का नियम रद कर दिया गया, और अमर्यादित ज़िम्मेदारीवाली सभाओं को मुनाफ़े में से हिस्से की रक़म पर ब्याज देने की भी इजाज़त दे दी गई।

सन् १९१४ में सहकारी-सभाओं की वर्तमान अवस्था की जाँच करने के लिये एक कमेटी मुक़र्रर की गई। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कई सिफ़ारिशें कीं। स्थानाभाव के कारण उन पर यहाँ कुछ नहीं लिखा जा सकता। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में भारतवर्ष की सहयोग-प्रवृत्ति के भावी उत्कर्ष के संबंध में ज़बरदस्त आशंका प्रकट की है। इन सभाओं के कारण किसान आदि कम पूँजीवाली जनता एक बड़े समुदाय में संगठित हो जायगी। संभव है, यह संगठित समुदाय आगे चलकर कोई बुरा मार्ग स्वीकार कर ले। फिर भी कमेटी ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि यद्यपि इस आशंका के उत्पन्न होने के कारण अभी तक नज़र नहीं आए हैं, तथापि दूरदर्शिता से काम करना ही अच्छा है। सहयोग-सिद्धांतों के असली रूप के अभाव के कारण भी कुछ भय उत्पन्न हो गया है, और इन दोनों ही प्रकार की शंकाओं से सुरक्षित रहने के लिये कमेटी ने कई सिफ़ारिशें की हैं, जिनके कारण गोरे कर्मचारियों के पेट-पालन और शिमला-शैल-पर्यटन का सुप्रबंध हो गया है। किंतु संतोष की बात है, ये सिफ़ारिशें रिपोर्ट में ही रह गईं।

कुछ लोग भारत की सहयोग-प्रवृत्ति में अनेकों दोष

दिखा रहे हैं; किंतु दोष दिखानेवाले प्रकृति का यह अटल नियम भूल जाते हैं कि संसार में कोई पदार्थ निर्दोष नहीं। कुछ दोष संगठन की त्रुटियों, सर्वसाधारण की निरक्षरता और अज्ञान एवं सार्वजनिक हित के कामों के प्रति जनता की उदासीनता के ही कारण पैदा हो गए हैं। ये दोष ऐसे नहीं हैं, जो मिटाए न जा सकेंगे। शिक्षा के प्रचार और सहयोग-सिद्धांतों के प्रसार के साथ-साथ ये दोष क्रमशः आप-ही-आप मिटते जायँगे। भारत की वर्तमान अवस्था को देखते हुए निराश होने का कोई कारण नहीं जान पड़ता।

बहुधा पूछा जाता है कि सहकारी-सभाओं से देश की नैतिक और सांपत्तिक अवस्था में कहाँ तक सुधार हुए हैं? इस प्रश्न का उत्तर देना कम-से-कम इस समय तो असंभव ही है। कारण, इन संस्थाओं का जन्म हुए अभी बहुत थोड़ा समय हुआ है। अभी तो ९९ प्रतिशत भारतीय जनता सहयोग-संस्थाओं के लाभों से एकदम अपरिचित एवं वंचित है। फिर भी देश के सभी प्रांतों में इनकी दशा विशेष संतोष-प्रद है। जिन प्रांतों में इन सभाओं की संख्या अधिक है, वहाँ सूद की दर अवश्य ही बहुत घट गई है। कई स्थानों में ज़मीन के अंदर का गड़ा हुआ धन सहकारी-सभाओं के कोष में जमा होने लगा है, और इसका उपयोग उत्पादक कार्यों में किया जाने लगा है। शादी, मृत्यु-कार्य आदि अनुत्पादक कामों में किया जानेवाला ख़र्च भी सहकारी-सभाओं के प्रभाव से घट चला है। इन्हीं सभाओं की बदौलत दलालों और मध्यस्थों की जेब में जानेवाला लाभ किसानों और थोड़ी पूँजीवाले लोगों के घरों में रहने लगा है, जिससे इनकी सांपत्तिक अवस्था में सुधार भी होने लगा है। कुछ प्रांतों में दीवानी मुक़दमों की संख्या घट गई है, और बड़े-बड़े न्यायाधीशों ने इसका सारा श्रेय इन्हीं संस्थाओं को प्रदान किया है। बंगाल-प्रांत में आपसी झगड़े इन्हीं संस्थाओं की पंचायतों द्वारा तय होते हैं। शिक्षा-प्रचार में भी इन संस्थाओं ने अच्छी सहायता प्रदान की है। कई सभाएँ स्कूल चला रही हैं। कुछ सभाओं ने ज़्यादा उम्र के लोगों के पढ़ाने का काम हाथ में लिया है। बिहार में इन सभाओं ने औषधालय खोले हैं। मदरास में कुछ सभाएँ सफ़ाई के महकमे का काम चला रही हैं। ये सभाएँ अपना काम विशेष दक्षता, मितव्यय और उत्त-मता-पूर्वक कर रही हैं। इन सब बातों पर विचार करके कहना पड़ता है कि भारतवर्ष में सहयोग-प्रवृत्ति का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल और आशाजनक प्रतीत होता है।

शंकरराव जोशी

सलोनी सुषमा

बारन पै बार-बार मरकत-तार वारौं,
तिमिर अपार वारौं वाके केस-पास पर;
नैनन पै मीन वारौं, बैनन पै बीन वारौं,
काम की कमान वारौं भृकुटी-बिलास पर।
फूले अरबिंद वारौं, पूरे पूनो-चंद वारौं,
हीरन के बृंद वारौं आनन-उजास पर;
किरन-बिकास वारौं, बिद्युत-प्रकास वारौं,
चंद्र-हास-ह्रास वारौं मृदु मंद हास पर।
दसन की पाँति पर मोती भाँति-भाँति वारौं,
पल्लव प्रवाल लाल-लाल अधरान पर;
कलित कपोलन पै पाँखुरी गुलाब वारौं,
नील नग वारौं ठोढ़ी तिल के निसान पर।
भुजन पै सुंडादंड, कुचन पै हेम-कुंभ,
साही सान वारौं कबि "नूतन" गुमान पर;
चाल पै मराल, बेंदी-भाल पर बालरवि,
तन-मन वारौं वाकी मंद मुसुकान पर।
सुरपुर वारौं मंजु मानिक महल पर,
इंद्र को समाज वारौं वाके सुख-साज पर;
आसमानी चीर पर रेसमी दुकूल वारौं,
वारौं भूरि भूषन अमोल वाकी लाज पर।
अंग-अंग कोटिन अनंग-सुघराई वारौं,
सुकुमारता हू वाके नाजुक मिजाज पर;
प्रीति वारौं रति की, सुमति भारती की वारौं,
साहबी सची की वारौं वाके बाँके नाज पर।

शिवदुलारे त्रिपाठी "नूतन"

लखनऊ की सड़कें

छत्तीसगढ़ में रावण की लंका

इंदौर-दरबार के सरदारबहादुर कीबे महोदय मध्यभारत में "रावण की लंका" का पता लगाने में आकाश-पाताल एक कर रहे हैं, और उनके प्रयत्न से प्रसन्न हो पुरातत्त्व के प्रधान पंडित राय-बहादुर हीरालाल 'अर्पा'-नदी को पंपा, गोंड़-जाति के अंतर्गत 'रावण-वंशी' गोंड़ों को लंकेश्वर के वंशज तथा रतनपुर में १,४०० तालाबों के होने और मध्य-प्रदेश में एक बड़े-से तालाब के कारण सागर-नामक नगर का नाम पड़ जाने से यह सिद्ध करने के लिये आतुर हो रहे हैं कि 'अमरकंटक' के चारों ओर बड़े-बड़े सरोवर रहे होंगे, जो सागर कहलाते रहे होंगे, और 'अमरकंटक'-द्वीप ही (स्थलद्वीप ही सही!) त्रिकूट-पर्वत, आम्रकूट, मधुकूट और सालकूट था। जिस पहाड़ पर आम्र, मधूक और साल के विशाल तरुवर हों, उसे 'त्रिकूट' न कहेंगे, तो भला क्या कहेंगे! एक बात हीरालाल साहब लिखना भूल गए। छत्तीसगढ़ में यह प्रवाद प्रचलित है—"लंका में सोन के भूती *।" छत्तीसगढ़ से लंका यदि सात समुद्र पार होती, तो यह 'प्रवाद' क्यों प्रचलित होता? ख़ैर, हम भी एक दोहा फटकारे देते हैं—

अर्पा पंपा हो रही, रावण-वंशी गोंड़;
अमरकूट लंका बना, शंका का मुख मोड़।

समुद्र-तट से लंका सौ योजन की दूरी पर थी, और वह लंकापुरी एक द्वीप में थी, यह बात तो महर्षि वाल्मीकिजी के ही लेख से प्रकट है। रायबहादुर हीरा-लाल के माधुरी (वर्ष ३, खंड १, संख्या २) में प्रकाशित लेख में रामायण का एक श्लोक दिया है। वह नीचे उद्धृत किया जाता है—

इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने;
तस्मिन् लङ्कापुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा।

कीबे महोदय किन-किन ग्रंथों को प्रमाण मानते हैं, तथा किन ग्रंथों के किन-किन खंडों को प्रक्षिप्त बतलाते हैं, यह तो हम नहीं जानते। पर सुप्रसिद्ध 'अध्यात्म-रामायण' में ऐसा लिखा है—

शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं मकरालयम्,
लिलङ्घयिषुरानन्दसन्दोहो मारुतात्मजः;
ध्यात्वा रामं परात्मानमिदं वचनमब्रवीत्।

यह सुंदर-कांड का आदि-श्लोक है।

इस शत-योजन-विस्तीर्ण समुद्र के लाँघने का परामर्श जब सुग्रीव के दूत कर रहे थे, तब भी उन्होंने 'सौ योजन' की बात नहीं भुलाई थी।

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वीराः बलं पृथक्;
योजनानां दशारभ्य दशोत्तरगुणं जगुः।
शतादर्वाग्जाम्बवांस्तु प्राह मध्ये वनौकसाम्;
पुरा त्रिविक्रमे देवे पादं भूमानलङ्घयम्।
त्रिसप्तकृत्वोऽहमगां प्रदक्षिणविधानतः;
इदानीं वार्द्धकग्रस्तो न शक्नोमि विलङ्घितुम्।
अङ्गदोप्याह मे गन्तुं शक्यं पारं महोदधेः;
पुनर्लङ्घनसामर्थ्यं न जानाम्यस्ति वा न वा।

अर्थ—अंगद के वचन सुनकर उनके साथवाले वीर दस योजन से लेकर द्विगुण, त्रिगुण योजन जाने की शक्ति बतलाने लगे। वानरों के बीच में सौ के भीतर अर्थात् नब्बे योजन जाने को जांबवंत ने कहा। वह पुनः कहने लगे कि जब वामन-अवतार धारण करके भगवान् ने बलि से तीन पाद भूमि माँगकर अपने पैर बढ़ाए, तब यह सारी पृथ्वी उनके एक पाद-प्रमाण में आ गई। उस समय पृथ्वी की प्रदक्षिण-विधान से मैंने इक्कीस बार प्रदक्षिणा की। तब मेरी युवावस्था थी। अब वृद्ध हो गया हूँ, इससे समुद्र को लाँघने की शक्ति नहीं रही। अंगद ने कहा—मैं समुद्र को लाँघकर उस पार तो जा सकूँगा; पर पुनः लाँघकर लौटने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

हनुमान् को कुछ न बोलते हुए देखकर जांबवंत ने उनसे पूछा—

हनुमन्किं रहस्तूर्ष्णीं स्थीयते कार्यगौरवे।

इस पर हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न होकर सिंहनाद करके 'त्रिविक्रम' (भूमि नापते हुए वामन भगवान्) का-सा विशाल रूप धारण करते हुए बोले—

लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात्;
रावणं सकुलं हत्वाऽऽनेष्ये जनकनन्दिनीम्।

* * *

* मज़दूरी।

लङ्कां सुपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम् ।

फिर वह महेंद्र-पर्वत के शिखर पर चढ़कर अद्भुत रूप में प्रकट हुए—

महेन्द्राद्रिशिरो गत्वा बभूवाद्भुतदर्शनः ।

अध्यात्म-रामायण के कई स्थलों में 'शतयोजन' का उल्लेख है । संपाति वानरों से कह रहा है—

सम्पातिः कथयामास वानरान्परिहर्षयन् ;
लङ्कानामनगर्यास्ते त्रिकूटगिरिमूर्द्धनि ।
तत्राशोकवने सीता राक्षसीभिः सुरक्षिता ;
समुद्रमध्ये सा लङ्का शतयोजनदूरतः ।
दृश्यते मे न संदेहः सीता च परिदृश्यते ;
गृद्धत्वाद्दूरदृष्टिर्मे नात्र संशयितुं क्षमम् ।

ऊपर के इन श्लोकों में चौथी पंक्ति ध्यान देने योग्य है । आगे और श्लोक सुनिए—

शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं यस्तु लङ्घयेत् ;
स एव जानकीं दृष्ट्वा पुनरायास्यति ध्रुवम् *।

* * *

उल्लङ्घ्य सिन्धुं शतयोजनायतं ,
लङ्कां प्रविश्याथ विदेहकन्यकाम् ;
दृष्ट्वा समाभाष्य च वारिधिं पुनः ,
तर्तुं समर्थः कतमो विचार्यताम् ।

* * *

यतध्वमिति यत्नेन लङ्घितुं सरितां पतिम् ;
ततो हन्ता रघुश्रेष्ठो रावणं रक्षसाधिपम् ।
(किष्किंधाकांड)

स्वस्ति वोस्तु गमिष्यामि सीतां द्रक्ष्यथ निश्चयम् ;
यत्नं कुरुध्वं दुर्लङ्घ्यसमुद्रस्यापि लङ्घने ।
(किष्किंधाकांड सर्ग ८, श्लोक ५४)

ऊपर दिए गए श्लोकों से पाठकों को विदित हो जायगा कि 'शतयोजन' और 'समुद्रमध्ये सा लंका' आदि बार-बार कहे गए हैं, याने 'श्रीअध्यात्म-रामायण'-कार ने ज़ान-बूझकर 'शतयोजन' और 'सरितां पतिम्' का प्रयोग किया है । उस समय, तथा श्रीअध्यात्म-रामायण-कार की निज धारणा में लंका-विषयक जो प्रवाद और प्रमाण था, उसका सार इन श्लोकों में वर्णित है ।

* जो लाँघइ सतजोजन सागर ;
करइ सो राम-काज मतिआगर ।— तुलसी-कृत रामायण ।

आगे चलकर जब समुद्र में सेतु बाँधा गया, तब भी सौ योजन के हिसाब का ध्यान रक्खा गया था । यथा— इस महोदधि पर पाँच दिन में नल ने सेतु बाँधा था*—

पहले दिन	१४	योजन
२रे ,,	२०	,,
३रे ,,	२१	,,
चौथे ,,	२२	,,
५वें ,,	२३	,,
	१००	

कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ;
द्वितीयेन तथा चाह्ना योजनानि तु विंशतिः ।
तृतीयेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरिति स्मृतम् ;
पञ्चमेन त्रयोविंशद्योजनानि समन्ततः ;
बबन्ध सागरे सेतुं नलो वानरसत्तमः ।
(अध्यात्म-रामायण)

वाल्मीकीय रामायण में लिखा है—

योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः ;
अनिश्वसन्कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ।
शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि ;
किम्पुनः सागरस्यान्तं संख्यातं शतयोजनम् ।
(सु० का०, सर्ग २-३-४)

महाभारत, वनपर्व के २८२वें श्लोक में भी लिखा है कि श्रीरामजी ने नल के द्वारा सागर में दस योजन चौड़ा और सौ योजन लंबा सेतु बँधवाया, जो नल-सेतु के नाम से प्रसिद्ध है—

तेनोपायेन काकुत्स्थः सेतुबन्धमकारयत् ;
दशयोजनविस्तारमायतं शतयोजनम् ।
नलसेतुरितिख्यातो योऽद्यापि प्रथितो भुवि ।

इन सब प्रमाणों से यह बात निश्चित होती है कि भारतवर्ष और लंका का अंतर चाहे अधिक हो, पर सौ योजन से कम नहीं है । महाभारत के रचना-काल में सेतु का नाम 'नल-सेतु' प्रसिद्ध था । तो क्या दो-तीन मील के दल-दल के ऊपर के सेतु को यह गौरव मिलेगा ? अध्यात्म-रामायण, वाल्मीकि-रामायण, महाभारत-इतने प्रमाणों के रहते भी भला कीबे साहब या हीरालाल साहब के कथन को कोई क्योंकर भ्रांति-रहित मान ले ?

* "इंदु"-पत्र (काशी) से ।

'लंका'-द्वीप वर्तमान लंका को मानना चाहिए या नहीं, यह तो दूसरी बात है। किष्किंधा की स्थिति का प्रश्न अभी हम छोड़े देते हैं। अमरकंटक के निकट दलदलों से घिरा हुआ जो गढ़ है, उसी को कीबे महाशय लंकागढ़ मानते हैं। उनका अनुमान है कि रावण के समय में, इस दलदल में, कदाचित् एक-दो मील तक पानी भरा रहा होगा।

कीबे महाशय की इस 'थ्योरी' पर हीरालाल साहब का यह भाष्य है—

"बड़े-बड़े जलाशयों को सागर कहने की पुरानी प्रथा है। इसलिये इसको सागर की संज्ञा देना अनुचित नहीं कहा जा सकता।" ख़ैर।

"जटायु का भाई संपाति आया, और उसने सीताजी की ख़बर दी; कहा—

इतःस्थोहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा।

अर्थात् यहाँ से मैं रावण और जानकी को भी देख रहा हूँ। इससे जान पड़ता है कि जहाँ पर ये लोग बातें करते थे, वहाँ से लंका बहुत निकट थी, न कि सैकड़ों मील दूर।"

ऊपर के आक्षेप पर नम्र निवेदन है कि गृद्धराज ने इतने दूर के दृश्य देखने का कारण स्वयं बतला दिया है—

गृद्धत्वाद्दूरदृष्टिर्मे नात्र संशयितुं क्षमम्।

"इतनेहु पै करिहहिं जे संका", उनके विषय में हम क्या कहें। एक वैज्ञानिक आई० सी० एस्० का कथन है कि २०० या ३०० वर्ष के बाद विज्ञान में इतनी उन्नति हो जायगी कि भारतवर्ष का एक वैज्ञानिक अमेरिका के किसी वैज्ञानिक मित्र को चर्म-चक्षुओं से देख सकेगा। कौन कह सकता है कि जिस रावण के स्थिति-काल में वायुयान और नाना प्रकार के व्योमास्त्र-शस्त्र थे, उसके समय में विज्ञान की ऐसी उन्नति न थी। तब प्रश्न यह होगा कि बंदरों ने क्यों न देखा—केवल संपाति ने क्यों देखा? उसका उत्तर यह है कि चक्षुविप्सा में उसका नैपुण्य रहा होगा; और 'गृद्ध-दृष्टि' की प्रखरता भी तो प्रसिद्ध है।

भारत की एक अन्य भाषा की रामायण से पता लगता है कि संपाति जब छिन्नपक्ष होकर असहायावस्था में था, तब उसका पुत्र सुपार्श्व, जो हिमालय में रहा करता था, नित्य उसके लिये भोजन ला दिया करता था *। जब वानरों ने संपाति से पूछा कि तुम वयोवृद्ध हो, और बहुत काल से यहाँ रहा करते हो, बतलाओ तो सही, समुद्र के किस प्रकार पार उतरा जाय?, तब संपाति ने कहा—"थोड़ी देर में मेरा पुत्र हिमालय से आवेगा। तुम लोग उसकी पीठ पर सवार होकर अनायास समुद्र पार कर सकते हो। मैं अपने पुत्र से कह दूँगा कि वह तुम लोगों को समुद्र पार करने में सहायता दे। मेरा पुत्र इस सागर के $\frac{3}{4}$ भाग तक तुम्हें पहुँचा देगा। शेष $\frac{1}{4}$ भाग तुम लाँघ सकोगे।"

ऊपर लिखी कथा से इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि संपाति के पुत्र सुपार्श्व के पास वायुयान था, और वह उसके चालन में निपुण था; संपाति और उसके पुत्र का वैज्ञानिक ज्ञान और शक्ति अत्यंत उच्च कोटि की रही होगी, जिससे वे 'देश और काल' की बाधा के अतिक्रमण में समर्थ थे।

कीबे महाशय एक छोटी गोदावरी की कल्पना करते और उसे चित्रकूट-पर्वत से निकली हुई मानते हैं। जब ऐसी 'मनगढ़ंत' बातों को लेकर 'छत्तीसगढ़ में लंका' मान लेने का प्रयत्न—'ठोक-पीटकर वैद्यराज' बनाने के समान—किया जा रहा है, तो उसके संबंध में कुछ लिखना व्यर्थ नहीं, तो और क्या है? ऐसी दशा में तो फिर राजपूताने में कहीं 'लंका' मान लेना और भी ठीक होगा। राजस्थान की मरुभूमि रावण के समय में समुद्र थी—महोदधि थी। उसी के बीच में एक जगह लंका-नगरी थी। उसकी उत्तर-दिशा में रामायण-वर्णित गिरि, नदी, सर, सरोवर, सभी क्यों न मान लिए जायँ? प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसादजी का एक लेख इस विषय में कई वर्ष पूर्व एक हिंदी-पत्र में छपा ही था कि राजपूताने में पौलस्त्य या रावण-वंशी ब्राह्मण भी होते हैं।

एक अन्य पुरातत्त्व-विशारद ने सरगुजा-राज्य के रामगढ़-पर्वतों की गुफाओं को लंका प्रमाणित करने की चेष्टा की थी। ऐसे प्रत्येक प्रयत्न में लाभ अवश्य है। कौतूहल और मनोरंजन भी यथेष्ट हुआ करता है। भगवान् करें, यह प्रयत्न बराबर जारी रहे।

* यह कथा वाल्मीकि-कृत 'रामायण' में भी है।

छत्तीसगढ़ के गोंड़-जाति के लोगों के प्रति सहृदय विद्वानों की सहानुभूति होनी ही चाहिए; क्योंकि वे अपने को 'रावण-वंशी' कहते हैं। क्या किसी भी देश या भू-खंड में किसी प्रसिद्ध वंश के लोग पाए जायँ, तो वहीं उनका 'आदि-निवासस्थान' मान लिया जाय? जावा या सुमात्रा में यदि आर्य लोगों के वंशज रहते हों, तो क्या जावा और सुमात्रा आर्य-देश कहलावेंगे? त्रिशिरा, खर-दूषण आदि का उपनिवेश दंडकारण्य में रहा होगा, और इसी से वे तपस्वी ऋषि-मुनियों को खूब तंग किया करते थे। क्या इनके वंशज भी रावण-वंशी नहीं कहला सकते? फिर लंका की स्थिति का उपनिवेश में होना अनिवार्य भी न था। रावण का राज्य जहाँ था, वहाँ लंका-पुरी थी, यह बात नहीं। एक अन्य रामायण में लिखा है कि कई रावण और कई लंकाएँ थीं। सुग्रीव से रामचंद्रजी कह रहे हैं—

"उस रावण का घर किस ओर है? लंका नाम के कई नगर हैं; रावण नाम के कई राजा हैं। सीता को चुराकर ले जानेवाला रावण कौन है?" एक पश्चिम लंका का उल्लेख तो शिला-लेखों तक में पाया जाता है। यथा—

A copper-plate grant of the time of one Kumar Someswara Deva of Sonepur discloses that one Udyota Kesari, who claimed decent from Matrabhava Gupta Deva, granted the State of Sonepur to one Abhimanyu Deva. Abhimanyu * * * * made himself "*Pashcim Lankadhipati*" पश्चिम लंकाधिपति Why the State of Sonepur was once called पश्चिम लंका can not be known * * * * Jogeshwara Deva Varman of the campamalla copper-plates has mentioned it, that when the grant under the plates was made, he was at Sonepur, and that his palace was on the bank of the Mahanadi close to the rock called Lankeswari or Lankavarttaka.

अर्थात् सोनपुर के सोमेश्वरदेव के ताम्र-शासन से पता लगता है कि महाभवगुप्त केसरी के वंशोद्भव किसी उद्योत-नामक राजा ने अभिमन्यु-नामक व्यक्ति को 'सोनपुर' का राज्य प्रदान कर दिया था। अभिमन्यु काल पाकर 'पश्चिम लंकाधिपति' बन बैठे। सोनपुर-राज्य 'पश्चिम लंका' क्यों कहलाता था, यह बात नहीं जानी जाती। योगेश्वर वर्मा के ताम्र-पत्र से ज्ञात होता है कि महानदी के तट पर एक चट्टान है, जिसका नाम 'लंकेश्वरी' या लंकावर्तक है।

कीबे महाशय छोड़ दें 'अमरकंटक' को त्रिकूट मानने का अपना विचार। यहाँ तो 'पश्चिम लंका' और उसकी राजधानी 'स्वर्णपुर' (सोनपुर) तथा लंकेश्वरी, सब-के-सब मौजूद हैं। महानदी भी बहती है। वह "सागरोऽयं महोदधिः" का काम देगी। फिर क्या! छत्तीसगढ़ में न सही, उड़ीसा में 'लंका' का आविष्कार हो। पर सोनपुर तो दक्षिण या महाकोशल के अंतर्गत १२वीं-१३वीं सदी में था। उसे छत्तीसगढ़ के भीतर ही मान लेना होगा।

सोनपुर-राज्य के विषय में कुछ लिखना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। सोनपुर या सुवर्णपुर नाम के संबंध में कई किंवदंतियाँ हैं। वहाँ एक सुवर्णमेरु-महादेव हैं। कहा जाता है, जो थनापति या पुजारी इस शिव-मंदिर तथा अन्यान्य शिव-मंदिरों में पूजा करते हैं, वे माली या गंधमाली-जाति के हैं। सुवर्णमेरु-महादेव की दया से एक बार वहाँ स्वर्ण की वृष्टि हुई थी। उस स्वर्ण-वृष्टि के स्वर्ण-बिंदु महानदी के गर्भ-देश में प्राप्त हुए थे। तब से उन महादेव का नाम 'सुवर्ण-मेरु' पड़ गया। 'स्वर्णपुर' के संबंध में एक प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ ने लिखा है—

Unlike the Geographical names of other States in the Sambalpur tract, the Hindu name Suvarnapur or Sonepur seems to have been in existence even before the time of *Mahabhava Gupta I; for in the copper-plate grants of this Raja the name Suvarnapur occurs. But I have not been able to trace any Hindu History of Sonepur previous to the time of Mahabhava Gupta I.

A small hill, which bears an inscription and is situated in the bed of the Mahanadi, not far off from the palace of the Maharaja of Sonepur, is called Lankeshwari, and is worshipped by the boatmen when passing through the river. The Lankeshwari hill has been mentioned in the

* Janamejaya Mahabhava Gupta I. This King and his son Yayati and grandson Bhimrath were lords of the Sambalpur tract during the 10th and 11th centuries.

campamalla plate of Jogeshwar Deva Varman. The charter of Kumar Someshwar Deva discloses the fact that the state of Sanepur was also once called "*Pashcim Lanka*". When these names came into existence, can not be determined. But it becomes partly certain that open country of Sonepur was colonised earlier than the other parts of the Sambalpur tract.

अर्थात् ईसवी सन् की दसवीं-ग्यारहवीं सदी में, राजा जनमेजय महाभवगुप्त के राज्यकाल में, सुवर्णपुर या सोनपुर नाम प्रचलित था; क्योंकि उक्त राजा के एक ताम्र-शासन में 'सुवर्णपुर' का नाम पाया जाता है। परंतु जनमेजय राजा के पहले वहाँ हिंदू-राजत्व था या नहीं, इसके इतिहास का पता नहीं लगा।

एक छोटी-सी पहाड़ी महानदी के गर्भ-प्रदेश में है। वह वर्तमान महाराज के राजभवन के निकट है। उस पहाड़ी में एक शिला-लेख है, जिससे पता लगता है कि उस पहाड़ी का नाम 'लंकेश्वरी' था। केवट लोग नाव लाते-ले जाते समय उसकी पूजा किया करते हैं। योगेश्वरदेव वर्मा के कंपामल्ल में प्राप्त ताम्रपत्र में लंकेश्वरी का नामोल्लेख है। कुमार सोमेश्वरदेव के ताम्रपत्र से यह बात विदित होती है कि सोनपुर-राज्य का नाम उस समय 'पश्चिम लंका' था। कब से यह नाम पड़ा, यह निश्चित नहीं किया जा सकता; पर यह निश्चित है कि सोनपुर संबलपुर के अन्यान्य भू-खंडों से पहले उपनिवेश बनाया गया था।

खरौद (ज़िला बिलासपुर), जो महानदी से केवल दो मील पर शवरी-नारायणक्षेत्र के पास है, और जहाँ खर-दूषण के निवास की जनश्रुति है, अपने लक्ष्मणेश्वर-शिवमंदिर के लिये प्रख्यात है। उस मंदिर में एक शिला-लेख है। उसका समय सं० ९३३ (चेदि-संवत्) है। उसमें सुवर्णपुर और उसके राजा भुजबल का नाम एक श्लोक में आया है—

तुम्माणाधिपतिः सुतोऽस्य कमलः श्रीरत्नराजस्ततः
पृथ्वीदेवनरेश्वरेतिविदनः क्षोणीशचूडामणिः ।
तत्तनयो नृपति (श्राजाजल्ल देवो) रभूत् सुवर्णपुरनाथम्;
भुजबलमबलं चक्रे निज भुजबलतः समीके यः।

इतना तो लिखा गया पश्चिम लंका के संबंध में। पर जब राम-रावण के युद्ध के पश्चात् लंका का नाम साहित्य में सुविदित हो गया था, तो भारतीय ग्रंथकारों ने दक्षिणापथ के देशों या राज्यों में उसकी गणना करने में इतनी उपेक्षा और भूल क्यों की? विदर्भ, माहिष्मत, दक्षिण-कोशल या महाकोशल, त्रिपुरी, चेदि, वत्स, कलिंग, स्त्रीराज्य, मूषिक-देश आदि के मध्य में अवस्थित 'लंका' के समान ऐतिहासिक और आर्य-विजय के स्मारक-स्वरूप 'लंका' (अमरकंटक) को वे लोग एकदम भूल जाते, यह असंभव जान पड़ता है। जब सोनपुर का राज्य 'पश्चिम लंका' कहलाता है, तो प्रकृत लंका अवश्य ही वहाँ से पूर्व दिशा की ओर पूर्व-समुद्र में रही होगी। काशी और 'उत्तर-काशी' के सदृश लंका और पश्चिम लंका को भी समझना चाहिए। यदि यह कहा जाय कि सरदार कीबे साहब को 'लंका के आविष्कार' का सुयश देने के लिये प्राचीन ग्रंथकारों ने उसका नाम नहीं लिया, तो बात ही दूसरी है।

कवि-कुल-कुमुद-कलाधर कालिदास अपने भौगोलिक ज्ञान के लिये प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने 'मेघदूत' तथा 'रघुवंश' में मेघ को मार्ग प्रदर्शित करते हुए, तथा रघु राजा के दिग्विजय में देशों का वर्णन करते हुए, भारत-भूमि के तात्कालिक भूगोल के ज्ञान का अच्छा परिचय दिया है। हम उन्हें लंका की स्थिति-विषयक ज्ञान से अनभिज्ञ नहीं मान सकते। यदि उनके समय में रावण की लंका के मध्यभारत या अमरकंटक में होने का प्रवाद प्रचलित रहता, तो वह मेघदूत या अपने अन्य काव्य में "समुद्रमध्ये सा लङ्का" के अनुसार पुरानी लकीर के फ़क़ीर न बनकर कुछ तो ज़रूर लिखते। 'रघुवंश' में वह लिखते हैं—

प्रवृत्तावुपलब्धायां तस्याः संपातिदर्शनात्;
मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्ममः।
(सर्ग १२, श्लोक ६०)

श्रुत्वा रामः प्रियोदंतं मेने तत्संगमोत्सुकः;
महार्णवपरिक्षेपं लङ्कायाः परिखालघुम्।
(सर्ग १२, श्लोक ६६)

त्रयोदश सर्ग में महाकवि कालिदास के ये श्लोक भी ध्यान देने-योग्य हैं—

वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं
मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्;
छायापथेनेव शरत्प्रसन्न-
माकाशमाविष्कृतचारुतारम्।

एते वयं सैकतभिन्नशुक्ति-
पर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ;
प्राप्ता मुहूर्तेन विमानवेगात्
कूलं फलावर्जितपूगमालम् ।

इन श्लोकों से स्पष्ट है कि महाकवि कालिदास के समय में, भारत के सुप्रसिद्ध विद्याविशारदों में, रावण-पालित लंकापुरी के समुद्र-मध्य में होने के विषय में किंचित् भी शंका न थी। महाभारत-काल में रामचंद्र-जी द्वारा निर्मित सेतु का नाम नल-सेतु था, यह बात हम आगे लिख ही आए हैं।

ब्रह्मांड-पुराण के मत से यवद्वीप के अनंतर मलयद्वीप है। इसी मलय-द्वीप के अंतर्गत पर्वत के सानु-देश में लंकापुरी अवस्थित थी। यथा—

तथा च मलयद्वीपं मेरुमेव सुसंस्कृतम् ;
मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरः कमलस्य च ।
अनेकयोजनाविष्टे चित्रसानुदरीगृहे ;
तस्य कूटतटे रम्ये हेमप्राकारतोरणे ।
निर्व्यूहवहुवैचित्र्या हर्म्यप्रासादमालिनी ;
शतयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ;
नित्यप्रमुदिता स्फीता लङ्कानाम महापुरी ।
सा कामरूपिणां स्थानं राक्षसानां महात्मनाम् ;
आवासो बलदृप्तानां तद्विद्याद्देवविद्विषाम् ।

(ब्रह्मांड-पुराण, अनुषंगपाद, ५७ अध्याय)

वाल्मीकिजी किष्किंधाकांड के ४१वें अध्याय में लिखते हैं—

तथा मत्स्यकालिंगांश्च कौशिकांश्च समंततः ;
अन्वीक्ष्य दण्डकारण्यं सपर्वतनदीगुहम् ।
नदीं गोदावरीं चैव सर्वमवानुपश्यत ;
तथैवांध्रांश्च पुण्ड्रांश्च चोलान् पाण्ड्यांश्च केरलान् ।
अधोमुखश्च गन्तव्यः पर्वतो धातुमण्डितः ;
विचित्रशिखरः श्रीमान् चित्रपुष्पितकाननः ।

* * *

ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम् ;
सा चन्दनवनैश्चित्रैः प्रच्छन्नद्वीपवारिणी ।
कान्तेव युवती कान्तं समुद्रमवगाहते ;
ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम् ।
युक्तं कवाटपाण्ड्यानां ततोद्रक्ष्यथ वानराः ;
ततः समुद्रमासाद्य संप्रधार्यार्थनिश्चयम् ।

अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः ;
चित्रसानुनगः श्रीमान्महेंद्रः पर्वतोत्तमः ।
जातरूपमयः श्रीमानवगाढो महार्णवम् ;
नानाविधैर्नगैः फुल्लैर्लताभिश्चोपशोभितम् ।
देवर्षियक्षप्रवरैरप्सरोभिश्च शोभितम् ;
सिद्धचारणसंघैश्च प्रकीर्णं सुमनोरमम् ।
तमुपैति सहस्राक्षः सदा पर्वसु पर्वसु ;
द्वीपस्तस्य परे पारे शतयोजनविस्तृतः ।
अगम्योमानुषैर्दीप्तस्तं मार्गध्वं समंततः ;
तत सर्वात्मना सीता मार्गितव्या विशेषतः ।
स हि देशस्तु वध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः ;
राक्षसाधिपतेर्वासः सहस्राक्षसमद्युतेः ।
दक्षिणस्य समुद्रस्य मध्ये × × × ।

इत्यादि ।

महाकवि कालिदास के दक्षिण के देशों के वर्णन से ऊपर लिखे श्लोक अनेकांश में मिलते हैं। यथा—

दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ;
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ।
ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः ;
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम् ।
स निविश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ ;
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलो मलयदर्दुरौ ।
असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता ;
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत् ।

(रघुवंश, सर्ग ४)

समुद्र के निकट रघु को पहुँचाकर महाकवि कालिदास एक श्लोक में 'त्रिकूट' का नामोल्लेख करते हैं जिससे अमरकंटक का 'त्रिकूट' होना असिद्ध होता है—

मत्तेभरदनोत्कीर्ण व्यक्तविक्रमलक्षणम् ;
त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तम्भं चकार सः ।

(रघुवंश, सर्ग ४)

अमरकंटक भौगोलिक विभाग के अनुसार या तो महाकोशल के अंतर्गत रहा होगा, अथवा चेदि-देश (प्राचीन जबलपुर) या माहिष्मती-नगराधिप के राज्य में। फिर उसे लंका-द्वीप, लंकादेश या जनपद कैसे कह सकते हैं ? फिर तो वह दक्षिण देश में नहीं है, जैसा कि हम दिखलावेंगे।

वाल्मीकीय रामायण के बाल-कांड में महाकोशल या दक्षिण-कोशल का नामोल्लेख कोशल के नाम से मिलता है—

पंचम सर्ग—

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान् ;
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ।
अयोध्यानाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता ;
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ।

यह तो उत्तर-कोशल का वर्णन हुआ । पुत्रेष्टि-यज्ञ के लिये जिन-जिन राजों को निमंत्रण दिया गया था, उनमें कोशल-देश के राजा भानुमान् भी थे । यथा—

अङ्गेश्वरं महेष्वासं रोमपादं सुसत्कृतम् ;
वयस्यं राजसिंहस्य सपुत्रं तमिहानय ।
तथा कोशलराजानं भानुमन्तं सुसत्कृतम् ;
मगधाधिपतिं शूरं सर्वशास्त्रविशारदम् ।

You must also bring Dashrath's friend, Rompad, the King of Ang. You yourself invite Bhanuman, the King of Kosal and the learned and valliant King of Magadh:—

यह भानुमान् का कोशल दक्षिण-कोशल था ।*

सुग्रीव वानरों को पूर्व-दिशा की ओर भेजते हुए कह रहे हैं—

अधिगच्छ दिशं पूर्वां सशैलवनकाननाम् ।

और पूर्व-दिशा के देशों में 'कोशल' का भी उल्लेख है—

महीं कालमहीं चापि शैलकाननशोभिताम् ;
ब्रह्ममालान्विदेहांश्च मालवान्काशिकोशलान् ।

राजशेखर कवि अपनी 'काव्यमीमांसा' में 'कोसल'-(दक्षिण-कोशल)-देश को पूर्व दिशा में स्थित मानते हैं—

Raj Shekhar divides आर्यावर्त into five parts (१) पूर्वदेशः (२) दक्षिणापथः (३) पश्चाद्देशः (४) उत्तरापथः (५) मध्यदेशः ।

पूर्वदेश is the part lying east of Benares. It contains the following:—

Countries.	Mountains.	Rivers.	Products.
अंग	बृहद्गृह	शोण	लवली
कलिंग	लोहितगिरि	लौहित्य	ग्रंथिपर्णक
कोशल	चकोर	गंग	अगरु
तोसल	दर्दुर	करतोया	द्राक्षा
उत्कल	नेपाल	कपिश्ग	कस्तूरिका
मगध	कामरूप	इत्यादि	
मुद्गर	इत्यादि		
विदेह			
नेपाल			
पुंड्र			
प्राग्ज्योतिष			
ताम्रलिप्तक			
मलद			
मल्लवर्तक			
सुह्म			
ब्रह्मोत्तर			
इत्यादि			

यदि कोसल या कोशल-देश पूर्व-देश की सीमा में था, तो फिर उसे 'दक्षिणापथ' में मानना ठीक नहीं है। 'अमरकंटक' को शल-देश के इतने निकट और कोशल-राज्य से उत्तरकी ओर होकर भी क्योंकर 'दक्षिण-समुद्र' के तीरवर्ती हो सकेगा, यह हम नहीं समझ सकते ।

इन सब बातों का विचार करने पर यही कहना पड़ता है कि अमरकंटक 'त्रिकूट'-गिरि नहीं हो सकता, और न वहाँ रावण-पालित लंकापुरी की ही स्थिति मानी जा सकती है ।

'स्वर्णमयी लंकापुरी'—यह भारत के बच्चे-बच्चे के मुँह से निकलता है। छत्तीसगढ़ में तो यह कहावत ही है—

"सोन के लंका माटी होगे", अर्थात् 'स्वर्ण-लंका-' शब्द का प्रभाव और प्रचार भारत के ग्राम-ग्राम और कुटी-कुटी में है । किष्किंधाकांड में एक श्लोक है—

* दक्षिण-कोशल का उल्लेख न तो समुद्रगुप्त की प्रयागवाली लाट के लेख में है, और न तीवरदेव महाराज के दानपत्रों में । उनमें केवल 'कोशल' नाम ही है ।

यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम् ;
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णकरमंडितम् ।
(४०।३०)

यदि इस स्वर्ण-लंका का आविष्कार छत्तीसगढ़ में हो ही रहा है, तो भय का कोई कारण नहीं । छत्तीसगढ़ का 'स्वर्ण-भांडार' तो 'उत्तर-कोशल' (युक्तप्रांत)-वासी तथा विहार के बंदरों के व्यूह आर्य-समुदाय के लिये मुक्त द्वार हैं ही । लूटते रहें न जन्म-भर । विभीषण को तो अमरता मिल ही चुकी है । वह तो उनके "दासस्य दासस्य च दासदासः" है ही । उससे 'भेद' का काम लेते हुए नित्य विजयोत्सव में रत रहें । रावणवंशी गोंड़ भी अब 'गँवारों के सरदार' बन चुके हैं । समुद्र का जल भी सूख गया है । रत्न-राशि बटोरने में कोई कष्ट ही नहीं रहा ।

पुरातत्त्वज्ञों का एक प्रशंसक

ईश्वर का बहिष्कार

(२)

(क्या ईश्वर है ?)

Ideal is but a flower, whose root lies in the material conditions of existence.

Proudhow.

सच है, आदर्श कल्पना एक पुष्प है, जिसकी जड़ जीवन की प्राकृत स्थिति में रहती है । यह नहीं कि विना सिर-पैर की अनहोनी कल्पना हो । भला प्रत्यक्ष जगत् सत्य है, या केवल-मात्र कल्पना में रहनेवाला निराधार ईश्वर ? कोई भी व्यक्ति, जिसका मस्तिष्क विकृत नहीं हुआ है, प्रकृति को ही सत्य कहेगा । प्रकृति को असत्य, और काल्पनिक ईश्वर को सत्य कहनेवाला निस्संदेह पागल है । आँखों का अविश्वास करके कानों का विश्वास करना बुद्धिमानों का काम नहीं है । मनुष्य-जाति का सारा इतिहास—चाहे किसी भी विषय का क्यों न हो—द्रव्य से ही संबंध रखनेवाला मिलता है ; सबका प्रकृति से ही संबंध है । गपोड़ कथाओं की बात दूसरी है । प्राणों के उद्गम और विकास का आधार तथा जीवत्व के सर्वश्रेष्ठ प्रकट प्रकाश का मूल प्रकृति है । निष्पक्ष विज्ञान इस बात की गवाही देता है ।

वस्तु के विकास में, प्राणियों की उन्नति में, हम देखते हैं, पिछला रूप मिट जाता और अभिनव विकसित उन्नत रूप उसके स्थानापन्न हो जाता है । मनुष्यता में (सज्ञान पशुपन में) केवल पशुता के बल का दिन-दिन ह्रास होता जाता है, और ज्ञान का विकास । यह क्रिया नैसर्गिक है । इसी ज्ञान-वृद्धि के कारण प्रकृति के गुप्त रहस्य मनुष्य को मालूम होते जाते हैं । इस विकास-काल में, विज्ञान के प्रचंड मार्तंड के प्रकाश में, सिवा विक्षिप्तों के और कौन ऐसा हो सकता है, जो अंधकार के समय के कल्पित ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करेगा ? किसी फ़ारसी-कवि ने क्या ही ख़ूब कहा है—

"ख़याले हर दो आलम राज़ लौहे दिल चुना शुस्तम ;
कि शुद बर तख़्तए हस्ती जेयक नुक़्ता, दो ख़त पैदा ।"

जन्म के पूर्व और मृत्यु के बाद के संसार को दिल से ऐसा हटाया कि वर्तमान काल में प्राकृत जीवन के आधार पर एक प्रत्यक्ष के विचार के कारण एक बिंदु से दो रेखाएँ उत्पन्न हो गईं । आदम-हौआ के जंगलीपन का ज़माना गया; ख़ुदा की शरारत और शैतान की मेहरबानी की अब ज़रूरत नहीं । यह बीसवीं सदी का विज्ञानकाल है ।

अब हममें सत्यासत्य के विवेक की बुद्धि बढ़ गई है, और मिथ्या बातों को मार भगाने की इच्छा तथा शक्ति उत्पन्न हो गई है । आजकल का पंडित कहता है— "गुस्ताख़िए फ़रिश्ता मुआफ़ हमारे जवाब में नहीं ।" आज हमें अवतारों, ख़ुदा और रसूलों की ज़रूरत नहीं है, और न हम शून्य से संसार की उत्पत्ति मानने की मूर्खता करने को तैयार हैं । स्वार्थवश मनुष्यों को ग़ुलामी के गर्त में रखनेवाले सुर और स्वतंत्रता के लिये संग्राम करनेवाले असुरों की सारी कैफ़ियत हमें मालूम हो चुकी है । हम सुरों के राजा ईश्वर की उस्तादियों और करामातों को ख़ूब जान चुके । हम समझ चुके कि हमारा कल्याण अगर हो सकता है, तो असुरों के द्वारा ।

सुर बननेवाले धर्मयाजकों, राजवर्गियों और धनवानों का विचार मेरे दिल में आ गया । इसलिये आवेश में आकर मैंने विषय से कुछ असंगत बातें कह डालीं । लेकिन यह ज़रूर है कि यदि सुर आजकल के उच्च, सर्व-

श्रेष्ठ बननेवाले हिंदुओं की तरह होते हैं, और असुर ग़रीब, मेहनत की कमाई खानेवाले, छोटे कहलानेवाले किसान, मेहतर, धोबी, चमार, लोहार, बढ़ई हैं, तो मैं असुरों को अवश्य ही सुरों की अपेक्षा बड़प्पन दूँगा। ईश्वर यदि ऐसा ही है, जैसा बाइबिल और कुरान का ईश्वर तो इन्हीं पुस्तकों के शैतान की उपासना को खुदा की उपासना से लाख बार अच्छी समझूँगा।

हम देखते हैं, संसार का विकास क्रमशः नीचे से ऊपर को हुआ है। मानव-जगत् दिन-पर-दिन ज्ञान की वृद्धि करता जा रहा है। जो विज्ञान, जो कला-कौशल १९ शताब्दियों तक न थे, वे आज क्रमशः उन्नत होकर बीसवीं शताब्दी में हमारी आँखों के सामने हाज़िर हैं। लेकिन ईश्वर-वादी आँखें बंद करके उलटा मार्ग लेते हैं। ये सर्वगुण-ज्ञान-गरिमा-संपन्न एक ईश्वर को तो पहले ही मान लेते और फिर उससे अज्ञान-आच्छादित जगत् की उत्पत्ति मानते हैं। यह कैसी विचित्र बात है! ईश्वर भी कोई व्यक्ति होगा या होगी, तो उसका उन गुणों से विभूषित होना, जिनसे उसे विशिष्ट किया जाता है, सर्वथा असंभव है। इस प्रत्यक्ष बात के जानने के लिये किसी चालबाज़ी की ज़रूरत नहीं। इसके लिये व्यक्त परमात्मा के माननेवालों को कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं।

कुछ लोग कहते हैं, ईश्वर एक सर्व-व्यापक आत्मा है, जो आकाशवत् या सूर्य के प्रकाशवत् सर्वत्र व्याप्त है; वही संसार का निर्माता, संचालक और प्रबंधक है। किंतु यह बात भी नहीं बनती; क्योंकि जिस ईश्वर को ज्ञान का भांडार, शक्ति का ख़ज़ाना, पांडित्य का सागर, दयालुता और न्याय की खत्ती और सारे गुणों का 'आर्टिज़न वेल' (पातालतोड़ कूप) माना जाता है, उसकी कार्यवाही में तो ये सब बातें हम नहीं देखते। जिसे लोक-दिक्-काल के परे खोजने जाकर बड़े-बड़े दार्शनिकों ने ज़मीन और आसमान के कुलाबे मिलाए हैं, उसकी सत्ता को गौतम, कणाद, कपिल, वाचस्पति मिश्र, शंकर आदि भारतीय, और प्लेटो, डिकांटे, स्पॉयनोज़ा, कांट और हीगल प्रभृति योरप के दर्शनकार भी न तो सिद्ध कर पाए, और न उसकी संतोषजनक व्याख्या ही कर सके। अंत में बड़े-बड़े ऋषियों, अवतारों, नबियों और वलियों ने भी न की। जिस पहेली के बूझने में अपनी बलहीनता और बुद्धि-विहीनता को ही स्वीकार करके वेद-शास्त्र केवल "नेति-नेति" कहकर रह गए, उसे कोई कैसे मान सकता है। सच तो यह है कि असत् को सत् सिद्ध करना संभव नहीं। आँखें बंद करके बेहूदा बातों पर विश्वास कर लेना दूसरी बात है। पर प्राकृत नियमों के विरुद्ध कोई हस्ती नहीं हो सकती, न इसके विरुद्ध कोई शक्ति। इससे भिन्न कोई वैज्ञानिक केवल कल्पना ही कर सकता है। वनस्पति से प्राणी, प्राणी से मनुष्य, इसी प्रकार उत्तरोत्तर एक प्राकृतिक नियम के अनुसार संसार का विकास हुआ है। तब यह अनहोना ईश्वर कहाँ से कूद पड़ेगा, जो प्रकृति से भिन्न हो, और आरंभ में ही सब गुणों की खान भी। आँखें बंद करके किसी बात की कल्पना कर लेना दूसरी बात है। और, विश्वास में यही तो एक मूर्खता है कि इसके आँखें नहीं होतीं। यह चिड़िया के दूध की कल्पना करता है, और उसका अस्तित्व मानकर बैठ जाता है। इसी अंधे विश्वास से उत्पन्न हुआ ईश्वर समस्त संसार के धर्म-ग्रंथों, दर्शनों और चालबाज़ों की पुस्तकों का प्रधान चरित्र-नायक है, जिससे संसार की सारी बुराइयाँ, बदमाशियाँ, अत्याचार तथा कमज़ोरियाँ पैदा हुईं, और मनुष्य-जाति नीच तथा निकम्मी हो गई।

जहाँ शारीरिक हानि पहुँचाने के लिये अनेक नशेबाज़ी और दुराचार के अड्डे होते हैं, वहाँ मनुष्य को मानसिक हानि पहुँचाने और निकम्मा बनाने के लिये धार्मिक अड्डे—गिरजे, मंदिर और मस्जिदें—भी हैं। यह सब क़ाबूयाफ़्ता शासन और शासक-मंडल के लिये उनके दलालों अर्थात् पुरोहितों द्वारा, सरकार की छत्रच्छाया में बसनेवाले ग़रीबों को लूटनेवाले अमीरों की मदद से हुआ करता है। मूर्ख ग्रामीणों के दिमाग़ में जहाँ एक बार कोई बेवक़ूफ़ी घर कर गई, फिर मुशकिल से निकलती है। इन बेचारों में ज्ञान नहीं, विवेक नहीं, समझ नहीं, विद्या नहीं, खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र तक इनके पास नहीं। जो चाहे, इन्हें पंडित, मौलवी या पादरी बनकर, ठग सकता है, धोखे में डाल सकता और अपनी अर्थ-सिद्धि का साधन बना सकता है। पीढ़ियों से इन बेचारों का यही हाल है। सिखानेवाले धनिक, पुरोहित और राजकर्मचारियों में कोई भी ईश्वर को नहीं मानता; पर हरएक ईश्वर को मानने का ढोंग रचता है। मैं पूछता हूँ, कौन पंडित, मौलवी, पादरी, राजा-रईस और

सेठ-साहूकार ऐसा है, जो झूठ नहीं बोलता, फ़रेब नहीं करता और तमाम दुनिया की बदनामियों से पाक है; इस हालत में कोई चतुर मनुष्य कैसे यह मान सकता है कि लोग ईश्वर की हस्ती के क़ायल हैं, परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं। इसलिये ईश्वर कोई चीज़ नहीं है, सिवा इसके कि ग़रीबों के ठगने को ठगी का एक जाल है। यह जाल जितनी जल्दी तोड़ दिया जाय, उतना ही अच्छा। जूसेपमटज़ीनी और टॉमस पेन के सदृश मनुष्य-भक्तों ने भी इस मिथ्या कल्पना में पड़कर ठोकरें खाईं, तो दूसरे की क्या गिनती।

लेकिन दुःख तो इस बात का है कि इन देश और मनुष्य के भक्तों ने भी कोई ऐसा तर्क और युक्ति-युक्त ऐसा प्रमाण न दिया कि ईश्वर का अस्तित्व निर्विवाद-रूप से सिद्ध हो जाता। प्रो० फ़्लिंट ने अपनी 'एंटी इथिस्टिक-थ्योरीज़' नाम की एक पुस्तक में नए-पुराने, सभी अनीश्वरवादियों के तर्कों का उत्तर देने की कोशिश की है; लेकिन ईश्वर का अस्तित्व नहीं सिद्ध कर सके। मुझे दुःख है, न तो इस छोटे-से लेख में पेन और फ़्लिंट के लेखों को उद्धृत करके उत्तर देने का स्थान और समय है, और न पुस्तकें मेरे पास प्रस्तुत हैं। तो भी जो इस विषय में विवाद उठेगा, तो मैं दूसरी पुस्तक छपाकर अनेक प्रमाणों को संग्रह करने का प्रयत्न करूँगा।

इतना अवश्य कहूँगा कि ज्योतिष-शास्त्र का सविस्तर वर्णन करके यह कह देना कि यह सब ईश्वरीय चातुर्य का फल है, जैसा कि टॉमसपेन ने किया है, कोई तर्क नहीं। जो भद्र पुरुष ईश्वरीय पुस्तकों का अपौरुषेय ग्रंथ होना अस्वीकार करता हो, और उनके खंडन में तर्क और इतिहास से काम लेता हो, वही एक कल्पना-मात्र के आधार पर अपनी प्रतिज्ञा की सिद्धि मान ले, यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है। इसी तरह महात्मा मटज़ीनी ने भी अपने समय के एक अद्वितीय दार्शनिक होकर ईश्वर को सिद्ध करने में जो तर्क सामने रक्खा है, वह बहुत हास्यास्पद है। आप कहते हैं—"सार्वभौम और आदिम विचार, जिनका ग्रहण करना सदा शाश्वत समझा जाता है, सारे संसार के भाव और विश्वास मिथ्या एवं भ्रममूलक नहीं हो सकते।" यह तर्क अनेक प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने मेरे सामने पेश किया, लेकिन जो इसी का नाम तर्क और लॉजिक है, तो मैं कहूँगा, संसार में तर्क-शास्त्र का होना ही व्यर्थ है।

वेकुकिन ने ठीक ही कहा है कि जो तर्क की यही दशा है कि जो बात भूत और वर्तमान के सब लोगों ने ठीक मान ली है, और मानते हैं, उसे तुम भी मान लो, और कह दो कि 'ख़ुदा' है, और जो तुम नहीं मानते—'किम्, कस्मात् कारणात्' से काम लेते हो—ईश्वर के अस्तित्व में संदेह करते हो—तो तुम्हारा तर्क गया भाड़ में, तुम प्रत्यक्ष राक्षस हो, तो हमें भी मूर्खों की तरह बुद्धि को बिदाई देकर ठकुरसुहाती कहनी पड़ेगी। लेकिन कोई जवाँमर्द अपनी आत्मा के विरुद्ध किसी के भय से भद्दी बात को ठीक नहीं मान सकता। हाँ, हम यह ज़रूर मान लेंगे कि जो बातें अनंत काल से सबने मान रक्खी हैं, वे तर्क और विज्ञान-विरुद्ध कल्पनाएँ हैं। ऐसी भद्दी कल्पनाओं की जाँच-पड़ताल करना प्रत्येक नव-युवक का धर्म है। अंधों के अनुगतों का कल्याण इस संसार में असंभव है।

बहुत काल तक संसार पृथ्वी को चपटी मानता था, तो क्या हम आज भी उसे चपटी मान लेंगे? इसी तरह की हज़ारों बातें हैं, जिनको संसार अनादि काल से एक तरह पर मानता चला आता था। विज्ञान ने उन्हें झूठा सिद्ध कर दिया, और सचाई सामने रख दी, तो हमें सत्य को मानना ही पड़ा।

लोग पहले पानी को एक तत्त्व समझते थे, पर आज यह मानने को तैयार नहीं; क्योंकि हम जान गए हैं कि ऑक्सिजन और हाईड्रोजन नाम के दो वायव्य पदार्थों के योग से जल बना है। यदि हम आज समझ गए कि 'ख़ुदा' नाम का कोई पदार्थ न तो है, और न हो सकता है, तो हमारा काम है कि हम इस शब्द को अपने कोषों में से निकाल डालें, और धर्म की बेहूदगी से अपना पल्ला पाक करें। संसार में बेहूदगी, अन्याय और अत्याचार से ज़्यादा पुरानी चीज़ें और कोई भी नहीं। पहले लोग स्त्रियों को उनके पिता से छीनकर ले जाते थे। इस रीति का प्रमाण आज भी ब्याहों में पाया जाता है। लेकिन क्या आज भी कोई इस बात को पसंद करेगा? फिर ईश्वर को फ़िज़ूल पकड़कर बैठना कहाँ की बुद्धिमत्ता है?

बहुतेरे लोग कहते हैं—"प्रकृति और पुरुष भिन्न नहीं,

एक ही हैं । जैसे द्रव्य में शक्ति, मेंहदी के पत्ते में सुर्ख़ी । इसलिये ईश्वर है, और सर्वव्यापी है।" हज़रात, विना गुलाब के गुलाबी रंगत कहाँ ? जो यह कहें कि गुलाब भी है, और गुलाबीपन भी, इसी तरह ईश्वर भी है और प्रकृति भी ; प्रकृति जो शक्ति है, वही ईश्वर है, तो मैं कहूँगा—'ईश्वर' द्रव्यगत शक्ति का नाम है; वह पृथक् पूज्य पदार्थ नहीं, न वह न्यायशील ज्ञान का इतना गहरा गढ़ा है, जिसे हम नाप न सकें। ईश्वर यदि केवल गति, शक्ति, फ़ोर्स का एक पर्याय-मात्र है, तो रहने दो । इसके लिये लंबी-लंबी नमाज़ों और बड़ी-बड़ी उपासनाओं की क्या ज़रूरत है । बड़े-बड़े पोथों के पाठ, मंत्रों के जप, तिलक-माला और गप्प कथाओं से क्या लाभ ? विज्ञान पढ़ो, द्रव्य-गत ईश्वर की उपासना से नए-नए आविष्कारों में लग जाओ । बड़े-बड़े आविष्कर्ताओं को ही अवतार, नबी और वली समझो, उन्हीं की खोज की पुस्तकों को धर्म-पुस्तक मानो । संसार को अकारण धोका देने से क्या लाभ ?

"प्रत्यक्षवादी"

सामाजिक संगठन का भारतीय आदर्श

परस भूमि भारत की सभ्यता ने सामाजिक संगठन की उन्नति के उच्चतम शिखर पर अपनी विजय-वैजयंती चिरकाल तक फहराई। उस समय भूमंडल में सामाजिक संगठन के वैदिक आदर्श की दुंदुभी का निनाद समाज का पथ-प्रदर्शक होकर समस्त संसार के कर्ण-कुहरों को पवित्र करता था। परंतु जब समाज ने वैदिक आदर्श को स्वार्थ की गहरी खाई में डाल दिया, तब विश्व के व्योम-मंडल में जगह-जगह मानव-जाति के कंठ से आर्तनाद सुनाई देने लगा, और संपूर्ण भूमंडल में डार्विन के सिद्धांत "जिसकी लाठी उसकी भैंस" या "शक्ति ही स्वत्व है" के समवेदना-जनक सिद्धांतों का बोलबाला हो चला । पश्चिम में भिन्न-भिन्न प्रकार से अनेक महात्माओं ने समाज की समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया ; परंतु वैदिक आदर्श से च्युत होने के कारण उनकी तेजोमय जीवन-ज्योति भी व्याभिचार के उमड़ते हुए मेघों में सिर्फ़ अपनी चमक दिखलाकर निस्तेज हो गई । अशांति तथा असंतोष का साम्राज्य जारी रहा । प्रति दिन नए-नए आंदोलनों का जन्म होने लगा ।

पश्चिम में राज्यक्रांतियों और सामाजिक विप्लवों की भरमार हुई; श्रमजीवियों और पूँजीपतियों में मानसिक ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि भड़क उठी ; "जीवो जीवस्य जीवनम्" का सिद्धांत कार्य-रूप में परिणत किया जाने लगा ; सबल दुर्बलों पर अत्याचार करने लगे। आधुनिक मशीनरी ने उस अशांति में और भी हाथ बटाया । हस्त-निर्मित पदार्थों और गृह-शिल्प से लोग घृणा करने लगे। श्रम के महत्त्व को ताक में रखकर यंत्रों से ही प्रत्येक कार्य किया जाने लगा । श्रमजीवी लोग भी मशीनों ही के द्वारा अपनी जीविका चलाने लगे। तब श्रमजीवियों के परिश्रम ने पूँजीपतियों की पूँजी में सम्मिलित होकर सोने में सुगंध का काम किया, और पूँजीपतियों की पूँजी को कई गुना बढ़ाकर उनको सब प्रकार ऐश्वर्य-शाली बना दिया। पर बेचारे ग़रीब श्रमजीवियों को पेट भर भोजन भी न मिला । यह देखकर उन्होंने भी अपने-अपने संघ स्थापित किए, और उनके द्वारा नवीन-नवीन उपायों का तत्त्वान्वेषण किया जाने लगा। उन्नति की ओर उनका पग बढ़ा; परंतु दूसरी ओर पूँजीपति भी मौन-व्रत ही धारण किए नहीं बैठे रहे। उन्होंने भी श्रमजीवी-दल के संगठन को अपने संघों द्वारा नियम-विरुद्ध प्रमाणित कर दिया । इस कार्य ने फूस में चिनगारी का काम किया । दोनों दलों में परस्पर ईर्षा-द्वेष की अग्नि भड़क उठी । योरप के गगन-मंडल में घनघोर अशांति के बादलों ने उमड़-उमड़कर जगह-जगह पर बिजली गिराना शुरू कर दिया। इसी अशांति के युग में योरप के महायुद्ध ने पूँजीपतियों की पूँजी का दिवाला निकाल दिया, और बेचारे श्रमजीवियों को तो उस समय रोटी का एक टुकड़ा तक भी नसीब न हुआ । पूँजीपतियों के अत्याचार से दुखी होकर श्रमजीवी-संसार

पश्चिम की सामाजिक क्रांति

ने स्पष्ट रूप से पूँजीपतियों पर आक्रमण करने प्रारंभ किए। उन्होंने रूस में ज़ारशाही का अंत कर, पूँजीपतियों को नष्ट कर, सारा राज-काज अपने हाथ में ले लिया। इसी प्रकार पश्चिम के अन्य देशों में भी प्रतिदिन दंगों और हड़तालों की आवाज़ें कानों में गूँजने लगीं। चारों ओर अशांति-ही-अशांति दिखलाई पड़ने लगी। बलवान् दुर्बलों को सताने लगे। योरप में अंतरराष्ट्रीय अथवा भिन्न-भिन्न देशों की आंतरिक अशांति का मुख्य कारण यही है कि सबलों के अत्याचार दुर्बलों को सता रहे हैं। हर व्यक्ति में, हर समाज में अपनेको अधिक संपत्तिशाली एवं उच्च बनाने की अभिलाषा है। कुछ साम्य के अभिलाषियों ने हेग में शांति-परिषद् की स्थापना की। दुर्बल राष्ट्रों ने समझा, अब शक्तिशाली राष्ट्र स्वेच्छाचार न कर सकेंगे। आशा की इस उमंग में प्रसन्न होकर पाश्चात्य समाज के दुर्बल राष्ट्रों ने इस परिषद् में अपार उत्साह और घोर परिश्रम से कार्य किया। परंतु सब प्रयत्न विफल हुआ। योरप के गत महायुद्ध में सभी राष्ट्र इस परिषद् के सब मंतव्यों को एक ओर रखकर युद्ध में लग गए, और अंतर-जातीय नियमों का उल्लंघन कर चारों ओर से, प्रायः सब बड़े-बड़े राष्ट्रों ने मिलकर, रक्त की नदियाँ बहा दीं। निरीह राष्ट्रों को भी सम्मिलित कर लिया गया।

राष्ट्रसंघ के परिणाम

युद्ध के पश्चात् राष्ट्रसंघ का शिलान्यास हुआ। योरप के दुर्बल राष्ट्र भी नवजीवन का अनुभव करने लगे। पराधीन राष्ट्र समझने लगे कि अब तो स्वाधीनता की दुंदुभी बजेगी—दुर्बलों के दुःख दूर होंगे। परंतु यह सब निराशा और अनुत्साह में परिणत हो गया। दुर्बलों की दशा में परि-वर्तन होने के बदले राष्ट्रसंघ के परदे के भीतर शक्तिशाली राष्ट्रों ने अन्याय करना आरंभ कर दिया। उन्होंने ऐसी गाँठें लगा दी हैं, जिनका दो-एक शताब्दी तक खुलना कठिन ही नहीं, असंभव है। देशों के मानचित्रों का अनुशीलन करने से भी आभ्यंतरिक अशांति की यही दशा प्रतीत होती है। वर्तमान मिसर का उदाहरण अन्याय का प्रत्यक्ष निदर्शन है। राष्ट्रसंघ के कानों पर मिसर के लिये जूँ नहीं रेंगी। बलवान् निर्बलों पर मनमाना अत्याचार करते हो आ रहे हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपनी उन्नति करने का भी अधिकार नहीं है। पश्चिम की अशांति का मूल कारण यही है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि कोई भी मनुष्य योरप और पश्चिम के अन्य देशों में सच्ची शांति का अनुभव नहीं कर रहा है।

प्रजा-तंत्र शासनवाले तथा प्रतिनिधि-प्रथा के अनन्य भक्त देशों की भी यही दशा है। पश्चिम के समाज-शास्त्री आभ्यंतरिक असंतोष और अंतरराष्ट्रीय अशांति, इन दो समस्याओं के हल करने की चिंता में चूर हैं। इन्हीं को दूर करने के लिये अनेक आंदोलनों का जन्म हुआ है।

बोलशेविज़्म और साम्यवाद

बोलशेविज़्म और साम्यवाद का प्रादुर्भाव भी इसीलिये हुआ; हेग की परिषद् और राष्ट्रसंघ का भी जन्म इसीलिये हुआ। परंतु सफलता की ध्वनि कहीं से भी नहीं सुनाई देती। चारों ओर अशांति की ही गूँज है। साम्य-वाद का आंदोलन भी असफलता के गहरे कूप में ग़ोता लगाता प्रतीत होता है। कारण स्पष्ट है। मनुष्य का स्वभाव ही प्राकृतिक असमानता पर निर्द्धारित है। मनुष्य जब सुख एवं संपत्ति का अनुभव करने लगता है, तब उसके अंदर स्वार्थ की मात्रा अधिक हो जाती है। इस प्रकार साम्यवादी भी धनियों की कोटि में प्रविष्ट होते और न्याय के सिद्धांतों का विरोध करते देखे जाते हैं। मि० मैकडॉनेल्ड का मंत्रिमंडल इसका उदाहरण है। भारत के लिये इँगलैंड का प्रत्येक दल बराबर है। हाँ, साम्य-वाद के सिद्धांत समाज-सुधार में कुछ सहायक कहे जा सकते हैं; पर मानव-जीवन को स्वर्ग बनाने की शक्ति नहीं रखते। उनसे राम-राज्य स्थापित होने की आशा रखना व्यर्थ ही है। बोलशेविज़्म की भी यही दशा है। वह भी पूर्णरूप से अशांति मिटाने में सर्वथा असमर्थ है। अस्तु, योरप के समाज-शास्त्री इन सब समस्याओं को हल करने के लिये चिंतित हो रहे हैं। समता एवं न्याय-पूर्वक शांति का राज्य स्थापन करने और श्रम तथा पूँजी की कलहाग्नि को शांत करने के अनेक उपाय किए जाते हैं। अब हम यह बतलाते हैं कि अंतरराष्ट्रीय अशांति तथा आभ्यंतरिक असंतोष दूर करके किस तरह रक्त की नदियों का बहना बंद किया जा सकता है।

वैदिक वर्ण-व्यवस्था

यदि इन सब समस्याओं को कोई हल कर सकता है, तो भारत की प्राचीन सभ्यता और वैदिक वर्ण-व्यवस्था ही। अंतरराष्ट्रीय अशांति तथा आभ्यंतरिक असंतोष की समस्याओं का हल

यहीं मिल सकता है। सबसे प्रथम वर्ण व्यवस्था की यह सबसे बड़ी उपयोगिता है कि उसके प्रत्येक अंग में सहयोग हो—सबसे परस्पर संबंध रखते हुए भी अपने-अपने कर्तव्य पालन करने में स्वतंत्रता हो। व्यक्ति की तरह समाज में भी उन-उन गुणों की आवश्यकता है, जिनसे व्यक्ति का जीवन आदर्श कहलाता है। यही वेद का आदेश है। वेद का एक मंत्र है—

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ;
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांॅ शूद्रोअजायत।"

अर्थात् व्यक्ति की तरह समाज में भी ज्ञानमयी व्यवस्थापक शक्ति, बलवती रक्षक शक्ति, संपत्तिशालिनी धनाढ्य पोषक शक्ति और सेवा करने के लिये पाद-रूप सेवक-शक्ति की आवश्यकता है। इसी प्रकार से समाज सुनियमित एवं सुसंगठित हो सकता है। समाज में भी प्रत्येक अवयव का निर्माण इसी प्रकार होना चाहिए, जैसे मानव-शरीर में शरीर के लिये भिन्न-भिन्न अंग उपयोगी होते हैं। तभी समाज का प्रत्येक अंग कार्योपयोगी होकर परस्पर संगठन में तत्पर रहेगा। इस प्रकार जो समाज का संगठन होगा, वही आदर्श कहा जा सकता है। और, वह वैदिक वर्ण-व्यवस्था के सिवा और कुछ नहीं है। जो वर्ण-शब्द स्वीकार करने के अर्थ में बना है, उसी से स्पष्ट प्रतीत होता है कि व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार कर्मों को स्वीकार करे। समाज के इस संगठन में किसी प्रकार श्रम-विभाग में झगड़ा नहीं हो सकता। परंतु वह संगठन जन्म से जाति के स्थान पर गुण तथा कर्म पर निर्धारित होना चाहिए।

ब्राह्मण के कर्तव्य

इनमें सबसे पहला वर्ण ब्राह्मण है, जिसका कर्तव्य मनु भगवान् के शब्दों में इस प्रकार है—

"अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ;
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।"

अर्थात् ब्राह्मण शिक्षक के रूप में समाज की सेवा करता है। उसी का दूसरा समूह व्यवस्थापक व न्यायाधीश के रूप में समाज की सेवा करता देखा जाता है, जैसा कि मनु० अध्याय ८, श्लोक ६-१० से स्पष्ट है। उसमें लिखा है कि "राजा एक ब्राह्मण को अन्य तीन ब्राह्मणों के साथ अभियोगों के देखने के लिये नियुक्त करे।" यह सभा ब्रह्मा की सभा कहलाती थी। इस प्रकार ब्राह्मण लोग व्यवस्थापक का काम करते थे। याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियों के अनुशीलन से पता चलता है कि "जिन अभियोगों का निपटारा न होता हो, उनका ब्राह्मण-सभा की सम्मत्यनुसार न्याय कर देना चाहिए।" परंतु उनके इतने उच्च श्रेणी के होने पर भी यह आवश्यक था कि वे लोकैषणा, वित्तैषणा आदि से रहित होकर संचित ज्ञान के शिक्षक और राज्य के व्यवस्थापक होकर समाज की सेवा करें, जैसा कि मनु का आदेश है—

"प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ;
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति।"

धन की इच्छा करने से ब्राह्मण का तेज नष्ट हो जाता है। ब्राह्मण-वर्ण सबसे बड़ा होकर भी शारीरिक शक्ति और धन, दोनों से रहित, अर्थात् भोगमय जीवन से कोसों दूर, है। ब्राह्मण चाणक्य इतने बड़े राज्य का व्यवस्थापक था; फिर भी उसके गृह का वर्णन महाकवि विशाखदत्त ने कैसा किया है—

"उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां
वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः ;
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि-
र्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्।"

अर्थात् एक ओर गोबर के कंडे फोड़ने का पत्थर पड़ा है, दूसरी तरफ़ कुशाओं का समूह है, तथा एक ओर कुटी की झुकी हुई छत पर लकड़ियाँ सूख रही हैं। यही चंद्रगुप्त को राज-सिंहासन पर बिठानेवाले ब्राह्मण चाणक्य की विभूति है!

क्षत्रिय के कर्तव्य

इसी प्रकार द्वितीय वर्ण क्षत्रिय है। यह वर्ण समाज को बाह्य व आभ्यंतरिक विप्लवों से बचाता हुआ प्रबंध का अधिकारी एवं समाज का बाहु-स्थानीय था। वशिष्ठ-स्मृति के अनुसार इसका भी नियंत्रण ब्राह्मणों के अधीन था, अर्थात् व्यवस्थापक-विभाग का काम ब्राह्मणों का, और कार्यकारिणी विभाग का काम क्षत्रिय का था। ब्राह्मण नियमों के निर्माता और क्षत्रिय उनका पालन करानेवाले थे। तब तो शासक-वर्ग अपनी इच्छा के अनुकूल कुछ भी न कर सकता था; क्योंकि वह न्याय और व्यवस्था के अधिकारों से वंचित था। इसीलिये देश में अशांति भी देखने को न मिलती थी।

तीसरा वर्ण वैश्य था, जिसका कर्तव्य था—

"पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ;
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ।"

अर्थात् कृषक के रूप में भूमि से, पशुपालक के रूप

वैश्य के कर्तव्य

में पशुओं से तथा वणिक् के रूप में वाणिज्य और ब्याज से संपत्ति को उत्पन्न करना, ये वैश्य के कर्म हैं । परंतु वह संपत्ति केवल उसी की न थी ; मनु भगवान् के

"दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेवप्रयत्नतः ।"

इस कथन के अनुसार संपूर्ण समाज की थी। वह उसे सबमें विभक्त करता था। इस प्रकार उसकी संपत्ति जातीय थी। अयोग्यों को उससे छीनने का अधिकार न था । जिस प्रकार उदर का अंश भिन्न-भिन्न विभागों में जाकर शरीर का पोषण करता है, उसी प्रकार यह वर्ण समाज के भिन्न-भिन्न विभागों को संपत्ति देकर सबका पोषण करता था ।

चौथा वर्ण शूद्र था, जो समाज में ज्ञान, बल, और

शूद्र के कर्तव्य

धर्म न प्राप्त कर सकने के कारण उक्त तीनों वर्णों का सेवक ही था। इस प्रकार भारत में, प्राचीन काल में, वैदिक आदर्श के सामाजिक संगठन से उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती थी। समाज सुख-शांति से ऐश्वर्य का उपभोग करता था। परंतु उस समय भारत, योरप की तरह, प्रकृतिवाद के आधिक्य और धन के गर्व से परिपूर्ण नहीं था । सर्वत्र भर्तृहरि महाराज की यह उक्ति चरितार्थ होती थी—

"अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मावमंस्थाः
तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि ;
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां
न भवति विसतन्तुर्वारिणं वारणानाम् ।"

परंतु अब संपूर्ण व्यवस्था के बिगड़ जाने से वर्तमान काल में भारत की बड़ी बुरी दशा है। जो पुष्प विकसित होते समय जितना सौरभमय तथा सौंदर्य-संपन्न होता है, वह सड़ने पर उतना ही दुर्गंधि एवं कुरूप हो जाता है । प्राचीन काल में योरप के सभ्य देशों में भी इस संगठन की हवा पहुँच चुकी थी ।

भारत में जिस प्रकार वैदिक काल का आदर्श संगठन

प्लेटो की सामाजिक व्यवस्था

था, उसी प्रकार एथेंस में, प्राचीन काल में, प्लेटो ने भी आदर्श संगठन के लिये उपदेश दिया है, जैसा उसके विरचित 'प्रजातंत्र' से विदित होता है । सामाजिक संगठन को उत्तम बताने के लिये उसने समाज को तीन भागों में विभक्त किया है—(१) शासक-वर्ग, (२) योद्धृ-वर्ग और (३) उत्पादक-वर्ग । शासक-वर्ग का कार्य उसने यह बतलाया है कि वह प्रजा के लिये नियमों की व्यवस्था करे, तथा उन नियमों का पालन दूसरा वर्ग करावे। यही व्यवस्था भारत में ब्राह्मण के लिये भी निर्द्धारित है । दूसरा योद्धृ-वर्ग समाज के अंदर बुरे व्यसन और दुष्ट कर्म करनेवालों को दंड देकर बाहरी आक्रमणों से समाज की रक्षा करे । यही कार्य भारत में क्षत्रियों का है । तीसरा उत्पादक-वर्ग है, जो समाज के लिये संपत्ति उत्पन्न करके कृषि आदि के द्वारा समाज में सुख एवं शांति का साम्राज्य स्थापित करे । इस प्रकार प्लेटो ने भी भारत ही की तरह आदर्श श्रम-विभाग किया था । उसकी व्यवस्था का आधार भारत की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था है । भारत में इस संगठन की नींव प्राचीन आश्रम-मर्यादा पर निर्द्धारित की गई थी । व्यक्तियों के आरंभिक जीवन से ही इसका अभ्यास कराया जाता था, समता के भाव उनके अंदर कूट-कूटकर भर दिए जाते थे। योरप और अमेरिका के संगठनों की असफलता का मुख्य कारण यही है कि उनका आधार उत्तम नहीं है । भारत म गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली का स्थान सर्वोच्च था । गुरुकुलों में राजा-रंक, धनी-निर्द्धन, सबके पुत्रों के साथ समान व्यवहार किया जाता था । अमीर-ग़रीब के भाव उनके अंदर पैदा ही न हो पाते थे । इस प्रकार कर्म-क्षेत्र में भी कोई किसी को ऊँच-नीच नहीं समझता था। ये वे भाव थे, जो न तो अंतरराष्ट्रीय नियमों से और न राजसभाओं से पैदा हो सकते हैं और न धन के गर्व में मस्त होने पर मिट ही सकते हैं । इसके लिये सुदामा और श्रीकृष्ण का उदाहरण प्रत्यक्ष है । इन्हीं सिद्धांतों पर पश्चिम की सब समस्याएँ हल हो सकती हैं । यह संगठन इतना आदर्श एवं वैज्ञानिक है कि इसमें अशांति या असंतोष का लेश भी इसमें नहीं ।

इस परिवर्तन के युग में पश्चिम में अशांति के

उपसंहार

साम्राज्य से सब ऊब गए हैं । चारों ओर सामाजिक संगठन की समस्याओं को हल करने के लिये भिन्न-भिन्न उपायों का अवलंबन किया जा रहा है । पश्चिम के समाज-शास्त्रियों में सतत परिश्रम की शक्ति तथा अपार उत्साह होने पर भी सफलता की झलक और

आशा का संचार कहीं नहीं दिखलाई देता। जाति-जाति में, देश-देश में कलहाग्नि की जलती हुई ज्वाला अपनी प्रखर उष्णता से मानव-हृदयों को जला रही है। बेचारे ग़रीबों की करुणा-जनक आहें पश्चिम के गगन मंडल को गुँजा रही हैं। त्राहि-त्राहि की आर्त-ध्वनि कर्णकुहरों को विदीर्ण कर रही है। श्वास-कास के निनादों का नाद हो रहा है। नृत्य है दरिद्रों की तड़फड़ाहट का, और हास्य है अमीरों की शान का। युद्ध है समाज का, धन का, मान का, धनियों और निर्द्धनों का। जिधर देखिए, उन्नति की भूल में, सभ्यता के आवरण में, विज्ञान की कुंजी में, सर्वत्र श्रमजीवियों का रक्त देख पड़ता है। सब समाज-शास्त्री अशांति की ज्वाला बुझाने के लिये आदर्श सामाजिक संगठन की चिंता में व्यग्र हैं। पर प्रकृतिवाद के मद में मस्त योरप को उस आदर्श संगठन का पाठ आध्यात्मिकतावाद के गुरु भारत से पढ़ना होगा। अंत में मनु भगवान् की—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ;
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।"

यही उक्ति चरितार्थ होगी, और प्राचीन भारत की सभ्यता का अखिल भू-मंडल में राज्य होगा।

बलवीर

"पृथिवी-प्रदक्षिणा"

(समालोचना)

मनुष्य एक प्रकार की विशेष चेतना से युक्त है, जिसके कारण वह इतर प्राणियों से भिन्न है। प्राणि-मात्र एक स्थान पर स्थिर रहना नहीं चाहते। यह स्वाभाविक है। स्वतंत्र पशु-पक्षी भी स्थान परिवर्तन करते हैं। पर उनमें उस शक्ति का अभाव है, जो अनुभव को दूसरों के समक्ष रखती है। किंतु जिज्ञासा उनमें भी है, यह सिद्धांत बिलकुल मनोविज्ञानिक है। और, मनुष्य-प्राणी इसीलिये इतर समस्त प्राणियों से श्रेष्ठ है कि उसमें जिज्ञासा है, चेतना है, एवं उसे वे साधन भी प्राप्त हैं, अथवा यों कहा जाय कि उसने अपने लिये वे साधन उत्पन्न कर लिए हैं, जिनके द्वारा वह न केवल अपने अनुभव को, प्रत्युत दूसरों के अनुभवों को भी लोक-हित के लिये छोड़ जाता है। यात्रा का तत्त्व भी मनुष्य के समाज-प्रिय होने, जिज्ञासा और चेतना-शक्ति से संयुक्त होने में अंतर्निहित है। उदाहरणार्थ उस बालक को लीजिए, जो घुटनों के बल रेंग सकता हो। वह जब थोड़ी दूर पर कोई ऐसा पदार्थ देखता है, जिसकी ओर उसकी चेतना उसे आकृष्ट करती है, तो वह उसी ओर लपकता है। उसके उस समय यह ज्ञान नहीं रहता कि अपने अनुभव को दूसरों को बतला सके; अन्यथा हमें यह भी देखने और सुनने, तथा उसी की पुस्तकों में पढ़ने को मिल जाता कि वह अपने सम-वयस्क शिशुओं को अपने अनुभव बतलाता है। मनुष्य के प्रौढ़ होने के साथ-साथ यह भावना भी उसके प्रौढ़त्व को प्राप्त होती गई, और यही आगे चलकर विचरण, यात्रा और प्रदक्षिणा के रूप में परिवर्तित हो गई। अपनी बुद्धि के अनुसार मनुष्य-समाज के हितचिंतकों ने इन यात्राओं, विचरणों और प्रदक्षिणाओं के सुलभ साधन तैयार कर लिए। उसने इन साधनों के अतिरिक्त वे साधन भी उपलब्ध किए, जिनके द्वारा वह अपने इन दिशाओं के अनुभवों को समाज के सामने रख सके। यात्रा का मनोविज्ञानिक विश्लेषण इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। उसका महत्त्व तो उसकी जन्म-दात्री भावना के साथ ही उत्पन्न हुआ है। आज यात्रा का महत्त्व इस कोटि तक पहुँच चुका है, अथवा माना जा रहा है कि पाश्चात्य देशों के जिज्ञासु पैदल और बाइसिकिल पर संसार की प्रदक्षिणा करते हैं।

पौराणिक इतिहास देखने से जान पड़ता है कि हिंदू एवं बौद्ध यात्री-संन्यासी पैदल परिभ्रमण करते थे, एवं राजे-महाराजे दिग्विजय के बहाने पृथ्वी की प्रदक्षिणा किया करते थे। अंतर अब दोनों में केवल यह है कि उस समय यात्रा के कुछ दूसरे साधन थे, और इस समय कुछ दूसरे हैं। किंतु उद्देश्य दोनों का एक है, अर्थात् जिज्ञासा की पूर्ति। और, चाहे कारणों में अंतर भी रहता आया हो; पर उद्देश्य में कदापि अंतर नहीं रहा। जिन जिज्ञासुओं में लोक-हित की कुछ भावना थी, उन्होंने साधनों के अनुसार अपनी यात्राओं का वर्णन भी समय-समय पर कर दिया। हमें आज भी बहुत-से ऐसे प्राचीन

शिला-लेख और स्तंभ मिलते हैं, जिनके संबंध में पुरातत्त्व-वेत्ता यह कहते हैं कि अमुक राजा की अपनी यात्रा अथवा दिग्विजय के समय वह खुदवाया गया था। अस्तु, यह सब एक प्राचीन परंपरा को जीवित रखने के उद्देश्य से किया जाता था। इतिहास का क्रमागत गौरव इस बात का साक्षी है। संसार का अस्तित्व जब तक रहेगा, मनुष्य-जाति में जब तक यह क्षमता रहेगी कि वह अपने पूर्ववर्ती लोगों के अनुभवों के ज्ञान का लाभ उठा सके, एवं परवर्ती समाज को लाभ पहुँचा सके, तब तक यात्रा-विवरणों का विशेष महत्त्व रहेगा।

प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूप हैं—जो बात हमें भारतवर्ष में देखने में नहीं आती, वह अमेरिका में मौजूद है। जो अमेरिका में नहीं, वह आस्ट्रेलिया में है, और जो आस्ट्रेलिया में भी नहीं, वह भारतवर्ष ही में मौजूद है। उसकी लीला अनंत है। जो पशु-पक्षी भारत में किसी एक रूप-रंग, आकार-परिमाण के देखने में आते हैं, वे ही अन्य देशों में दूसरे रूप-रंग, एवं आकार-परिमाण के। इसी प्रकार और भी प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक रचनाएँ हैं। आख़िर इन सबका ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा जिनमें हो, वे इसकी पूर्ति किस प्रकार करें? यदि वे द्रव्य-विहीन हैं—अन्य साधनों से भी वंचित हैं, तो और भी कठिनाई है। ऐसे लोगों के लिये भिन्न-भिन्न देश, समाज, जल-वायु, सभ्यता, प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक शोभा एवं अन्य कौतूहलप्रद बातों का परिचय देने में यात्रा-विवरण बहुत सहायक होते हैं।

सुदूर देशों की बात तो दूर रही, किसी देश-विशेष के दूरवर्ती प्रांतों के ही निवासियों की सभ्यता, रहन-सहन सामाजिक व्यवहार, यहाँ तक कि बोली और भाषा तक में अंतर आ जाता है। क्या यह आवश्यक नहीं कि भारत के निवासी भी यथासाध्य मनुष्य-समाज का परिचय प्राप्त करें? पारस्परिक परिचय से मनुष्य-जीवन में कुछ सहायता मिलती है, और उसे प्राप्त करना मानव-धर्म नहीं, समाज-धर्म है। यही मत, सारांश में, "पृथिवी-प्रदक्षिणा" के लेखक का भी है। पुस्तक के लेखक का मत और उसकी हार्दिक इच्छा निम्न-लिखित शब्दों में इस प्रकार है—

"प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों के दर्शन से मनोविकास
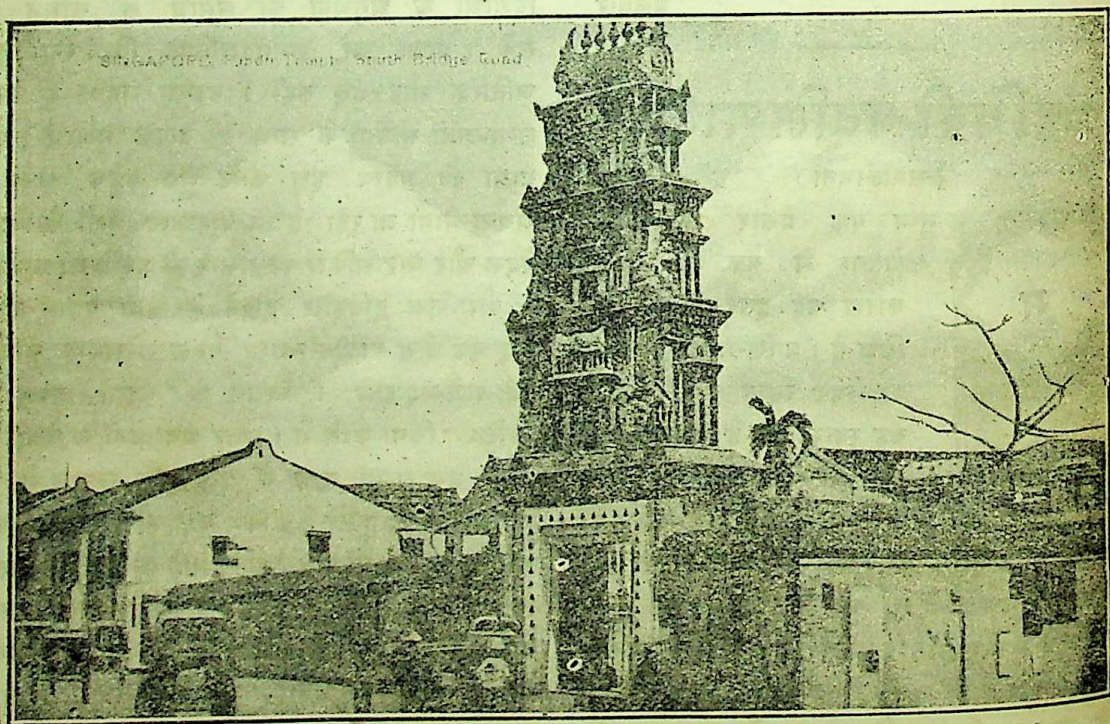
सिंगापुर में हिंदू-मंदिर

में कितनी सहायता मिलती है, कहना दुस्तर है। पाश्चात्य सभ्यता व गौरव में यह देश-विदेश-भ्रमण बहुत सहायक हुआ है। मेरी यह बड़ी इच्छा है कि पूर्वी देश-निवासी भी दिन-प्रतिदिन अधिक-अधिक संख्या में देश-विदेश की यात्रा करने निकलें। हिंदुओं के जीवन में देशाटन का बड़ा भाग है, और वह कर्तव्य भी समझा जाता है। यदि यही भाव भारत की चहारदीवारी के बाहर भी भारतवासियों को ले जावे, तो क्या ही अच्छा हो।"

चौक में (मिश्र) पानी पिलानेवाला

यह यथार्थ बात है कि हिंदुओं के जीवन में देशाटन का बड़ा भाग रहा है, और वह कर्तव्य भी समझा जाता रहा है। यदि ऐसा न होता, तो संस्कृत के नीतिसंग्रहों में "देशाटनं पंडितमित्रता च वारांगनाराजसभाप्रवेशः" इत्यादि वाक्य देखने में न आते। आख़िर साहित्य समाज का ही प्रतिबिंब तो है। इससे यह जान पड़ता है कि हिंदुओं की सभ्यता में देशाटन को विशेष महत्त्व दिया गया है। किंतु इससे भी अधिक हिंदुओं की जीवन-चर्या इस मत का समर्थन करती है। 'संन्यासी'-शब्द और संन्यास-आश्रम से ही इसकी पुष्टि हो जाती है। इनका यह कर्तव्य था कि ये एक स्थान पर न रहें, अर्थात् विचरते रहें। किंतु लेखक के उपर्युक्त उद्धृत मत के अंतिम वाक्य से हम सहमत नहीं। हमारा विश्वास है कि प्राचीन काल में भी भारतवासी विदेशों का भ्रमण करते थे। पौराणिक राजों के दिग्विजय तथा व्यापार-विनिमय की योजना इसका प्रमाण है। व्यापारिक क्रांतियों के इतिहास हमें बतलाते हैं कि भारत के व्यापारी सुदूर देशों में आया-जाया करते थे। महाभारत के समय विडालाक्ष आदि राजों का युद्ध में भाग लेने के लिये आना भी इसका प्रमाण है कि उस समय भारतवर्ष और अन्य देशों में परस्पर मैत्री, सहानुभूति एवं रोटी-बेटी का संबंध भी था। हाँ, यह संभव है कि उस समय उनके पास अपने विवरणों को विस्तृत रूप में उपस्थित करने के साधन न रहे हों। इसलिये, अथवा उस समय अन्य किसी कारण-वश, उन्होंने अपने यात्रा-विवरण नहीं दिए। पर उस समय की और आज की परिस्थिति एवं सभ्यता में भी तो अंतर है। इसीलिये कदाचित् गुप्तजी ने भारतवासियों के भारत की चहारदीवारी के बाहर जाने की इच्छा प्रकट की है।

लगभग दस वर्ष पूर्व, जब 'मर्यादा' पत्रिका प्रयाग से निकलती थी, गुप्तजी के कुछ लेख विदेशों के संबंध में निकले थे। हमारे लेख भी उन दिनों उसी में निकले, और लेखक का हासयत में हम एक दूसरे से परिचित हुए थे। हमारे चित्त में तभी यह इच्छा उत्पन्न हुई थी कि गुप्तजी का यात्रा का विवरण यदि पुस्तका-

कार निकले, तो बड़ा अच्छा हो। हर्ष की बात है कि हमारी उस समय की कल्पना से भी अधिक सुंदर संस्करण उनकी यात्रा का निकला। हिंदी-संसार के लिये तो वास्तव में यह अनूठी चीज़ है। अब तक कोई पुस्तक इस कोटि की, इस श्रेणी की, हिंदी-संसार में नहीं थी। गुप्तजी ने बहुत अच्छी पुस्तक हिंदी-संसार को भेंट की है। हिंदी में श्रीयुत साधुचरणप्रसाद के 'भारत-भ्रमण' के ५ भाग मौजूद हैं, तथा 'दुनिया की सैर' एवं स्वामी सत्यदेवजी की भ्रमण-संबंधी पुस्तकें आदि और भी दो-एक पुस्तकें हैं, जो मौलिक कही जा सकती हैं। पर गुप्तजी की 'पृथिवी-प्रदक्षिणा' और इनमें बहुत अंतर है। एक तो यह कि वे एकांगी हैं; दूसरे यह कि वे केवल चित्र-विहीन वर्णन हैं। गुप्तजी की पुस्तक चित्रों और सर्वांगीणता की दृष्टि से उनसे कहीं अच्छी है। सामयिकता का भी इसमें काफ़ी समावेश है। हमारी धारणा है कि यात्रा-विवरण यदि सचित्र न हों, तो वे अधूरे रह जाते हैं। किंतु इसके साथ-साथ हमें यह भी कहना पड़ता है कि विषय की दृष्टि से जिस खोज एवं रोचकता के साथ भारत-भ्रमण लिखा गया है, उसका पृथिवी-प्रदक्षिणा में अभाव है। पृथिवी-प्रदक्षिणा में जो कुछ रोचकता है, वह उसके विदेश-वर्णन के कारण, वर्णन-शैली के कारण नहीं ; और नवीनता में रोचकता का होना स्वाभाविक ही है। फिर भी, हम यही कहेंगे कि विवरण की अपेक्षा चित्र ही 'पृथिवी-प्रदक्षिणा' के गौरव को बढ़ाते हैं। इस पुस्तक में मानचित्र, रंगीन तथा सादे, सब मिलाकर २६४ चित्र हैं। इतने अधिक चित्रों से सुसज्जित, दूसरी कोई भी पुस्तक आज तक हिंदी में नहीं निकली। चित्र भी आकर्षक एवं कौतूहलवर्द्धक हैं; किंतु शोक है कि उनमें ऐतिहासिक खोज का अभाव है। यदि पर्याप्त ऐतिहासिक खोज के साथ कोई चित्र सामने आता है, तो पाठक पर उसका अधिक प्रभाव पड़ता है, और वह आवश्यक एवं अपेक्षित भी तो है।

पुस्तक में सब मिलाकर, अलग छपे हुए चित्रों और मानचित्रों को छोड़कर, ४१० पृष्ठ हैं। बड़े, अच्छे, चिकने और मोटे काग़ज़ पर छपी है। छपाई तथा प्रूफ़ के ख़याल से भी सुंदर एवं शुद्ध है। काशी के ज्ञानमंडल-कार्यालय द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक में एक बड़ी भारी विशेषता यह है कि इतनी सामग्री होते हुए भी यह एक प्रकार से सस्ती है। सस्ती इसलिये कि एक तो यह स्थायी साहित्य में अपना ख़ास स्थान रखती है, दूसरे १५) में पृथ्वी की पूरी, सरसरी और नक़ली ही सही, सैर करा देती है। इससे कम ख़र्च में कदाचित् ही कोई और पृथिवी की प्रदक्षिणा कर लेने का उपाय हो। पर हमारी समझ में पुस्तक इससे भी अधिक सस्ती बनाई जा सकती थी। संभव है, सस्ती होने से पुस्तक का प्रचार भी अधिक होता, और गुप्तजी के उद्देश्य की पूर्ति होती—उनका 'भारत की चहारदीवारी' से बाहर जाने का संदेश दूर-दूर तक पहुँचता, जो समयानुसार पाठकों में उनकी मनोनीत आकांक्षा को उत्पन्न करता।

बारात के समय की मिश्री पालकी

बाबू शिवप्रसाद गुप्त के द्वारा हिंदी माता की अच्छी एवं प्रशंसनीय सेवा हो रही है। वह देश के उन इने-गिने धनी-मानी सपूतों में हैं, जिनके द्रव्य का सदुपयोग भूखे समाज, देश और साहित्य के लिये होता है, जिनका पैसा
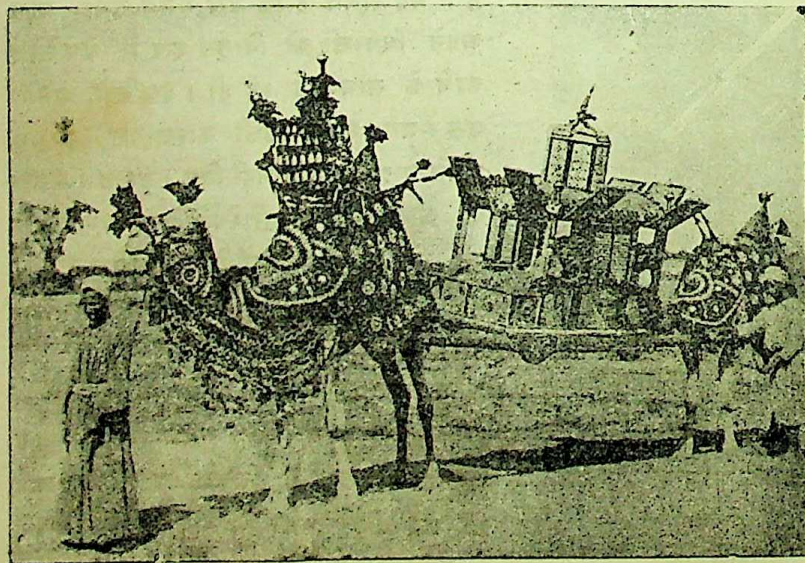
व्यभिचार और कुमार्ग में नहीं जाता। हमें उन पर गर्व है। गुप्तजी ने हज़ारों रुपए देश के लिये ख़र्च किए होंगे, हज़ारों अपने विदेश-प्रवास में ख़र्च किए होंगे। फिर क्या थोड़ी-सी और उदारता इस पुस्तक के प्रति, जिसको उन्होंने अपनी 'सांसारिक यात्रा की सहचरी' को सस्नेह भेंट किया है, नहीं दिखाई जा सकती थी! गुप्तजी कृपा कर इसका कुछ दूसरा अर्थ न समझें। फिर मानचित्र और तसवीरें भी तो, जिनके लिये ४५००) ख़र्च करने पड़े हैं, अंत को उनकी ही संपत्ति है, जो दूसरे संस्करण में भी काम में लाई जा सकती है। ऐसे उत्तम और कौतूहल-वर्द्धक साहित्य को सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर देना हमारी दृष्टि में कला, अर्थ-शास्त्र, व्यापार, साहित्य तथा समाज, सभी दृष्टियों से अच्छा होता है। इस पुस्तक की एक हज़ार प्रतियों के प्रकाशन में केवल ६००) संशोधन और संपादन-व्यय के निमित्त दिया गया है! अवश्य ही यह एक मार्के की बात है, और उस समय हिंदी-संसार की मनोवृत्ति का अच्छा ख़ाका खींचती है, जब जबलपुर की 'शारदा-पुस्तकमाला' की शुरू की कुछ पुस्तकों पर किए गए ख़र्च की इससे तुलना की जाती है। शारदा-पुस्तक-माला की कुछ पुस्तकों में कर्मचारियों का वेतन इतना अधिक था कि उतना कदाचित् लेखकों के पुरस्कार और छपाई आदि में भी ख़र्च न होता था! हमारा अनुमान है कि पृथिवी-प्रदक्षिणा के दूसरे संस्करण में एक तो यों ही पुस्तक का मूल्य कम हो जायगा; दूसरे गुप्तजी उसका मूल्य अधिक-से-अधिक कम करने का ख़याल रक्खेंगे। सस्ता साहित्य देना और लेखक और कवियों के लिये यथासाध्य सुविधाएँ करना ही वास्तव में साहित्य द्वारा समाज की सेवा करने का मुख्य मार्ग है।

अब हम पुस्तक के अंतरंग में प्रवेश करते हैं—नहीं, पुस्तक की भूमिका के लेखक श्रद्धेय बाबू भगवान्दासजी के शब्दों में "इस पुस्तक-रूपी रथ पर सवार होकर शिवप्रसादजी के साथ-साथ पृथिवी-प्रदक्षिणा प्रारंभ करते हैं।" इच्छा होती है कि "वर्तमान पृथ्वी-मंडल के मुख्य-मुख्य देशों के प्राकृतिक दृश्यों, वहाँ के मनुष्यों के रहन-सहन के प्रकारों तथा शिक्षा, रक्षा एवं जीविका-संबंधी संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं के गुण-दोषों का ज्ञान", स्वयं प्राप्त करें, और पाठकों को भी हमारे द्वारा उसका आभास मिल जाय; किंतु कुछ भय लगता है। भारतवासी भी रॉबिंसन क्रूसो की तरह जिज्ञासु और कोलंबस की तरह खोजी हैं, इसलिये हमारे भय का कारण यह न समझना चाहिए कि नवीन वस्तुओं को देखकर परिवर्तन के भय से हम शंकित हैं। बात यह है कि जिस पृथिवी की प्रदक्षिणा
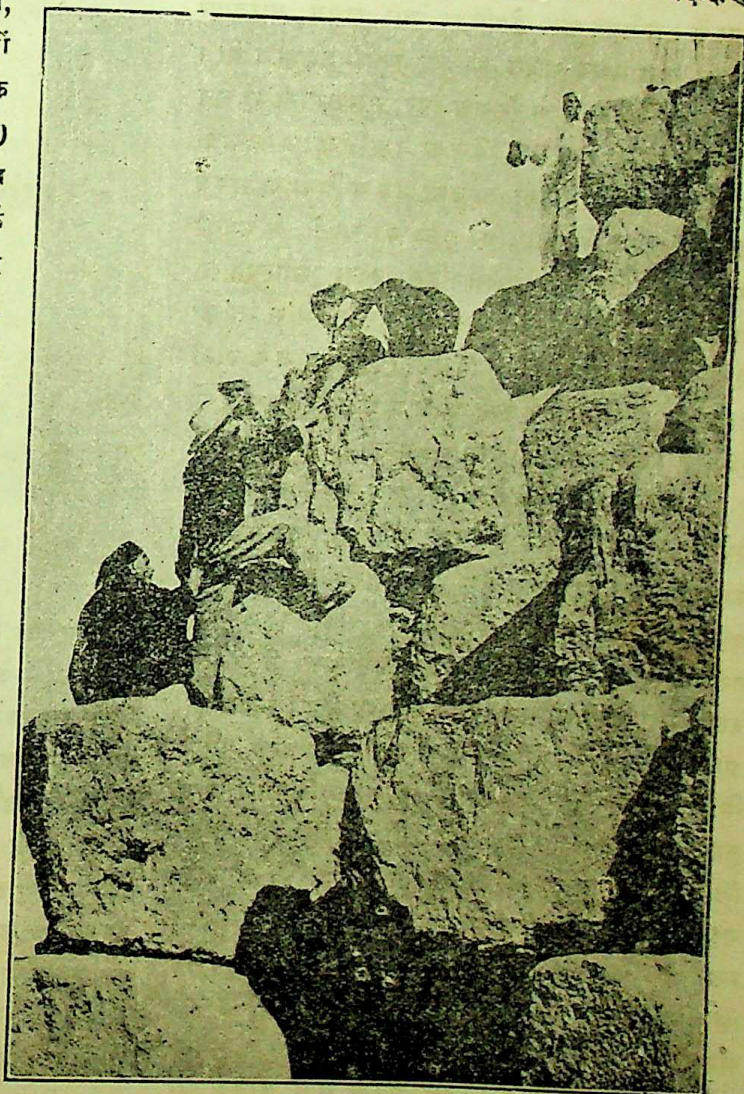
मिश्र का पाषाण स्तूप (Pyraund)

गुप्तजी ने सब साधनों से युक्त होकर २१ महीने में की, और संवत् १९७१-७२ के पश्चात् जिसका विवरण छपने में १० वर्ष लग गए, उसे हम कुछ ही घंटों में समाप्त कर डालना चाहते हैं। यही हमारे संकोच का कारण है। फिर, जैसा कि भूमिका-लेखक लिखते हैं, पुस्तक में सचमुच कई जगह कमी रह गई है। अतएव प्रदक्षिणा का विवरण अधूरा है। फिर भी "जितना हमको मिलता है", इसी का सधन्यवाद आनंद लेने में हमारी कोई हानि नहीं।

गुप्तजी की प्रदक्षिणा पढ़ते समय प्रसंगवश हमें सहसा कुछ प्राचीन भ्रमण करनेवालों का भी स्मरण हो आता है। बर्नियर और ट्रैवर्नियर जिस समय भारतवर्ष आए थे, उस समय भारत की कुछ दूसरी ही दशा थी। उस समय भारतवर्ष के रंगमंच पर मुसलमानी शासन का अभिनय हो रहा था। किंतु आज यदि फ्रांस के यात्री आकर यहाँ का दृश्य देखें तो उन्हें उन यात्रियों के समय की छाया ज़रूर मिलेगी; पर काल की चपेटों के बहुतेरे नए दृश्य भी देखने को मिलेंगे। इसी प्रकार मेगस्थनीज़, फ़ाहियान और हुएनसांग के भ्रमण-वृत्तांतों में भारत की प्राचीन सभ्यता का जो परिचय मिलता है, वह आज के चीनी यात्री को न मिलेगा। उन्हें आज प्राचीन हिंदू राजों के वैभव के ध्वंसावशेष का पता भी न लगेगा। कारण स्पष्ट है। पर यह पुस्तक अभी ताज़ी है, और गुप्तजी ने १० वर्ष पूर्व भिन्न-भिन्न देशों में जो कुछ देखा था, उसमें बहुत अंतर तो क्या, कदाचित् कुछ भी उल्लेखनीय अंतर नहीं पड़ा होगा। हाँ, संवत् १९७१-७२ से संवत् १९८१-८२ तक के बीच में जो यूरप का महायुद्ध हुआ है, उसके कारण कुछ देशों की राजनीतिक अवस्था में, और कुछ की आर्थिक स्थिति में तब की अपेक्षा आज अवश्य अंतर मिलता है। गुप्तजी की यात्रा के समय का सिंगापुर आज कुछ अधिक शक्तिशाली है। आज ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को सिंगापुर के भौगोलिक महत्त्व का कुछ अधिक ज्ञान हो गया है, और इस ताले की कुंजी को अधिक सुरक्षित रखने के लिये वे नए-नए आयोजन कर रहे हैं। पर सिंगापुर का जो अनुभव गुप्तजी को हुआ था, हमारी समझ में, वही अनुभव आज भी किसी परतंत्र भारत-वासी को हो सकता है। जिस प्रकार आप कालकोठरी में कारागार-वास का आनंद ले चुके हैं, इसी प्रकार उन्हीं
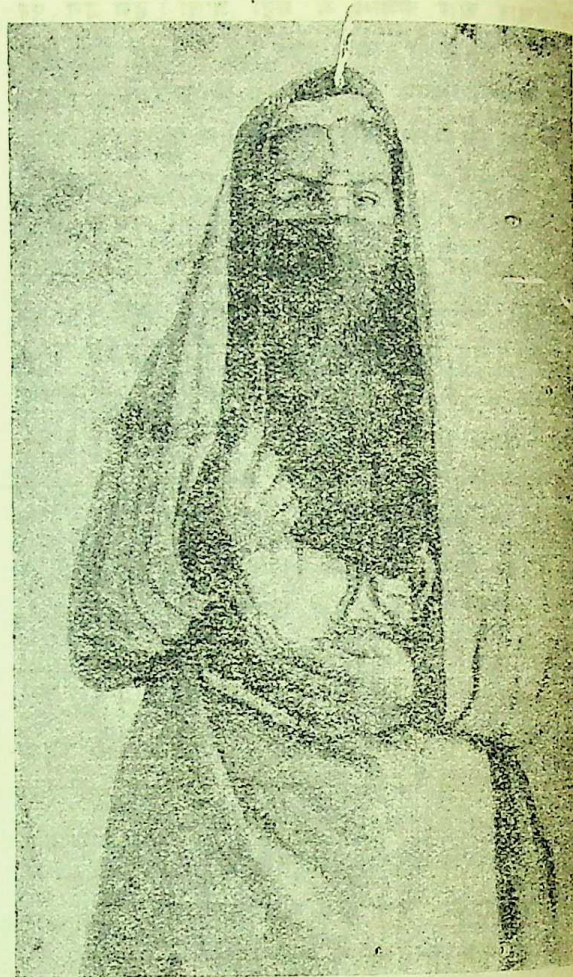
मिश्र देश की तुर्की महिला

की तरह का कोई भी प्रतिष्ठित-से-प्रतिष्ठित भारतवासी संदेह पर—केवल-मात्र संदेह पर आज भी वहाँ क़ैद किया जा सकता है। परतंत्रता का इससे अधिक अमानुषिक अनुभव भारतवर्ष के गुलामों के लिये और क्या हो सकता है! हाँ, पराधीनता और स्वाधीनता की तुलना वे बाहर कई अंशों में कर सकते हैं।

फिर भी हमारे देश के निवासी गुलामी के छुटकारे के साधनों का उपयोग करना नहीं चाहते। गुलामी का बंधन संसार-भर में आज आर्थिक दासत्व है। यह बंधन उद्योग और शिक्षा की उन्नति से खोला जा सकता है। गुप्तजी ने कुछ देशों के शिक्षा-क्रम और उद्योग-धंधों का वर्णन किया है। हमारे देश के लोगों को उनके अनुभवों से लाभ उठाना चाहिए। यात्रा के अनुभवों से होनेवाले

स्थानों को लक्ष्य करके अँगरेज़-लेखक बेकन ने तो यहाँ तक लिख डाला है कि जिज्ञासु यात्री को एक शहर के ही किसी ख़ास मुहल्ले में निरंतर न रहना चाहिए, सदैव स्थान बदलते रहना चाहिए ; क्योंकि जो बात एक स्थान में दृष्टिगोचर नहीं होती, वह, संभव है, अन्यत्र मिल जाय।

अपनी यात्रा के अनुभव को अंकित करते हुए गुप्तजी ने भिन्न-भिन्न देशों के शिक्षाक्रम के अलावा कृषिशाला, वेधशाला तथा वैज्ञानिक उन्नति का भी यथावकाश वर्णन किया है। इन उन्नतिशील पाश्चात्य एवं जापान के सदृश पूर्व के सभ्य देशों से जब हम किसी विषय में अपने देश की तुलना करते हैं, तो आकाश-पाताल का अंतर दिखलाई देता है। उदाहरणार्थ 'टस्केजी-विश्वविद्यालय"-शीर्षक परिच्छेद से हम कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं। इससे उक्त विश्वविद्यालय के शिक्षा-क्रम एवं शिक्षण-शैली का भी ख़ासा दिग्दर्शन होगा, जो इस देश के लिये सर्वथा लाभप्रद है—

"यह संस्था जहाँ पर स्थापित है, उस स्थान को एक छोटा-सा क़सबा कहना उचित है। छोटे-बड़े सब मिलाकर १०० मकान वहाँ हैं, जिनमें शिक्षालय के भिन्न-भिन्न विभाग, छात्रालय तथा शिक्षकों के रहने के स्थान हैं। सब मिलाकर ४० व्यावसायिक विषयों की शिक्षा यहाँ दी जाती है, जिनका प्रबंध केवल ५० लाख रुपए में हो गया है।—रात को हमने साधारण शिक्षा की रीति देखी। जिस कक्षा को हम देख रहे थे, वह सातवीं कक्षा थी। विषय लीवर था। हमारे यहाँ तो काले तख़्ते पर रेखाएँ खींचकर यह विषय समझा दिया जाता है, चाहे विद्यार्थी की समझ में आवे या नहीं ; किंतु यहाँ की रीति दूसरी ही है। वहाँ पर इस विषय के पाठ के लिये एक दो पहियों की बोझ ढोने की गाड़ी थी, कुछ ईंटें और एक तराज़ू था। एक बालक गाड़ी का कंपासबॉक्स उठाए हुए था। काले तख़्ते पर गाड़ी का बोझ तौलकर लिखा हुआ था ; ईंटों का बोझ भी लिखा हुआ था। आदमी को कंपास उठाने में जितना बल लगाना पड़ेगा, इसी के जानने की आवश्यकता थी। पहले गणित की रीति से वह निकाला गया। फिर आदमी के हाथों को हटा वहाँ कमानीदार तराज़ू लगाकर वहीं ज्यों-का-त्यों दिखा दिया गया। लड़कों की समझ में गणित भी आ गया और लीवर का वास्तविक उपयोग भी। यह तीसरे प्रकार के लीवर का उपयोग था।

"क़वायद का दृश्य बड़ा ही उत्साह-जनक था। सब बालक झूठी बंदूक़ें लिए फ़ौजी बाजे के साथ ठीक फ़ौजी ढंग से क़वायद कर रहे थे।"

जब हम इस विषय को लक्ष्य में रखकर भारतीय विश्वविद्यालयों के क़वायद के सिलसिले का स्मरण करते हैं, तो हमें स्वयं विदित हो जाता है कि स्वतंत्र और परतंत्र देश में कितना और क्या अंतर होता है। क्या भारत के विश्वविद्यालयों में सैनिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं है? भारतवर्ष को अपनी अंतरंग और बहिरंग रक्षा के लिये कब तक दूसरों का मुँह ताकना पड़ेगा? कलकत्ता-विश्वविद्यालय इस दिशा में कुछ दिनों से अग्रगामी हो रहा है। दूसरे विश्वविद्यालय कब तक इधर चलने की सोचेंगे—यही देखना है। बालकों की तो बात ही दूसरी है, वहाँ लड़कियों को भी बंदूक़ लेकर ड्रिल करना सिखाया जाता है। पर हमारे देश में तो बंदूक़ का छूना ही पाप समझा जाता है, बंदूक़ चलाना सिखाना कैसा!

गुप्तजी आगे चलकर इसी प्रसंग में लिखते हैं—

"शिक्षा बालकों और बालिकाओं की कुछ विभिन्न प्रकार की है। गौण रूप से यहाँ पर लोहारी, बढ़ईगीरी, जूते बनाने, कपड़े सीने, सींक की वस्तुएँ बनाने, टोपी बनाने, कपड़े साफ़ करने, भोजन बनाने, विद्युत्-शक्ति को प्रयोग में लाने, मशीन चलाने, बुनने, मक्खन निकालने तथा भिन्न-भिन्न कृषि की देखभाल करने के काम भी विद्यार्थियों को सिखाए जाते हैं। विद्यार्थी ही सब काम करते हैं। ये कार्य वास्तविक उपयोगिता की दृष्टि से भी कराए जाते हैं; जिससे विद्यार्थियों को मज़ूरी भी मिलती है। इस तरह वे व्यवसाय सीखते हैं, और पढ़ने का व्यय भी निकाल लेते हैं। दोपहर को सब विद्यार्थी—पुरुष और स्त्री—फ़ौजी बाजे व अमेरिकन झंडे के साथ मार्च करके भोजन करने जाते हैं।"

अमेरिका और भारतवर्ष के शिक्षा-क्रम में कितना अंतर है! यदि उन विद्यार्थियों की तरह इस देश के बालक-बालिकाओं को भी सुविधाएँ दी जायँ, तो क्या संभव नहीं कि उनमें भी स्वावलंबन और राष्ट्रीयता के भावों का उदय हो? पर अर्थकरी और राष्ट्-

भाव-पूर्ण शिक्षा मिले कहाँ से ? भारतवर्ष के लोग तो लकड़ी और पानी ढोने के लिये पैदा हुए हैं। राज-शक्तियाँ इनके लिये नहीं हैं। यही कारण है कि न तो यहाँ के बालकों को अर्थकरी शिक्षा ही पूरी मिल पाती है, और न शिक्षा का ख़र्च बालकों के ऊपर से कम होता है।

भारत-सरीखे धनहीन देश के लिये तो स्वावलंबन की शिक्षा ही अपेक्षित है। पर यहाँ के स्कूलों में तो चर्खे तक चलवाए नहीं जा सकते, अन्य प्रकार की व्यावसायिक एवं अर्थकरी शिक्षा का दिया जाना तो बहुत दूर की बात है। शिक्षा में यहाँ दूसरी वास्तविक कठिनाई यह है कि शिक्षक लोग किसी भी विषय को पढ़ाते समय रोचकता एवं कौतूहल नहीं उत्पन्न कर सकते। जो इने-गिने शिक्षक ऐसा कर भी सकते हैं, वे एक तो शिक्षा-विभाग में आदर नहीं पाते, दूसरे उन्हें ऐसे साधन भी अप्राप्य हैं। भारतवर्ष के शिक्षा-क्रम में जब तक अर्थकरी शिक्षा का समावेश न होगा, तब तक इस देश के बालकों में स्वावलंबन की स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिये विदेशों का उदाहरण लेना अनिवार्य है।

टस्केजी विश्वविद्यालय के अंतर्गत गोशाला एवं कृषिशाला भी है। गुप्तजी उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

"गोशाला में बच्चे नहीं हैं। वे जनमते ही अलग कर दिए जाते हैं; किंतु गाएँ बराबर दूध देती हैं। यहाँ कलकत्ते की भाँति फूका नहीं लगाया जाता ; केवल हाथों से स्तनों को सुहलाने से गौ दूध देती है। गोशाला बड़ी ही साफ़ एवं सुथरी थी, दुहनेवाले विद्यार्थी भी साफ़ थे। दुहने के पूर्व स्तन धो लिए जाते हैं, दुहने का पात्र बंद रहता है। एक महीन छेद की खँप होती है, जिस पर साफ़-सफ़ेद छन्ना पड़ा रहता है। दूध छन्ने में गिरता और भीतर दोहनी में चला जाता है। दूध यहाँ से दूध-घर को भेजा जाता है। यह घर बड़ा ही साफ़ था, सब ज़मीन धो-धाकर स्वच्छ की गई थी। पहले दूध भाप द्वारा गरम किया जाता है, जिससे रोग के जंतु उसमें हों, तो मर जावें। फिर ठंडा करके बोतल में बंद कर दिया जाता है। यही क्रम यहाँ सारे देश में है।"

सपोरी पशुशाला

उसी विश्वविद्यालय की अंतर्गत कृषिशाला का वर्णन लीजिए। गुप्तजी ने यहाँ एक मज़दूर को देखा, जिससे हमारे देश के बाबू लोग बात भी न करेंगे ; किंतु वह मज़दूरी ही करते-करते ऐसे आविष्कार कर रहा है, जिनसे थोड़े ही दिनों में संसार को चकित होना पड़ेगा। यह व्यक्ति यहाँ मिट्टी से रंग निकालने के काम में तन-मन से लगा था। इसने प्रायः सभी रंग मिट्टी से निकाले हैं। "संक्षेप में यहाँ की शिक्षा विद्यार्थियों को व्यावसायिक कामों में निपुण बना देती है। उच्च शिक्षा, जिसे कॉलेज की शिक्षा कहते हैं, यहाँ नहीं दी जाती। यहाँ मनुष्य के हाथ और मन, दोनों को ट्रेनिंग दिया जाता है। यहाँ की सभी इमारतें विद्यार्थियों ने बनाई हैं। विद्यालय के लिये अन्न, शाक-पात, फल-फूल, सब कुछ विद्यार्थी ही इसी भूमि पर उपजाते हैं। इससे स्वतंत्र बनने की भारी शिक्षा यहाँ मिलती है।"

ठीक ही है। स्वतंत्र देश के बालक ही स्वतंत्र होने की शिक्षा प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत परतंत्र देशों में क्लार्क और दिमाग़ी ग़ुलाम तैयार किए जाते हैं

कितना महान् अंतर है ! अभी हाल में कहने-सुनने पर यहाँ के एक शिक्षा-विभाग ने हस्त-शिक्षण का काम, और वह भी अनुभव के तौर पर, शुरू किया है। क्या इस देश के विश्वविद्यालय हस्त-शिक्षण का भी महत्त्व नहीं समझते कि इस विषय को अनिवार्य रूप से जारी कर सकें। शिक्षा का मूल मंत्र मानव-कल्याण है और इसके लिये नैतिक, मानसिक एवं शारीरिक, तीनों प्रकार की शिक्षा आवश्यक है। अमेरिका-जैसे देश में इसी प्रकार की सर्व-गुण-संपन्न शिक्षा दी जाती है। हमारा देश उससे वंचित है, इसीलिये वह गुलाम है। एक और विशेष बात, जो शिक्षा के लिये आवश्यक है, और जो विदेशों में पाई जाती है, यह है कि बालक को उसकी रुचि के अनुकूल शिक्षा दी जाती है। इस देश के बालक इस इच्छा-स्वातंत्र्य से वंचित हैं। इसी कारण उनका विकास नहीं हो पाता। कहने का तात्पर्य यह कि विदेशों ने तो हमारे देश की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली के ढंग को भी अपना लिया, किंतु हम उलटे उसे भूल गए। हमारा विश्वास है कि जब तक शिक्षक विद्यार्थियों की अंतरंग आत्मा में प्रवेश न करेगा, तब तक न तो वह उपयुक्त शिक्षा दे सकता है, और न उसकी शिक्षा लाभ-प्रद हो सकती है। टस्केजी-विश्वविद्यालय में १०० विद्यार्थियों को छोड़कर प्रायः सब विद्यार्थी छात्रशाला में निवास करते हैं, और वहीं भोजन पाते हैं। शिक्षकों के सहवास में ही उनका सारा समय बीतता है। स्त्रियों को उनके अनुकूल शिक्षा दी जाती है।

पानी निकालने की ढेंकुली

गुप्तजी ने इसी परिच्छेद के भीतर एक स्थान पर शिक्षकों की ट्रेनिंग की भी चर्चा कर दी है। हमारे यहाँ प्रांत-प्रांत में रेगुलर ट्रेनिंग कॉलेज हैं, जिनमें न-जाने कितना द्रव्य ख़र्च हो चुका, और आगे कितना होगा। यहाँ के शिक्षकों को एक काफ़ी समय तक ट्रेनिंग दी जाती है। पर उक्त विश्वविद्यालय में ट्रेनिंग-क्लास साल में केवल ४ सप्ताह के लिये, वह भी केवल गरमियों में, लगती है। उसमें दक्षिणी तथा उत्तरीय प्रांतों के सब मिलकर ३०० शिक्षक आ जाते हैं। एक बार ट्रेनिंग से निकल जाने पर वहाँ यह आवश्यक नहीं कि शिक्षक उस्ताद हो चुका—अब सीखने की ज़रूरत नहीं रही, यह मान लिया जाय। बात यह है कि अमेरिकन शिक्षा का सिद्धांत यह है कि मनुष्य जन्म-भर कुछ-न-कुछ सीखने के लिये है। इसीलिये वहाँ इतनी उन्नति है कि मामूली दर्ज़ी भी फ़ुरसत के समय का उपयोग कर मशीनें और ऐसे यंत्र आदि बनाते हैं, जिन्हें हमारे यहाँ के कारीगर स्वप्न में भी नहीं सोच सकते। गुप्तजी बहुत सत्य लिखते हैं—"हमें इस समय जितनी आवश्यकता निपुण लोहार, दर्ज़ी, मेमार, व्यवसायी तथा भिन्न-भिन्न यंत्रकारों और कृषकों की है, उतनी दूसरों का धन सत्यानाश करनेवाले वकीलों तथा सफ़ेदपोश बाबुओं की नहीं।" देश के विश्व-विद्यालयों को इस ओर ज़रा ध्यान देना चाहिए।

यह तो हुई अमेरिका की बात। अब हम जापान के शिक्षा-क्रम पर भी कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं। अमेरिका के शिक्षा-क्रम और पाठ्य-प्रणाली में हमने वस्तुतः बालकों की शिक्षा का ही उल्लेख किया है।
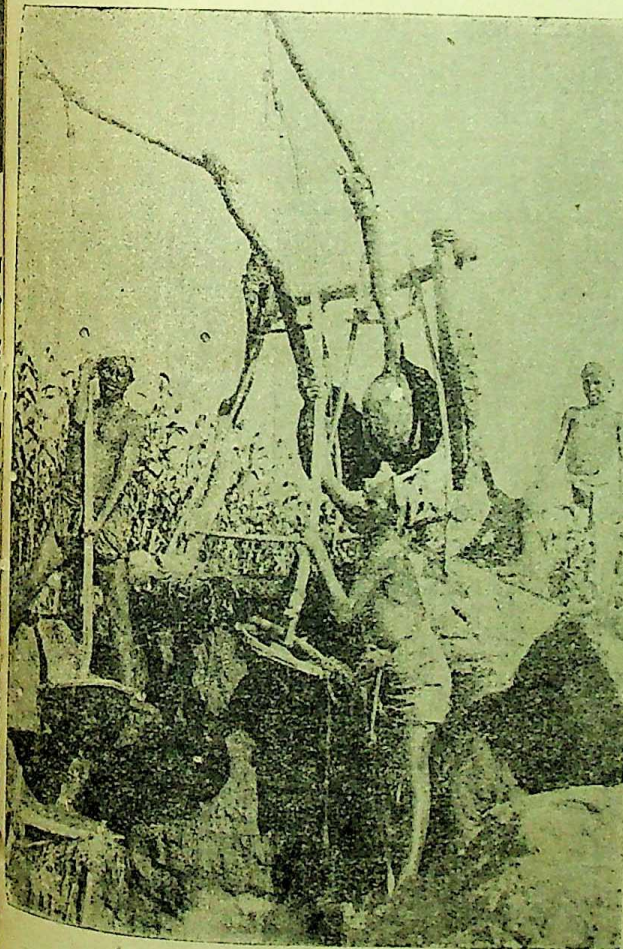
पर यह जापान का महिला-विश्वविद्यालय है । इस महिला-विश्वविद्यालय का निम्नलिखित कल्पनाओं के आधार पर निर्माण हुआ था—

(१) स्त्रियाँ गाय, बकरी या यंत्र नहीं, मनुष्य हैं। उनकी शिक्षा भी ऐसी होनी चाहिए, जो मनुष्यों के लिये उपयोगी हो।

(२) स्त्रियाँ पुरुषों की दासियाँ नहीं हैं। इसलिये उनकी शिक्षा में इसका विचार करना उचित नहीं कि वे पुरुषों की गुलाम बनाई जायँ। उनकी शिक्षा का सिद्धांत यह है कि वे स्वतंत्र जीवन-संग्राम के लिये कटिबद्ध हों।

(३) स्त्रियाँ मानव-समाज का अंग हैं। इसलिये उनकी शिक्षा का विचार उस सिद्धांत से होगा, जिससे मानव-समाज की जीवन-यात्रा में सुख की वृद्धि हो।

जापान में इन्हीं सिद्धांतों पर स्त्री-शिक्षा का प्रचार हुआ, और इनको सफलीभूत देखने के लिये उनके अनुकूल ही पाठ्य-क्रम निर्धारित हुआ। गप्तजी की यात्रा के समय इस विश्वविद्यालय का पाठ्य-क्रम जिस प्रकार का था, उसे हम इन्हीं की पुस्तक से देते हैं—"यहाँ शिक्षा के कुल चार विभाग किए गए हैं। इन चारों विभागों में नीचे जिन-जिन विषयों की चर्चा की गई है, उनमें भी उन्हीं विषयों से संबद्ध विषय पढ़ाए जाते हैं। किंतु चारों विभागों में कुछ विषय ऐसे भी रक्खे गए हैं, जो अनिवार्य हैं। प्रत्येक विभाग की बालिका को ये विषय जानने, पढ़ने एवं अनुभव करने पड़ते हैं। यथा—

१—सदाचार या नीति-विषयक शिक्षा, २—साधारण सदाचार, ३—आत्म-तत्त्वज्ञान, ४—अध्यापकों के योग्य शिक्षा, ५—अँगरेज़ी, ६—व्यायाम। अस्तु, इन अनिवार्य विषयों के साथ-साथ बालिकाओं को भिन्न-भिन्न श्रेणी में भिन्न-भिन्न कार्य-क्रम के अनुसार शिक्षा दी जाती है।" क्या जालंधर का कन्या-महाविद्यालय और कर्वे महाशय का विद्यापीठ इस ओर ध्यान देगा ?

सहस्रबाहु कानन की मूर्ति
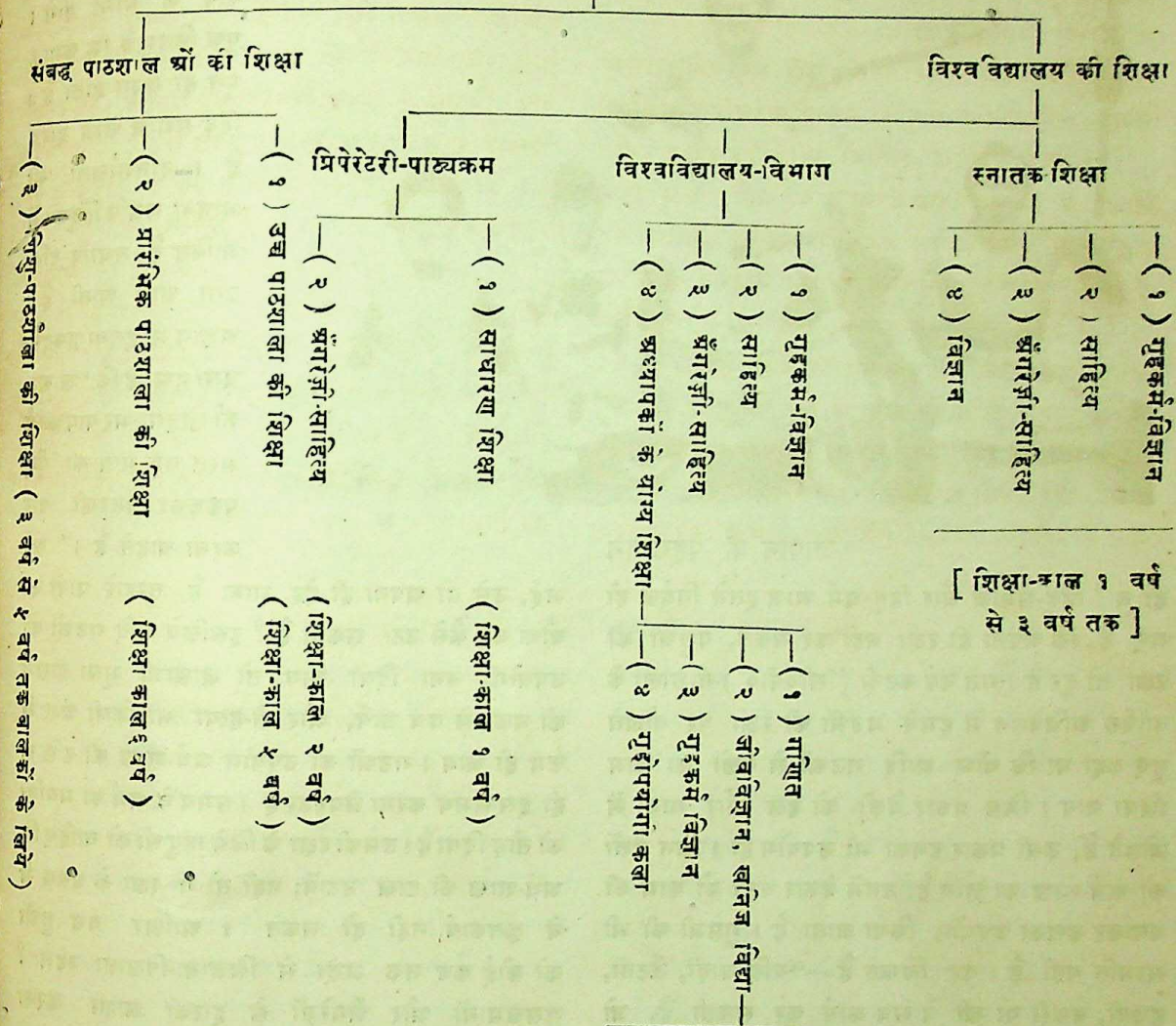
यहाँ तक तो हमने शिक्षा-क्रम और डेयरी-कार्यक्रम का उल्लेख किया है। हमारे देश के लिये ये बहुत आवश्यक बातें हैं। जीवन-मरण का प्रश्न, आत्मरक्षा और आत्माभिमान की समस्या एवं सामाजिक विकास की पहेली इन्हीं के अंदर है। अब हम एक अर्थशास्त्र के प्रश्न को लेते हैं। वह है पशु-हत्या। विदेशों में पशुओं की रक्षा इसीलिये होती है कि वे उपयोगी समझे जाते हैं—नहीं, उनसे लाभ उठाया जाता है। यदि हमारे देश के लोग भी पशुओं को उपयोगी—आमरण उपयोगी—बना लें, तो पशु हत्या के साथ-साथ, बल्कि उससे पहले ही, गो-हत्या मिट सकती है—अधिकांश में दूर हो सकती है। संसार का यह नियम है कि वह बेकार वस्तु की उपेक्षा करता है। किसी वस्तु के निष्प्रयोजन होने से उसका नाश भी अवश्य एवं शीघ्र ही होता है। उपयोग में लाई जानेवाली तलवार हमेशा चमकती रहती है। इसके विपरीत उससे काम न लिया जाय, तो उस पर जंग चढ़ जाता है। धीरे-धीरे तत्त्व भी तत्त्वों में मिलने लगते हैं। विदेशी वैज्ञानिक अब तक कुल चार ही तत्त्व खोज सके हैं, पर हमारे शास्त्रकारों ने पाँच तत्त्व दिखाकर इसे एक अर्थशास्त्र का विषय बना दिया है। अस्तु, बेकार गउओं का अर्थशास्त्र की दृष्टि से—धर्म की दृष्टि से नहीं—फिर क्या उपयोग हो सकता है? यही कि उनका वध

जापान के पहलवान

हैं, और वे ही अंत को पाप के भागी होंगे। एक नियम है कि कमाऊ पूत ही सपूत होता है। हिंदू-समाज आज दरिद्र है। दानशीलता की भावना यद्यपि हिंदुओं में जीवित है, तथापि दरिद्रता आड़े आती है। अज्ञान भी इतना ज़बर्दस्त घुसा हुआ है कि "लालाजी ज़िंदगी-भर पाप करके मरते वक्त गाय की पूँछ पकड़कर वैतरणी पार करना चाहते हैं।" अरे हो न? हिंदू-समाज और हिंदू-धर्म आज इतने निर्बल हो गए हैं कि अपनी ही रक्षा नहीं कर सकते, पशुओं की रक्षा तो दूर है। गत वर्ष कटनी (सी०पी०)-गोशाला के वार्षिक अधिवेशन में हमने गउओं की रक्षा पर बोलते हुए कहा था कि बाँझ आदि गउओं से बैलों का काम लिया जाय। जिस प्रकार बैलों को हल और गाड़ी में जोतते हैं, उसी प्रकार इनका भी उपयोग हो। जिन देशों को अर्थ-शास्त्र का ज्ञान है, उनमें बेकार वस्तु को काम की बनाकर उसका उपयोग किया जाता है। गुप्तजी की भी सम्मति यही है। वह लिखते हैं—"यदि घोड़ी, ऊँटनी, हथनी, बकरी या स्त्री वे सब कार्य कर सकती हैं, जो घोड़े, ऊँट, हाथी, बकरे या पुरुष कर सकते हैं, तो मैं नहीं समझता कि गौ वह काम क्यों नहीं कर सकती, जो बैल कर सकता है। मैं इसे आर्थिक प्रश्न समझता हूँ, धार्मिक नहीं; क्योंकि गो-संतान पर हमारी खेती निर्भर है, और खेती पर हमारा जीवन तथा देश का भविष्य आशा। गो-संतान गोमाता पर निर्भर है।"

यह प्रत्यक्ष है कि जिन बेकार बूढ़ी गउओं को समृद्धिशाली धनी मनुष्य पालकर नहीं खिला सकते, उन्हें ब्राह्मणों को दान देकर वे कैसे यह आशा कर सकते हैं कि गो-रक्षा हो सकेगी? 'मरी बछिया बाम्हन के नाँव' की जनश्रुति को चरितार्थ करनेवाले लोगों को यह स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार वे स्वयं अपने कार्य से गोहत्या में योग देते

भई, उसे तो अपनी ही देह भारू है, तुम्हारे पापों का बोझ वह कैसे उठा सकती है? इसलिये यदि गउओं को उपयोगी बना दिया जाय, तो लालाजी भूसा डालने की बला से बच जायँ, और गो-हत्या भी किसी अंश में कम हो जाय। गउओं का उपयोग अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से ही इस समय करना श्रेयस्कर है। समय ने धर्म की मर्यादा को तोड़ दिया है। उसकी रक्षा के लिये हिंदुओं को चाहिए कि अर्थ-शास्त्र की ढाल उठावें; नहीं तो गो-रक्षा के प्रयत्न में वे कृतकार्य नहीं हो सकते। आख़िर बँधे हुओं को कोई कब तक श्रद्धा से खिलाता-पिलाता रहेगा? मुसलमानों और अँगरेज़ों से इसकी आशा करना व्यर्थ है।

गुप्तजी ने जहाज़ पर जो पशु-हत्या देखी थी, उसे देखकर उन्हें गो-हत्या का स्मरण हो आया। उनकी समझ में हिंदुओं के गो-हत्या बंद करने में सफल न होने के तीन कारण हैं। वह लिखते हैं—

"(१) एक मोटा कारण है देश की दरिद्रता। खेती दिनो-दिन बढ़ती जाती है, किंतु उसका पूरा लाभ हम नहीं उठा पाते। हमारे पसीने से उत्पन्न किया हुआ अन्न हमसे छीनकर विदेशों को भेज दिया जाता है। यदि तृण की कमी होगी, तो पशु क्या खाकर रहेंगे? इत्यादि।

"(२) मांस-भक्षियों की गो-मांस पर रुचि है।
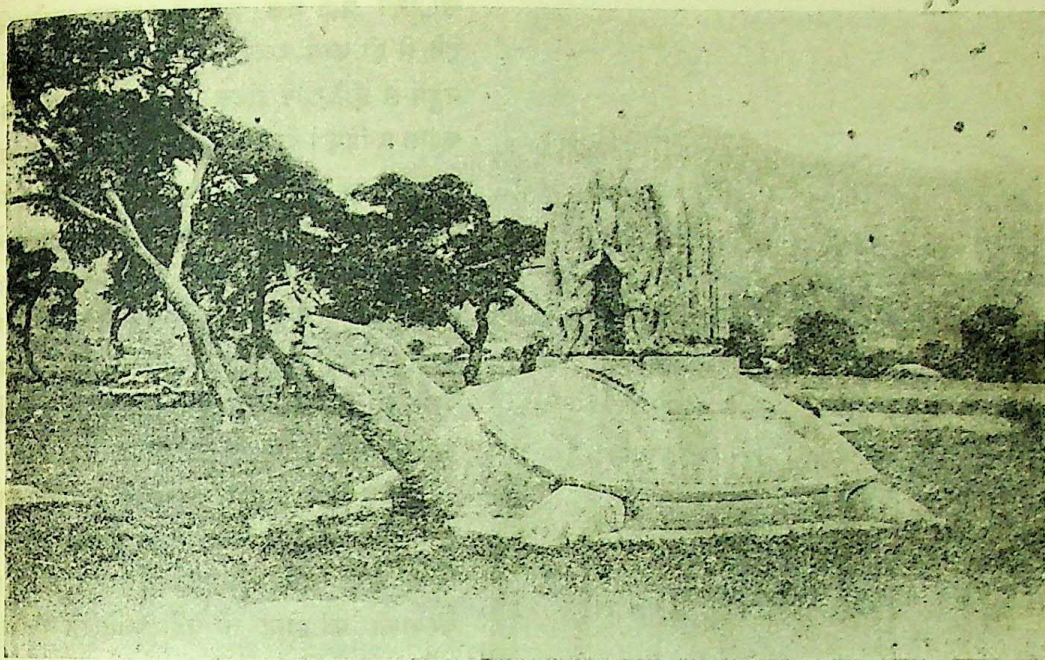
कच्छप की पीठ पर शिला-लेख (जापान)

“(३) सबसे दुःखदायी कारण यह है कि गौ का मूल्य कम है। ठाँट किसी काम की न होने के कारण बहुत सस्ती बिकती है। भारतवर्ष के कृषि-प्रधान देश होने के कारण बैलों की माँग अधिक है। निदान बैलों का मूल्य गौओं की अपेक्षा दुगना-तिगना है। गौ केवल उसी समय तक उपयोगी समझी जाती है, जब तक दूध देती है। वह ठाँट हुई, और उसकी उपयोगिता घटी। बड़ी-बड़ी गौएँ एक-दो बियान के बाद ठाँट हो जाती हैं। कारण यह है कि उन्हें चलने-फिरने का कम अवकाश मिलता है। इन पर चर्बी चढ़ जाती है, और वे बच्चे नहीं देतीं। दूसरे, बैल की अधिक माँग होने से अच्छे साँड़ों की भी बहुत कमी है। ठीक जोड़ के साँड़ न मिलने से गौओं के बछड़े जनमते ही मर जाते हैं, और बहुत-सी अवस्थाओं में बरधाने के बाद गौएँ उलट देती हैं। इन्हीं उपर्युक्त कारणों से अच्छी, मोटी, भारी गौओं में भी बहुत ठाँट पाई जाती हैं। फिर हिंदू लोग धर्म के ख़याल से इनसे और कोई कार्य नहीं लेते और पास रखने की सामर्थ्य न होने के कारण ब्राह्मण को दान कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि क़साइयों के हाथ से उनकी जान जाती है। हमें विश्वास है कि गो-भक्त हिंदू और राष्ट्र के नेता गो-वध की पहेली पर नए सिरे से विचार करेंगे। आख़िर कब तक गो-वध होता रहेगा, और कब तक इस देश के बच्चे चुल्लू-चुल्लू-भर दूध के लिये तरसते रहेंगे ?”

है तो यह ‘पृथिवी-प्रदक्षिणा’; पर इसे एक प्रकार की वैसी ही परिक्रमा समझिए, जैसी विंध्यादेवी या चित्रकूट के यात्री करते हैं। उतावला पाठक हमारी तरह यही समझेगा कि इसमें पृथ्वी-मात्र का वर्णन मिलेगा। किंतु हमारी ही तरह उसे भी निराश होना पड़ेगा। वास्तव में, जैसा कि हम पहले कहीं लिख चुके हैं, यह अधूरा वर्णन है। पर यही क्या कम है ? जितना कुछ है, उतना ही अच्छा है। संसार की प्रत्येक वस्तु से अधिक-से-अधिक लाभ उठाना हमारा कर्तव्य है। इस पुस्तक में अमेरिका, जापान और योरप का ही वर्णन मिलता है। आफ्रिका, आस्ट्रेलिया आदि महाद्वीपों अथवा अन्य द्वीप-पुंजों का नहीं। मिसर, चीन आदि जो देश यात्रा के प्रसंग में आ गए, उनका भी उल्लेख है। फिर भी २१ महीने की यात्रा का जितना और जैसा कुछ वर्णन है, वह हम-लोगों के समझने के लिये एक प्रकार से पर्याप्त नहीं, तो अपर्याप्त भी नहीं है।

संसार के प्रायः सभी देशों में अन्य देशों के निवासी भी पाए जाते हैं। जिस तरह भारतवर्ष में अँगरेज़, यहूदी, चीनी और जापानी आदि विदेशी हैं, उसी प्रकार किसी

'कुआन-सिआंग-ताई' नाम की वेधशाला (चीन)

सामाजिक विनिमय के लिये अमेरिका आदि देशों में भी दूसरे देशवालों की बस्तियाँ हैं। गुप्तजी के साथ हम अमेरिका की एक चीनी बस्ती देखने चलते हैं। अमेरिका के प्रधान-प्रधान शहरों में 'चाइना-टाउन' नाम की एक-एक बस्ती या मुहल्ला है। इसे ही चीनी बस्ती कहते हैं। यहाँ चकले दिखलाई देते हैं, जहाँ वेश्याएँ बैठी रहती हैं। "सारे अमेरिका में वेश्याओं या व्यभिचार की कमी नहीं है, प्रत्युत अधिकता ही है। यद्यपि इँगलैंड और अमेरिका में चकले एवं वेश्याएँ नहीं हैं, पर व्यभिचार होता बहुत काफ़ी मात्रा में है, और इसके लिये दूसरी व्यवस्था है। अमेरिका के नगरों में सैलून या शराब पीने की जगहों में यह कार्य होता है। स्त्री-पुरुष वहीं चले जाते हैं। शराब बेचनेवाले से कह देने से ही काम चल जाता है। इन्हीं दूकानों के पास बहुत-से छोटे-छोटे होटल रहते हैं, जिन्हें चकला या अड्डा कहना चाहिए। इँगलैंड में हज्जामों की दूकानों पर नाखून काटने के लिये जो लड़कियाँ रहती हैं, वे इसी काम के लिये रक्खी जाती हैं। लंदन तथा न्यूयार्क में नाखून काटने तथा मालिश करने की हज़ारों दूकानें हैं। इन सबको इसी प्रकार के अड्डे समझना चाहिए। पर उन्हें कोई बुरा नहीं कहता, और न ऐसी स्त्रियाँ समाज में ही वैसी बुरी समझी जाती हैं, जैसी हमारे देश में वेश्याएँ समझी जाती हैं।"

इस वृत्तांत से हम गुप्तजी की अपेक्षा कुछ अधिक अनुमान करते हैं। भारत में यदि इसी दृष्टि से विचार किया जाय, तो कदाचित् इतना ही व्यभिचार मिलेगा। वेश्याओं का होना तो यहाँ अतिरिक्त व्यभिचार है। दक्षिण-भारत के प्रांतों में जाइए, आपको पान की दूकानों पर बहुधा स्त्रियाँ ही मिलेंगी। इनकी तुलना आप नाखून काटनेवाली योरप की औरतों से कर लीजिए। योरप में भी किसी समय इससे भी अधिक खुल्लमखुल्ला व्यभिचार होता था। मालूम नहीं, अब यह बात ऐसी है या नहीं; पर उन दिनों लंदन और योरप के अच्छे-अच्छे बड़े नगरों में जगह-जगह व्यभिचार के अड्डे थे। वहाँ यह भी नियम था कि ऐसी स्त्रियों के जब बच्चा होता था, तो वे उसे एक ख़ास जगह पर पहुँचा देती थीं, और आप फिर ज्यों-की-त्यों अछूती निकल आती थीं। इन बच्चों की रक्षा स्टेट की ओर से होती थी। प्रसिद्ध औपन्यासिक रेनाल्ड ने अपने उपन्यासों में उस समय के व्यभिचार का ख़ासा चित्र खींचा है। हमारे एक अनुभवी मित्र का कहना है कि बहुतेरे अँगरेज़ सैनिक आज इसी वंशपरंपरा के देखे जाते हैं। चाहे जो हो, तब से आज की स्थिति में अंतर ज़रूर है। विदेशों ने अपने यहाँ सुधार कर लिया है। उन्होंने किया क्या है कि मानवी दुष्प्रवृत्ति को न रोककर उसे परदे की ओट में कर दिया है। इसके विपरीत हमारे यहाँ दिन-पर-दिन उसका परदा फ़ाश होता जाता है। ऐयाश मुसलमानों के राज्यों के साथ-साथ हिंदुओं का भी नैतिक पतन हो गया। आज भारतवर्ष का यह हाल है कि माता-पिता तो ठेकेदार हैं, और उन्हीं की पुत्रियाँ उनकी रोटी का

ज़रिया। अँगरेज़ी-राज्य की शोषण-नीति ने इस आग में आहुति का काम किया है। ऐसे आत्माभिमान-रहित एवं मनुष्यत्व-हीन माता-पिताओं में मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक है। मानवी प्रवृत्ति की दुर्द्धर्षता के साथ-साथ भारत की दरिद्रता भी इसका प्रधान कारण बनी हुई है। हाँ, प्रवृत्ति का रोकना तो ज़रा मुशकिल है; पर दरिद्रता दूर होने से कुछ-न-कुछ सुधार ज़रूर हो सकता है। पराधीन जगत् में दरिद्रता-जनित व्यभिचार अधिक मिलता है; जो स्वेच्छा अथवा मानव-प्रवृत्ति से नहीं, धन के लिये होता है। फिर धीरे-धीरे वही स्वभाव बन जाता है। इसके विपरीत जहाँ दरिद्रता नहीं है, वहाँ व्यभिचार मदोन्मत्त प्रवृत्ति का परिणाम है। विदेशों में मदोन्मत्त प्रवृत्ति का ही व्यभिचार प्रायः देखने में आता है।

स्वाधीनता की घोषणा (अमेरिका)

कदाचित् इसी मानवी प्रवृत्ति की प्रचंडता को देखकर जापान ने अपने सामाजिक जीवन में कुछ विशेष सुधार किए हैं। जापान है तो प्राच्य-धर्मावलंबी, पर वहाँ भिन्न-भिन्न धर्मावलंबियों में विवाह होने की प्रथा का जारी होना कुछ सामाजिक रहस्य प्रकट करता है। इतना ज़रूर है कि पत्नी को पति का धर्म स्वीकार कर लेना पड़ता है। यदि जापान के इस दृष्टांत और अन्य देशों के दृष्टांतों को लेकर विचार करें, तो सर्वत्र यही देखने में आता है कि पति का ही धर्म नारी-धर्म है। अस्तु, इस प्रकार धर्म केवल पुरुषों का रह गया; स्त्रियाँ तो उनके ही धर्म की माननेवाली हैं। क्या ही अच्छा हो कि पुरुषों का यह धर्म भारत में राष्ट्र-धर्म और संसार में विश्व-धर्म बन जाय। क्या कल्कि-अवतार का यह उद्देश्य असंभाव्य है, जिस दिन समस्त मानव-जगत् शुद्ध हो जायगा।

हमारे देशवासियों में एक भारी त्रुटि यह है कि वे जाते तो विदेशों से कुछ सीखने के लिये हैं, पर अधिकांश वहाँ से केवल उनके वैभव का दृश्य ही साथ लेकर लौटते हैं। ख़ैर, गुप्तजी तो केवल प्रदक्षिणार्थ ही गए थे। हम मानते हैं कि इससे भी कुछ लाभ होता है; पर यह कोरा वैभव वास्तव में उपयोगी नहीं, जब तक इसके आधिपत्य की कुंजी न प्राप्त कर ली जाय। इस कुंजी को बहुत कम लोग साथ लेकर लौटे हैं। जापान के राजा मिकाडो जिस समय योरप का भ्रमण करने गए थे, तो अपने साथ योरप का वैभव लाए थे—नहीं, जापान का ही वैभव वास्तव में लेकर लौटे थे। पत्र-पत्रिकाओं में भी यही बात अक्सर देखने में आती है कि अमुक प्रकार की वैज्ञानिक उन्नति अमेरिका अथवा योरप में हुई। पर उसकी कुंजी निकालकर देने में जितना लाभ है, उतना उसका वैभव बतलाने में नहीं। दफ़्तर के

बाबू की तरह लाखों का टोटल लगा देने में वह मज़ा नहीं, जो गिनकर उन्हें सहेजने में है। यही अंतर दोनों में है। 'हमारे दादा ने घी खाया था, हमारी मूछें सूँघ लो'—तर्क आज भौतिक उन्नति के लिये यह कोई नहीं रहा। हमें शोक से लिखना पड़ता है कि गुप्तजी के पर्यटन-विवरण भी अधिकांश में केवल-मात्र विदेशों के वैभव का दिग्दर्शन-मात्र है। कुछ थोड़े-से जापानी उद्योग-धंधों का वर्णन गुप्तजी ने ज़रूर किया है; पर उससे नाम-मात्र को ही लाभ उठाया जा सकता है। अच्छा हो कि हमारे प्रवासी भारतीय बंधु अपने साथ कुछ व्यावहारिक ज्ञान लेकर लौटा करें। मनोरंजन केवल कला का द्योतक है; पेट भरने के बाद ही वह पाचन-योग्य है, अन्यथा नहीं।

संसार का वैभव देखते-देखते तो ग़रीब लोग ऊब उठे। रूस ने राज-शासन को उलट दिया, ज़ार-वंश के वैभव को धराशायी कर दिया। संसार में सोशियालिज़्म और कम्यूनिज़्म फैल रहे हैं। इसलिये ज़रा ग़रीबों की दुनिया के अंदर क़दमरंजा फ़रमाइए। कोरिया की ओर देखिए। यह जापान नहीं, ग़रीब कोरिया है, जो धन-सत्ता के आघातों से पड़ा कराह रहा है। कोरिया का ऐतिहासिक वैभव औरों की तरह शानदार है; पर वह आज साम्राज्यवाद के चंगुल में है। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने यहाँ भी वैसा ही जाल बिछा रक्खा है, जैसा भारतवर्ष में। दरिद्र देशों की दरिद्रता से लाभ उठाने का आयोजन कहाँ नहीं देखने में आता? गुप्तजी ने अपनी पुस्तक में प्रायः सर्वत्र सामाजिक आचार-विचारों पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसी कोरिया के निवासियों के भोजन आदि का वर्णन करते हुए गुप्तजी लिखते हैं—

"यहाँ के लोग दिन-रात में तीन बार भोजन करते हैं—प्रातःकाल कलेवा, दोपहर में रसोई और रात्रि में ब्यालू। खुशहाल लोग चाँवल का अधिक प्रयोग करते हैं; किंतु निर्द्धन जन ज्वार-बाजरे के भात से ही काम चलाते हैं। ये लोग दाल हमारी भाँति नहीं खाते, किंतु उसकी पीठी बनाकर भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ बनाते हैं। भात के अतिरिक्त नाना प्रकार की भाजी और सूखी मछली इनका प्रधान खाद्य पदार्थ है। इनके अतिरिक्त हर प्रकार के जलचर, भूचर, नभचर जीव-जंतुओं का मांस भी ये लोग प्राप्त होने से खा लेते हैं। पशुओं के आंतरिक यंत्र—यकृत्, प्लीहा इत्यादि—यहाँ असाधारण उत्तम खाद्य पदार्थ समझे जाते हैं। यहाँ नोन-मिर्चा पर अधिक रुचि है। पियाज़ भी व्यवहार में आता है। तिल का तेल भी खाया जाता है। गाय-बकरियों के रहते हुए भी यहाँ दूध-घी का व्यवहार बहुत कम है।"

चीन की राज्यक्रांति का दृश्य (१)

कोरिया की सभ्यता का अंदाज़ा इससे सहज ही लगाया जा सकता है। हमारी धारणा है कि खान-पान और आचार-विचार से किसी देश की सभ्यता का पता तो चलता है, पर यह सब अधिकांश में स्थान-विशेष के जल-वायु पर निर्भर है। प्रकृति ने स्वयं सब साधन एकत्र कर दिए हैं। संसार के भिन्न-भिन्न देशों में इस तरह के अनेक परिवर्तन दिखलाई देते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

यहाँ से अब गुप्तजी एशिया के प्रथम प्रजा-तांत्रिक देश में प्रवेश करते हैं। आइए, हम और आप भी चलकर देखें। यह देश चीन है। इस प्रकरण में गुप्तजी ने शासन-संबंधी कुछ तथ्य की बातें बतलाई हैं, जिन्हें हम आवश्यक समझकर उद्धृत करते हैं। भारत की वर्तमान राजनीतिक उथल-पुथल के समय इनसे कुछ लाभ उठाया जा सकता है। इसके विपरीत है। राज-काज का काम ऐसा-वैसा नहीं है, जिसमें किसी भी देश के सभी स्त्री-पुरुष सम्मिलित हो सकें, अथवा इसका संचालन कर सकें। यद्यपि स्वराज्य का अर्थ इतने दिनों में बहुत कुछ लोगों की समझ में आ गया होगा; तो भी उसके संबंध में गुप्तजी के प्रौढ़ विचारों को यहाँ देना हितकर ही होगा। वह लिखते हैं—

"स्वराज्य एक विलक्षण प्रकार की परतंत्रता का नाम है। उसमें एक विशेष प्रकार के दायित्व के भाव से प्रत्येक मनुष्य को बँधना पड़ता है। स्वराज्य में निज के बहुत-से स्वार्थों का त्याग आवश्यक रहता है, साथ ही जनता के सामूहिक स्वार्थ का प्राधान्य भी मानना होता है। वह एक प्रकार का नियमित जीवन है, जिसकी अधीनता में आकर प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्वतंत्रता छोड़नी पड़ती है।

"मोटी निगाह से यह एक उलटी बात मालूम पड़ेगी,
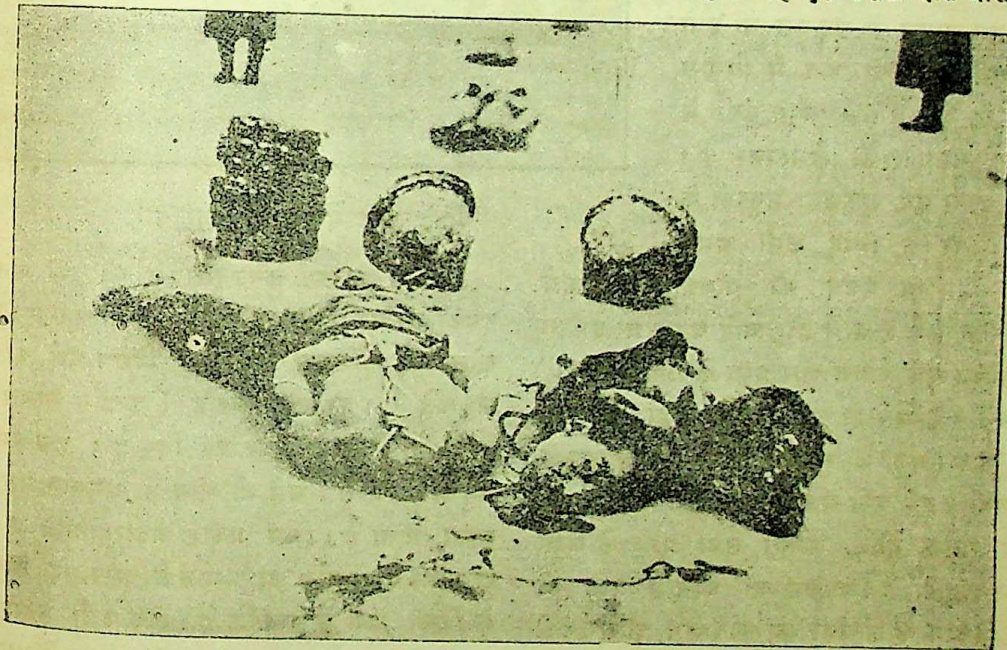
चीन की राज्यक्रांति का दृश्य (२)

पाठक यदि ३-४ वर्ष पूर्व के वायुमंडल में अपनी स्मृति का प्रवेश होने दें, तो उन्हें स्मरण आ जायगा कि जिन दिनों स्वराज्य और असहयोग की चर्चा ज़ोरों पर थी, सबके मन में एक अजीब जोश था। प्रायः लोग यही समझने लगे थे कि स्वराज्य में उन्हें कुछ काम-धाम नहीं करना पड़ेगा। बहुतों के मन में तो अपने शत्रुओं से बदला लेने की कल्पनाएँ भी उठी होंगी। पर बात बिलकुल किंतु ज़रा ध्यान करने से इसका यथार्थ तत्त्व, इसकी वास्तविकता भली भाँति मालूम हो जायगी। इससे यह विचार कि स्वराज्य-प्राप्ति से हमें स्वतंत्रता मिल जावेगी, हम जो चाहें सो करेंगे, हम पर किसी प्रकार का अंकुश बाक़ी न रह जावेगा, नितांत भ्रम-मूलक है; और यह भाव जहाँ है, वहाँ की जनता स्वराज्य के लिये नहीं, बल्कि अराजकता के लिये ही तैयार है। ऐसे समाजों में

स्वराज्य से न तो सुराज्य व सुख की प्राप्ति होगी, और न दैन्य-अज्ञान का ह्रास ही होगा, बरन् कुराज्य, दुःख-दैन्य तथा अज्ञान की वृद्धि ही अधिकाधिक होती जायगी।"

राजनीतिक दृष्टि से गुप्तजी के विचार बहुत प्रौढ़ एवं मान्य हैं। सचमुच स्वराज्य अथव प्रजा-तंत्र का अर्थ यह नहीं होता कि शासन-सूत्र ढीला कर दिया जाय, जिधर जिसका जी चाहे, चला जाय। नहीं, स्वराज्य के प्रारंभिक काल में भी कुछ नियमों की आवश्यकता रहती है, जो प्रजा को ज़बरदस्ती रास्ते पर ले आते हैं। यदि उन नियमों का पालन करानेवालों में दृढ़ता न हुई, फ़ौजी प्रभुत्व उनके हाथ में न हुआ, तो स्वराज्य की जगह कुराज्य और आगे चलकर सचमुच अराजकता उत्पन्न हो जाती है। ऐसे ही निर्बल प्रजातंत्र-शासन में गृह-युद्ध भी होते हैं, जो सर्वसाधारण को अंत में विनाश की ही ओर ले जाते हैं।—"सभी तंत्रों में स्वराज्य एवं कुराज्य की संभावना है। स्वराज्य की दृढ़ता एवं सफलता मनुष्यों के चरित्र पर निर्भर है। वह उसी समय प्राप्त होता है, जब प्रबंध की बागडोर निःस्वार्थ व्यक्ति या व्यक्तियों के हाथ में हो, चाहे वह राजा हो या विलक्षण सचित्र एवं समाज और प्रजा के प्रतिनिधि।"

पर शासन कुछ और ही बात है, और प्रजा का सुखी होना कुछ और। प्रजा के सुखी होने का कारण उसकी स्वतंत्र औद्योगिक एवं कृषि-संबंधी उन्नति है, और शासन की योग्यता न्याय, नीति, समता तथा प्रजा के सुखी रखने की भावना में है। शासन का ध्येय है प्रजा की उन्नति एवं विकास के साधनों का आयोजन और उनकी रक्षा। प्राचीन काल में इसीलिये, इस कार्य के लिये, उत्तम राज्य-प्रबंध में स्वार्थ-त्यागी, ज्ञानी, विवेकी एवं विचक्षण ब्राह्मण रक्खे जाते थे। शासन-प्रगति में रुचि तथा मनुष्य-समाज को सुखी बनाने की आकांक्षा रखनेवालों को इन बातों का स्मरण रखना चाहिए। वह समय आनेवाला है, जब हमें भी दूसरे देशों के अनुभव, सफलता एवं विफलता से लाभ उठाने का अवसर मिलेगा।

गुप्तजी आगे चलकर चीन के सामाजिक आचार विचारों पर प्रकाश डालते हैं। हमारे यहाँ जैसी प्रथा है कि अभ्यागत के आने पर गृहस्थ शर्बत-पानी कराता है, ठीक वैसी ही प्रथा चीन में भी है।—"जापान और चीन में गरम पानी से भिगोया हुआ कपड़ा अभ्यागत के हाथ-पाँव धोने या साफ़ करने के लिये दिया जाता है। यहाँ तरबूज़ या कुम्हड़े के बीज (बिना छिले), कच्चे सिंघाड़े और उबाले हुए कमलगट्टे खाने का रिवाज है।"
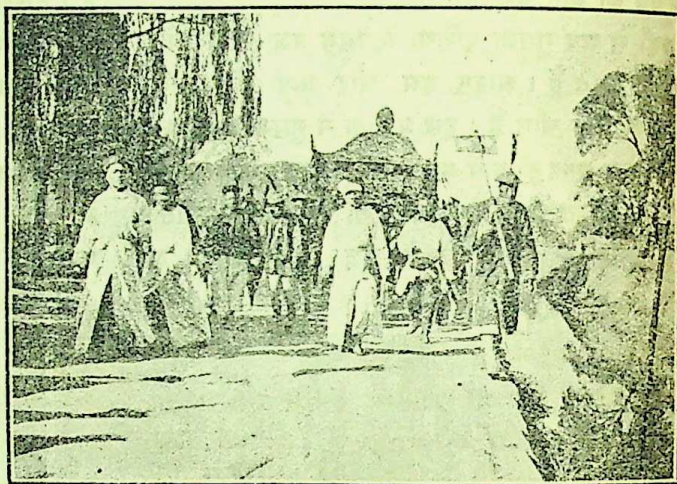
चीन में मुर्दे की बारात

चीन में महात्मा कनफ़्यूशियस की बड़ी प्रतिष्ठा है। इनको आचार-धर्म का प्रवर्तक समझना चाहिए। बहुत-से लोग कनफ़्यूशियस को किसी विशेष धर्म का प्रवर्तक समझते हैं। पर यह भूल है। इन्होंने आचार-धर्म के लिये कुछ सिद्धांत स्थिर कर दिए हैं; जैसे हमारे यहाँ मनु महाराज ने। धर्म तो चीन में भगवान् बुद्ध का ही माना जाता है। जिस प्रकार महाराष्ट्र-प्रांत में महात्मा रामदास के विचारों का प्रभाव है, और वह आचार-धर्म के किसी अंश में प्रवर्तक हैं, ठीक उसी प्रकार चीन में कनफ़्यूशियस और उनके सिद्धांत हैं। कनफ़्यूशियस ने व्यक्ति और समाज-धर्म के भीतर आनेवाली प्रायः प्रत्येक समस्या की व्याख्या, समाधान एवं स्पष्टीकरण किया है। गुप्तजी की पुस्तक से इस पर थोड़ा, किंतु स्पष्ट प्रकाश पड़ता है।

बहुतेरे लोगों को कदाचित् यह जानकर आश्चर्य हो कि चीन में मुर्दे की भी बारात निकलती है। मुर्दा ही एक अपशकुन माना जाता है, फिर उसकी बारात कैसी! पर इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। गुप्तजी ने पुस्तक

में 'पछाहीं क्षत्री भाइयों के हाँसा-तमासा' का उल्लेख इसे स्पष्ट करने के लिये कर दिया है। हमने भी कुछ देखा है। मुर्दा सदैव अपशकुन ही नहीं माना जाता। सधवा स्त्रियों के शव पर तो बुंदेलखंड में लाल वस्त्र डालते हैं, और विधवा स्त्रियों के शव पर सफ़ेद वस्त्र डालकर उसे श्मशान ले जाते हैं। पुरुषों के शव पर किस रंग का कपड़ा डाला जाय, इसका कोई ख़याल नहीं किया जाता। पर लाल वस्त्र से ढका हुआ शव शुभ माना जाता है, ख़ासकर यदि वह यात्रा के प्रसंग में मिले। हाँसा-तमासा तो मध्यप्रांत में भी देखने में आता है। छत्तीसगढ़ में इस प्रथा को बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। इससे भारतवर्ष और चीन, दोनों की उच्च अथवा बर्बर सभ्यता का मिलान किया जा सकता है। इससे हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इस प्रथा का आविर्भाव विहार अथवा बौद्ध-कालीन मगध के दक्षिण, उड़ीसा के उत्तर और छत्तीसगढ़ से संयुक्त प्रदेशों में कभी हुआ होगा, जहाँ बौद्ध-धर्म का आदि प्रचार हुआ था। बौद्ध-धर्म के साथ-साथ यह प्रथा भी भारतवर्ष से चीन में पहुँच गई होगी। हमारे ऐसा कहने का एक कारण यह भी है कि चीन में विवाह-पद्धति भी बिलकुल वैसी ही है, जैसी कि भारतवर्ष में। गुप्तजी स्वयं लिखते हैं—"टीपना मिलाने की प्रथा न होने पर भी चीन के ज्योतिषी वर-कन्या के भविष्य के सुख-दुःख एवं मेल-मिलाप की गुण-गणना करते हैं।" अंतर केवल इतना है कि हमारे यहाँ 'वरिच्छा' से विवाह पक्का समझा जाता है, और चीन में उस समय, जब लड़केवाला लड़की के लिये वस्त्र या सिर के आभूषण भिजवा देता है। हमारे यहाँ की चढ़ावा चढ़ाने की रीति से इसकी तुलना की जा सकती है। इसी प्रकार जन्म से लेकर मरण तक के सभी भारतीय संस्कार प्रायः सभी देशों में कुछ हेर-फेर के साथ स्वीकृत कर लिए गए हैं। अंतर केवल समय, परिस्थिति एवं सामाजिक विकास के कारण हो गया है। उदाहरण-स्वरूप मुसलमानों के ख़तने को ही लीजिए। पंडित कालीचरण शर्मा ने अपनी एक पुस्तक में मुसलमानों के रस्म-रिवाजों के भारतीयता के आधार पर बनाए जाने पर अच्छा प्रकाश डाला है। स्थानाभाव के कारण हम उसका विशेष वर्णन यहाँ नहीं देते। इसी प्रकार ईसाइयों की बपतिस्मा है। हमने स्वयं देखा है कि ईसाई लोग उस समय मूँज की मेखला और मृगचर्म की पट्टी का प्रयोग करते हैं। गंगाजल की जगह वे जार्डन-नदी के जल से काम लेते हैं। इससे जान पड़ता है कि भारतीय सभ्यता के आधार पर ही चीन आदि देशों की सभ्यता का निर्माण हुआ है।

कोरिया का मज़दूर (क्षणिक विश्राम की अवस्था में)
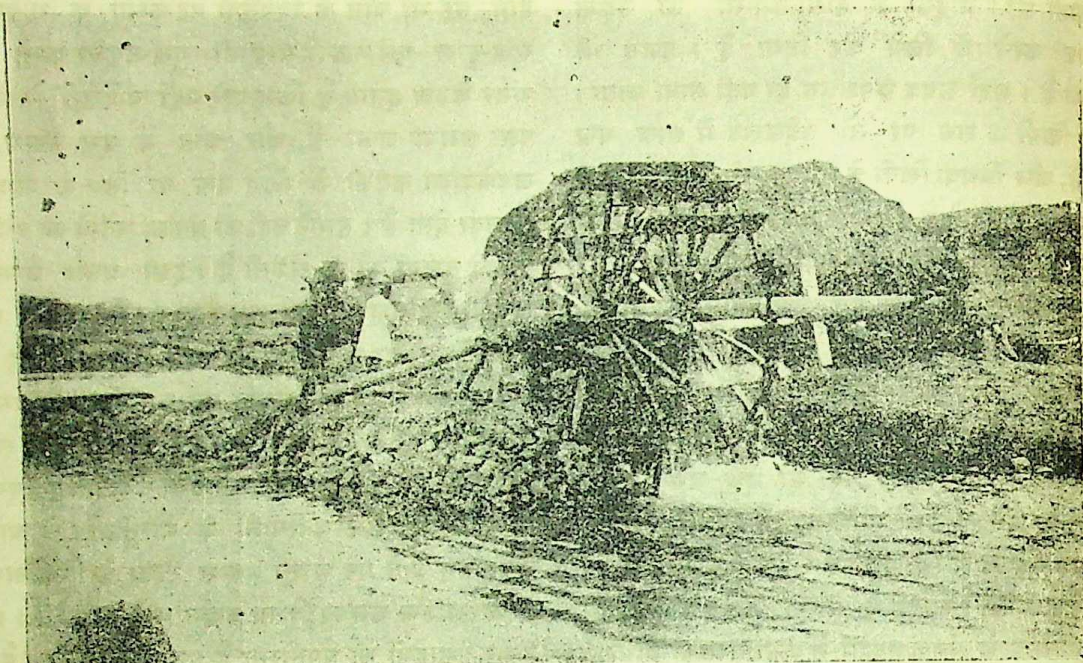
जल खींचने का यंत्र (कोरिया)

इसी प्रकार बलिदान आदि की प्रथा है, जिसका उल्लेख गुप्तजी ने पृथिवी-प्रदक्षिणा में किया है। इससे अनुमान यही होता है कि विदेशों की सभ्यता में भारतीय सभ्यता के ही तत्त्व व्याप्त हैं। अवश्य ही बलिदान की परिभाषा ही प्राचीन है; अन्यथा पश्चिमी देशों में बलिदान की क्या आवश्यकता है? वहाँ तो हत्या होती है, बलिदान नहीं। बलिप्रदान में एक प्रकार की वह शक्ति है, जो ठीक उसी प्रकार चतुर्दिक् को कंपित कर देती है, जिस प्रकार ॐ का उच्चारण। अवश्य ही विदेशों ने भारतवर्ष की सभ्यता को उधार लेकर अपना लिया है, इससे तो यही विदित होता है।

भारतीय ऋषियों की बनाई, चलाई एवं अपने द्वारा अपनाई हुई प्रथाओं को भारतवर्ष से गए हुए प्राचीन आर्यों के निर्बल वंशजों ने क़ायम तो रक्खा, पर उनका उद्देश्य न समझकर उनको एक परंपरा का रूप दे डाला। कालांतर में उनके स्वरूपों में विकार उत्पन्न होना स्वाभाविक है, जैसे कि प्राचीन मिसर, यूनान और इटली के त्योहारों में आज प्राचीनता के विकृत रूप देखे जाते हैं। इसी प्रकार क्रमशः बलिदान-सरीखी महत्त्व-पूर्ण प्रथा अंत में हत्या-मात्र रह गई। बलिदान का वास्तविक अर्थ पहले किसी सिद्धि के लिये साधक का स्वयं बलिदान था। बाद को वह पशुओं के बलिदान में बदल गया किंतु यहाँ तक भी उसमें प्रथा की असली आत्मा का प्रवेश बना रहा। पर मनुष्य की निर्बलता ने आगे चलकर उससे आत्मा को भी निकाल फेंका, और उसका रूप शुष्क पशुहत्या-मात्र रह गया। रूपांतर तो यहाँ तक हुआ है कि आज भी भारत के वैश्य-समाज में, किसी त्योहार के अवसर पर बेसन का पशु बनाकर उसका सिर काट दिया जाता है। भारतीय सभ्यता के इसी प्रकार के परिवर्तन और रूपांतर प्रायः संसार-भर में किसी-न-किसी रूप में मिल सकते हैं। थोड़ा समझने और ध्यान देने की ज़रूरत है।

उपसहार

यह पृथिवी-प्रदक्षिणा का वर्णन आज का है। समय ने परिवर्तन-चक्र में पड़कर कौन-सा रूप धारण कर लिया है, उसी का यह दिग्दर्शन है। अस्तु, उपसंहार-स्वरूप हम यह बतलाते हैं कि इस पुस्तक का पारायण करने से क्या जाना जाता है—

(१) संसार के आज के वैभव के सूत्रधार विदेशी हैं।

(२) व्यापार की कुंजी विदेशियों के हाथ में है।

(३) समुद्र पर आज विदेशियों—विशेष कर योरपियनों—का ही आधिपत्य है। इस आधिपत्य के जितने उपकरण हो सकते हैं, उनमें से एक भी भारतीयों के हाथ में नहीं है।

(४) भारतवर्ष की नहीं, आर्यों की प्राचीन सभ्यता को विदेशों ने इस प्रकार अपनाया है कि उसे अपने ढाँचे में ढालकर उसका रूपांतर ही कर दिया है।

(५) गुलाम और स्वतंत्र देशों में कितना अंतर है, तथा स्वतंत्र देशों की दृष्टि में उनकी कितनी क़दर है, उनकी इन पर कितना अधिक नियंत्रण है, हमारा ह्रास कहाँ तक हो चुका है, इसे हम विदेशों में ही देख सकते हैं।

(६) सभ्यता के आदि-सूत्रधार एशिया-निवासियों को समाज के सामने पतित करने की कितनी ही कोशिशें विदेशियों द्वारा की जाती हैं।

(७) भारतवर्ष के दरिद्र एवं पराधीन बने रहने के कारण क्या हैं, और वे किस प्रकार कहाँ तक दूर किए जा सकते हैं।

(८) पाश्चात्य देश इतने सुखी हैं कि उनका जीवन सदैव हास-विलास में बीतता है। इसके विपरीत पूर्वी देश पेट की आग बुझाने से ही अवकाश नहीं पाते।

(९) प्राचीन भारत का व्यापार, कला-कौशल एवं कारीगरी कितनी बढ़ी-चढ़ी थी, और आज उसका स्थान संसार के दरबार में कितना नीचे है।

(१०) गोरी जातियों के राजनीतिक ही नहीं, सामाजिक एवं धार्मिक अत्याचार भी काली जातियों पर होते हैं। रंग-भेद की विकट पहेली संसार में सर्वत्र व्याप्त है।

(११) आर्य-धर्म के रूपांतरित धर्म।

(१२) बौद्धों के प्रति इतर-धर्मावलंबियों के विदेशों में उपहास-पूर्ण भाव।

(१३) विदेशों से सीखने योग्य बातें।

(१४) कुछ अपूर्णताएँ।

मतलब यह कि इन सभी बातों पर इस पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने प्रसंगानुसार प्रकाश डाला है, जिनको योग्य पाठक पुस्तक पढ़ने के बाद कुछ विस्तृत रूप में जान सकते हैं। लेख बहुत अधिक बढ़ जाने के भय से हमने सब बातों का उल्लेख केवल संकेत-रूप में ही किया है।

अंत में हमारा कहना यही है कि पुस्तक बहुत अच्छी है। उसका अंतरंग और बहिरंग, दोनों सुंदर हैं। यदि द्वितीय संस्करण कुछ सस्ता कर दिया जाय, या इसी संस्करण के मूल्य में (अगर गुंजाइश हो) यथासंभव कमी कर दी जाय, तो बहुत अच्छा हो। इससे इसका अधिकाधिक प्रचार होगा। हम हिंदी-भाषा के प्रेमियों से अनुरोध करते हैं कि वे दस-बीस पुस्तकें न मँगाकर केवल यही एक पुस्तक मँगावें। उनको पछताना नहीं पड़ेगा। उनका अर्थ-व्यय सार्थक होगा।

मातादीन शुक्ल

सूक्ति-सुधा

एक दिन मोहन प्रभात ही पधारे, उन्हें
देख फूल उठे हाथ-पाँव उपवन के ;
खोल-खोल द्वार फूल घर से निकल आए,
देखके लुटाए निज कोष सुबरन के।
वैसी छवि और कहीं खोजने सुगंध उड़ी,
पाई न, लजाके रही बाहर भवन के ;
मारे अचरज के खुले थे, सो खुले ही रहे,
तब से मुँदे न मुख चकित सुमन के।

रामनरेश त्रिपाठी

ललाट-सौंदर्य

गोल, अनमोल, अति स्वच्छ अच्छ मानो बन्यो,
शोभा-सर दीठि[1] अवगाहिबो[2] को घाट है ;
समता-उचाँट[3] लह्यौ, चंद थकि आधो रह्यो,
तौहूँ पर्यो मंद, लखि याको ठाठ-बाट है।
अलक-झलक—अहि-शिशु जनु सरकत—
अमी[4] की-सी टी[6]की नीकी चाटिबे की चाँट है ;
रति-पति[8]-पाट है, वा प्रेम की सुबाट यह,
रूप-भरी हाट, तेरो सुघर ललाट है।

रामशरण गुप्त "शरण"

---

१. दृष्टि। २. न्हाने का। ३. शौक़। ४. रौनक़। ५. अमृत। ६. गुलाल की बूँद। ७. इच्छा। ८. कामदेव का सिंहासन। ९. मार्ग। १०. दूकान, बाज़ार।

स्वराज्य

स्वरकार और शब्दकार—"सनदपिया"] [**स्वरलिपिकार—पं॰ सर्वसुख गोस्वामी**

भैरवी—तीन ताल

गीत

अब तोरी बाँकी चितवन मेरो मन बस कीनो ।
प्यारी-प्यारी बतियाँ करत ;
"सनद पिया" मोसों बाराजोरी कीन्हो, डार दीनो
मोपे जादू टोना कछु करके । श्याम ।

स्थायी—

२				०				३				×			
ऩि॒	सा	ग॒	म	प	प	प	ध॒	नि॒	ध॒	प	म	ग॒	रे॒	सा	रे
अ	व	तो	री	बाँ	—	की	—	हाँ	—	रे	—	श्या	—	म	—

पूरी स्थायी

ऩि॒	सा	ग॒	म	प	प	प	ध॒	नि॒	नि॒	ध॒	प	प	ध॒	प	ध॒
अ	व	तो	री	बाँ	की	—	—	चि	त	व	न	मे	रो	म	न
म	प	ग॒	म	प	नी॒	ध॒	प	म	प	ग॒	म	ग॒	रे॒	सा	रे
ब	स	की	न्हो	प्या	—	री	प्या	—	री	ब	ति	याँ	क	र	त

अंतरा

ऩि॒	सा	ग॒	म	प	प	प	ध॒	नि॒	ध॒	प	म	ध॒	ध॒	नि॒	सां
अ	ब	तो	री	बाँ	—	की	—	हाँ	—	रे	—	स	न	द	पि
सां	सां	सां	गं॒	गं॒	रें॒	रे॒	रें॒	सां	नि॒	सां	सां	ध॒	सां	नि॒	सां
या	—	मो	सों	बा	रा	जो	री	की	न्हो	डा	र	दी	नो	मो	पै

धृ	नि	प	धृ	प	नि	धृ	प	म	प	ग	म	ग	रे	सा	रे
जा	दू	—	टो	ना	—	क	छु	क	र	के	—	श्या	—	—	म

स्वर-लिपि के संकेत

(स्वर)

१. जिन स्वरों के नीचे बिंदु हो, वे मंद्र-सप्तक के, जिनमें कोई बिंदु न हो, वे मध्य-सप्तक के, तथा जिनके शीर्ष में बिंदु हो, वे तार-सप्तक के समझे जायँ । जैसे—सा, सा, सां ।

२. जिन स्वरों के नीचे लकीर हो, उन्हें कोमल समझिए। जैसे—रे, गा, धा, नि । जिनमें कोई चिह्न न हो, वे तीव्र हैं । जैसे—रे, गा, धा, नि ।

३. मध्यम कोमल का चिह्न 'मा' और मध्यम तीव्र का चिह्न 'मा' है ।

(ताल)

१. सम का चिह्न × है, ताल के लिये अंक समझिए, और ख़ाली का द्योतक ० है ।

२. ‿ इस चिह्न में जितने स्वर रहें, वे एक मात्रा में गाए या बजाए जायँगे । जैसे—सारे ।

३.— यह दीर्घ मात्रा का चिह्न है । जिस स्वर या वर्ण के आगे यह चिह्न हो, उसे एक मात्रा-काल तक अधिक गाइए या बजाइए ।

---

१. क्या राजापुर का रामचरितमानस तुलसीदास के हाथ का लिखा है ?

धुरी के वर्ष ४, खंड १, संख्या १ में ऊपर लिखे विषय पर हमारे मित्रवर पंडित रामनरेश त्रिपाठी का एक विचार-पूर्ण लेख छपा है, जिसमें पंडितजी ने राजापुर-वाली पोथी में कुछ त्रुटियाँ दिखाकर यह सिद्ध करना चाहा है कि यह प्रति गोस्वामीजी के हाथ की लिखी नहीं है, कदाचित् रघुवर तिवारी के हाथ की लिखी हो। इस लेख में उसी लेख की दो-एक बातों पर समाधान करने का प्रयत्न किया जाता है।

मैंने सबसे पहले ईसवी सन् १८८७ में इस पोथी के दर्शन किए, जब मैं इलाहाबाद डिवीज़न के स्कूलों का असि-स्टेंट इंस्पेक्टर था, और दौरे में राजापुर गया था, उससे कुछ ही पहले मिस्टर पोर्टर ने, जो उस समय कर्वी के ज्वाइंट-मैजिस्ट्रेट थे, और बाद को सर लेसली सलीम पोर्टर के नाम से संयुक्त-प्रांत के लेफ़्टिनेंट गवर्नर हुए, हिंदी-भाषा के परम प्रेमी सर जॉर्ज ग्रियर्सन के लिये इस पोथी की शुद्ध नक़ल कराई थी, जिसके प्रत्येक पृष्ठ पर नक़ल करनेवाले के हस्ताक्षर हैं। यह प्रति सर जॉर्ज ग्रियर्सन के पास है। इस अपूर्व पोथी में १७० पन्ने अथवा ३३६ पृष्ठ हैं। पृष्ठों की लंबाई १२ इंच, और चौड़ाई ४$\frac{3}{4}$ इंच है। प्रत्येक पृष्ठ में ३२ अक्षरों और ४० मात्राओं की सात-सात पंक्तियाँ हैं, जिनमें लगभग सात चौपाइयाँ और एक दोहा रहा है। इसी के साथ एक पत्रा और बँधा है, जिस पर हनुमान्जी की स्तुति और कुछ और भी लिखा है, तथा किसी भक्त कायस्थ का लिखा और रक्खा हुआ है। यह पोथी दर्शन करनेवाले भक्तों के चढ़ाए अनेक प्रकार के बेठनों में बँधी रहती है। जीर्ण होने के कारण आजकल पत्रों के किनारे-किनारे ख़ाली जगह पर चिटें चिपका दी गई हैं, और पोथी एक लोहे की संदूक़ में रक्खी है, जिसके ऊपर श्रीहनुमान्जी का चित्र भी बना है।

इस पोथी में एक विशेष बात यह है कि यह हरताल से शुद्ध की गई है। फिर भी कहीं-कहीं कुछ अक्षर छूट गए हैं, जो हमने अपने संपादित ग्रंथ में, कोष्ठ में, लिख दिए हैं। मिस्टर पोर्टर ही के प्रयत्न से, उसी समय, इस पोथी के दस पृष्ठ का छाया-चित्र लिया गया था, जिसे सर जॉर्ज ग्रियर्सन ही ने विलायत से छपाकर भेजा था, और जो मेरे संपादित अयोध्याकांड में लगा है। यही चित्र कुछ बड़े आकार में सर जॉर्ज की 'माडर्न वर्नाक्युलर लिट-रेचर ऑफ़ हिंदुस्तान'-नामक पुस्तक में लगा है।

जब से मैंने राजापुर की पोथी देखी, तब से मेरे मन में प्रबल इच्छा हुई कि इसकी शुद्ध प्रतिलिपि छपा दी जाय। मैंने परम श्रद्धास्पद स्वर्गवासी मुंशी नवलकिशोर और तत्का-लीन अयोध्यानरेशजी से भी कहा। पर जब सफलता की कोई

आशा न रही, तो सन् १८०६ में संयुक्तप्रांत के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर साहब को एक प्रार्थना-पत्र भेजा कि वह लोकल गवर्नमेंट से फ़ोटो ज़िंको प्रोसेस से इसके छपाने का प्रबंध करने की सिफ़ारिश करें। यह पत्र दो-तीन वर्ष तक डाइरेक्टर साहब के दफ़्तर में पल्टे खाता रहा, और अंत को दाख़िल-दफ़्तर कर दिया गया। आख़िर यही निश्चय किया गया कि आप ही इसके छपाने का प्रबंध किया जाय। पोथी के छाया-चित्रों के अतिरिक्त गोस्वामीजी का चित्र, उनकी कुटी, असी-घाट पर उनका मंदिर, अयोध्या का कनकभवन, पर्णकुटी, राघव-प्रयाग, चित्रकूट आदि के फ़ोटो-चित्र भी सर जॉर्ज ही की निगरानी में विलायत से छपकर आए। चार वर्ष हुए, सर्वांग-सुंदर रूप से पोथी छप गई, तथा शिक्षा-विभाग की कृपा से स्कूलों और पुस्तकालयों में पहुँच गई। अब उसकी कोई प्रति बिक्री के लिये नहीं है। इसका चित्र मेरे संपादित ग्रंथ में लगा है। उस जगह को अब यमुना ने काट दिया है, और इससे कुछ दूर हटकर मंदिर बनाया गया है।

राजापुर की प्रति के प्राचीन होने में संदेह नहीं। इसके शुद्ध होने में भी संदेह नहीं। पोथी आद्योपांत हरताल से शुद्ध की गई है, और परंपरा से गोस्वामीजी के हाथ की लिखी मानी तथा पूजी जाती है। उनके हाथ की लिखी होने का सबसे बड़ा प्रमाण एक और है। उनके हाथ का लिखा पंचनामा अब तक महाराज काशी-नरेश के दरबार में रक्खा है। उसके ऊपर की ६ पंक्तियाँ उन्हीं के हाथ की लिखी कही जाती हैं। इन पंक्तियों के अक्षर राजापुर की पोथी के अक्षरों से मिलते-जुलते हैं। पोथी जिनके अधिकार में है, उनके पास सम्राट् अकबर की दी हुई, गोस्वामीजी की कुटी के नीचे, यमुना के घाट उतारे की माफ़ी है, जिसको ब्रिटिश-सरकार ने ज़ब्त नहीं किया, और, जैसा मैंने अपने ग्रंथ की भूमिका में लिख दिया है, आपस के झगड़ों के कारण उसका प्रबंध अपने हाथ में ले लिया है। उसके ६८४) वार्षिक गणपतिजी के वंशजों को अब तक दिया जाता है। यह भी उस पोथी की विशिष्टता का एक प्रमाण ही है। इन प्रमाणों के होते हुए पोथी पर संदेह करने के लिये बहुत ही पुष्ट प्रमाण चाहिए। यहाँ पहले हम छोटी शंका पर विचार करते हैं। पंडितजी ने यह भी सुना है कि राजापुरवाली प्रति तुलसीदास के साथियों में से एक रघुबर तिवारी के हाथ की लिखी हुई है। आजकल रघुबर तिवारी का नाम सुनकर लोग चौंक पड़ेंगे; परंतु रघुबर तिवारी के हाथ की वि० १७०४ (गोस्वामीजी के परम पद पाने से २४ ही वर्ष पीछे) की लिखी पोथी के ३ पृष्ठों का फ़ोटो-चित्र मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदोस्तान में दिया हुआ है, और उसके एक-एक पृष्ठ का अँगरेज़ी रूपांतर भी छपा है। पहला पृष्ठ बालकांड का है, दूसरा किष्किंधा और तीसरा लंका का। पहले में लेखक का नाम नहीं है। इससे यह अनुपयोगी समझकर छोड़ दिया जाता है। दूसरे और तीसरे पृष्ठों की नक़ल नीचे दी जाती है—

२. (स) सुभत परम पद पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥
दोहा—भवभेषज रघुनाथ जस, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥
सोरठा—नीलोत्पल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिय तासु गुन-ग्राम, जासु नाम अघखग बधिक॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषबिध्वंसने बिसुद्ध संतोष संपादिनी नाम चतुर्थस्सोपानः समाप्तः। शुभमस्तु संवत १७०४ समए पौष शुदि द्वादसि लिषीतं रघु तिवारी कास्यां।

३. (लंकाकांड का अंत)

... ...दास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो॥
यह रावनारिचरित्र पावन रामपदरतिप्रद सदा।
कामादिहर बिज्ञानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा।
दोहा—समर बिजय रघुपतिचरित सुनहिं जे सदा सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिनहिं देहिं भगवान॥
यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनायक नामु तजि नहिं कछु आन अधार॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषबिध्वंसने विमल विराग संपादिनी नाम षष्ठः सोपानः समाप्तः। शुभमस्तु संवत १७०४ समए। माघसुदि प्रतिपद लिषीतं रघु तीवारी कास्यां लोलार्क समीपे। श्रीरामोजयति। श्रीविश्वनाथाय नमः। श्रीबिंदुमाधवाय नमः।

राजापुर की पोथी पर लेखक के हस्ताक्षर नहीं हैं। इस प्रति में प्रत्येक कांड के अंत में लेखक का नाम दिया हुआ है। कहीं रघु तिवारी हैं, कहीं रघु तीवारी। दोनों के अक्षरों में आकाश-पाताल का अंतर है। राजापुर की पोथी बुंदेलखंडी लिपि में है, जैसी कि आजकल प्रचलित है। राजापुर

की पोथी में 'र' का रूप सदा न है। रघु ने र और न, दोनों रूप लिखे हैं। इससे सिद्ध है कि राजापुर की पोथी रघु (वर) तिवारी की लिखी नहीं हो सकती। रघु तिवारी काशी के रहनेवाले संस्कृत से अनभिज्ञ लेखक-मात्र थे।

त्रिपाठीजी की दूसरी शंका यह है—"राजापुर की प्रति में छः चौपाइयों के बाद दोहा है, सभा की प्रति में आठ चौपाइयों के बाद। तुलसीदास ने अयोध्याकांड में प्रायः आठ चौपाइयों के बाद एक दोहा रखने का नियम रक्खा है; पर राजापुर की प्रति में उपर्युक्त स्थान पर यह क्रम नहीं है।"

कुछ चौपाइयों के पीछे एक दोहा लिखकर उपाख्यान लिखने का इतिहास हमारे फ़ैज़ाबाद-कॉलेज के शिष्यवर स्वर्गवासी बाबू जगन्मोहन वर्मा ने चित्रावली की भूमिका में लिखा है। उसे सहृदय पाठक देख लें, यहाँ उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं। वर्माजी का सिद्धांत यह है कि यह प्रणाली मुसलमान हिंदी-कवियों की निकाली हुई है। पहले पाँच चौपाई के पीछे एक दोहा लिखा गया। कुछ दिन पीछे मलिक मोहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में सात चौपाई के पीछे एक दोहा लिखा। चौपाई संस्कृत-शब्द चतुष्पदी का अपभ्रंश है। इसमें चार पद होने चाहिए* पाँच और सात चौपाई देखकर वर्माजी यह अनुमान करते हैं कि "मुसलमान कवि संस्कृत न जानते थे। गोस्वामीजी संस्कृतज्ञ थे, इसलिये उन्होंने आठ (वास्तव में चार ही) चौपाई पीछे एक दोहा रक्खा।" (परंतु विशेष कर अयोध्याकांड ही में और बालकांड के सीता-स्वयंवर में) हमको यह ठीक नहीं जचता। गोस्वामीजी ने यह परिपाटी निकाली होगी †;

परंतु आप ही इसके पाबंद न रहे। अयोध्याकांड ही में एक स्थान पर ६ चौपाइयों पर एक दोहा है, लंकाकांड (इंडियन-प्रेस की छपी पोथी) के पृष्ठ ५०१ में १५ चौपाइयों के पीछे, पृष्ठ ५०२ में १३ चौपाइयों के पीछे तथा पृष्ठ ५०३ में ११ चौपाइयों के पीछे एक दोहा है।

रामायण के प्रसिद्ध प्राचीन टीकाकार मुंशी सुखदेवलालजी कहते हैं, गोस्वामीजी ने यह कांड सबसे पहले लिखा था, पीछे और कांड समय-समय पर रचकर ग्रंथ को पूरा कर दिया। हमको भी कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। इसके कुछ प्रमाण ये हैं—

१. इसके आदि में प्रधान रूप से शिव की वंदना है।

२. इसका पहला दोहा इस बात का सूचक है कि ग्रंथकार ने श्रीरघुनाथजी का यश वर्णन करने का आरंभ यहीं से किया।

३. इसमें शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज और गरुड़-काकभुशुंड का संवाद नहीं है।

४. यह कांड साहित्य के विचार से सभी कांडों की अपेक्षा सर्वांग सुंदर है, अलंकारों से परिपूर्ण है, और इसमें कवि ने भरत-भक्ति के अतिरिक्त अपनी उत्कृष्ट कविता-शक्ति दिखलाने का भरपूर उद्योग किया है।

५. इसमें साधारणतः आठ चौपाइयों के पीछे एक दोहा तथा पचीसवें दोहे की जगह एक छंद, और एक सोरठा है। कई जगह सात ही चौपाइयों पर और एक जगह छः-छः ही चौपाइयों पर दोहे हैं।

गोस्वामीजी ने पहले-पहल आठ चौपाइयों पर एक दोहा लिखने की रीति भले ही निकाली हो, परंतु अवसर पड़ने पर उसे छोड़ भी दिया। अयोध्याकांड ही में तापस का प्रसंग आ जाने से ११वें के बदले २६वें दोहे की जगह छंद पड़ गया है।

इससे यह मानना कि जिसमें आठ से कम चौपाइयाँ हों, वह शुद्ध प्रति नहीं है, न्याय-संगत नहीं। कमी पूरी करने का उद्योग ऐसा ही है, जैसे

गाधि-सुवन सब कथा सुनाई;
जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।

के पीछे गंगावतरण की कथा का जोड़ देना। गोस्वामीजी से पहले जायसी ने सात ही चौपाइयों के पीछे एक दोहा

---

* गुजराती भाषा में इसे चूपई कहते हैं, और इसमें चार चरण होते हैं। चूथा खंड तणू आरंभ, बोलई पद्मनाम कवि बंभ; संतोखिया सजन संजोग, तू पातसाह थिउ आरोग।

† गोस्वामीजी के पीछे के कवियों ने किसी नियम का प्रतिपालन नहीं किया। चित्रावली (वि० १६७०) का उसमान जायसी का अनुयायी है, और सात चौपाई के पीछे एक दोहा लिखता है। भूपति (वि० १७४४) दशम स्कंध (भागवत) के अनुवाद में गोस्वामीजी का अनुकरण करता है। सबलसिंह चौहान ने (वि० १७१८-८१) दस चौपाई का एक दोहा लिखा है, और व्रजविलास के व्रजवासीदास (वि० १८२७) ने बारह चौपाइयों पर एक दोहा और एक सोरठा लिखना उचित माना है।

लिखा है। यदि गोस्वामीजी ने कहीं-कहीं वही बात रक्खी, तो कौन-सा पाप किया ?

श्रीअवधवासी सीताराम

× × ×

२. प्रेमिक का प्रलाप

हृदयेश्वर !

जिस प्रकार कृपण अपने निष्ठुर करों से अपने धन की रक्षा करता है, उसी प्रकार हे हृदय-धन ! मैंने तुझे अपने मानस-पटल पर अंकित कर रक्खा है।

जिस प्रकार एक भक्त इष्टदेव की साधना में तन्मय हो जाता है, उसी प्रकार मैं तेरा अधरामृत पान करते समय तुझी में लीन हो जाता हूँ।

तेरे अधर मेरे प्रार्थना के श्लोक हैं।

तेरे नेत्र मेरे प्रकाश के देवालय हैं।

मैं तेरी कोमल उँगलियों का चुंबन करता हूँ। वे भजन की माला हैं। तेरी हाथ की हथेलियाँ मेरी प्रार्थना की पुस्तक के पृष्ठ हैं। तेरे शब्द मेरे लिये धर्मशास्त्र हैं। तेरी शुद्धता मेरा वैभव है। तेरी मधुरता मेरे लिये आशीर्वाद है। तेरा परमात्मा मेरा इष्टदेव है। तुझ पर परमात्मा की दया का आविर्भाव हुआ है। तू मेरा अनन्यतम आनंद है।

सुगंधित-सुमनों की सुरभि-सागर का क्रंदन तेरे शब्द हैं। तेरे केश स्वर्णरंजित ताज हैं।

कांचन के दीपाधार में प्रज्वलित दीप-शिखा की भाँति तेरी आत्मा तेरे शरीर में है। तेरे ही द्वारा सत्य, प्रेम, और शांति का प्रकाश हुआ है।

आकाशमंडल, नक्षत्र, सूर्य और चंद्र मुझे प्रेम में पागल बनानेवाले तेरे आगे कुछ नहीं के बराबर हैं।

हेमचंद्र जोशी

× × ×

३. आश्रय-दान

कंटक-कर्दम-पूरित मग है, छाया घोर अँधेरा ;
वृक्ष विशालों की शाखाओं पर, लेते विहग बसेरा।
प्रेम-पंथ पर हृदय-बटोही, चलता धीरे-धीरे ;
आया कठिन परीक्षा-नद के, नीरव निर्जन तीरे।
उसने सोचा, श्रांत-क्लांत हूँ—कैसे पार करूँगा ?
नहीं एक भी नौका, नाविक, प्राण यहीं तज दूँगा ;
देख रहा था अंतरिक्ष में, मिलकर चतुर चितेरा ;
कहा बटोही से—"आ जा, यह खुला द्वार है मेरा!"

जगन्नाथ मिश्र "कमल"

× × ×

४. एक शंका

गत आश्विन-मास की माधुरी में अवधवासी श्रीसीतारामजी का 'अहल्या का आश्रम'-शीर्षक एक निबंध छपा है। इसके आरंभ ही में आपने लिखा है—"महर्षि बाल्मीकि के आश्रम के संबंध में हमारा एक लेख अन्यत्र छपा था। उसमें हमने लिखा है कि अहल्या के आश्रम दो हैं—एक विशाला (या बैशाली ?)* से यज्ञपाट जाते हुए रास्ते में, जो अब अहियारी के नाम से प्रसिद्ध है ; और दूसरा बक्सर से एक मील पूर्व गंगा-तट पर अहिरौली-गाँव में †।"

मगर मैं समझता हूँ, आपने यहाँ कुछ गोलमाल-सा कर दिया है, और वह इस तरह कि "और दूसरा (आश्रम) बक्सर से एक मील पूर्व गंगा-तट पर अहिरौली-गाँव में है" लिखकर अहिरौली-गाँव का परिचय आपने फुटनोट में इस तरह दिया है—"जहाँ राजा जनक वैदिक यज्ञ कर रहे थे। यह स्थान जनकपुर से सात कोस पर नेपाल-राज्य में सप्तरी-परगने के एक वन में है।"

मगर यह कैसे संभव है ? कहाँ बक्सर से एक मील पूर्व गंगा-तट और कहाँ जनकपुर से सात कोस पर नेपाल-राज्य का एक वन ! दोनों का एक होना असंभव है।

अतएव क्या आशा की जाय कि किसी अगली संख्या में श्रद्धेय श्रीसीतारामजी उपर्युक्त शंका का समाधान कर बहुतों का असमंजस दूर करेंगे ?

श्रीनागेंद्रनारायणसिंह

× × ×

५. नायिका और प्याला

प्याले रे, दृढ़ता महा यह नहीं तेरी क्षमा-योग्य है ;
पीने को मधुरा सुधा अधर की प्राणेश ही योग्य है।

* मुज़फ़्फ़रपुर-ज़िला का बिसाढ़ (या बसाढ़ ?)

† जहाँ राजा जनक वैदिक यज्ञ कर रहे थे। यह स्थान जनकपुर से सात कोस पर नेपाल-राज्य में सप्तरी-परगने के एक वन में है। इसको धनुसा कहते हैं। यहाँ अब भी एक बड़ा धनुष-खंड पड़ा है।

जो संलग्न किया तुझे शठ, यही मेरा बड़ा दोष है ;
तोड़ूँगी तुझको इसी क्षण, यहीं, तू दंड के योग्य है ।

प्याला—
तोड़ो क्यों मुझको, सुनो सुनयने, पाए महा दुःख हैं ;
झेले लोह-प्रहार—पाद कितने, घूँसे घने घोर हैं ।
तद्यांगार तपे पड़े हम रहे, तोपे हुए धूल से ;
लाए हैं जल आपको, मुदित हो, क्या दंड के योग्य हैं ?

अनंतराम त्रिपाठी

× × ×

६. योरप के देशों में कुत्ते

योरप के देशों ने उन्नति के पथ का अनुसरण कर प्रायः सभी आवश्यक अंगों की पूर्ति की चेष्टा की है । प्रत्येक वस्तु द्वारा लाभ और हानि का विधान निकाल-कर लाभदायक पदार्थ को उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचा देना योरपियनों के चरित्र की एक विशे-षता है । इसी स्वावलंब और चारित्रिक बल ही के आधार पर आज योरपियन लोग संसार के सब महादेशों के निवासियों से संख्या में इतने कम होते हुए भी सबसे अधिक धनी, सबसे बड़े व्यवसायी और पृथ्वी के बलिष्ठतम राष्ट्रों में गिने जाते हैं । सच पूछो, तो यह उनके प्रबल अध्यवसाय का ही फल है । योरप के देशों में कुत्तों का क्या स्थान है, उनसे कैसे बड़े-बड़े काम लिए जाते हैं, यहाँ पर यही बतलाना है । हमारे यहाँ सनातनधर्मी हिंदुओं में कुत्ता 'अछूत' माना जाता है । कुत्ते का स्पर्श-मात्र, दिग्गज पंडितों का कथन है, स्नान कर डालने के लिये काफ़ी है । कुत्ता ऐसा भ्रष्ट जीव है ! एक ओर तो उसमें यह 'अछूत-पन' है, और दूसरी ओर ऐसा सुन पड़ता है कि कुत्ता तो श्रीभैरवजी का वाहन है—दत्तात्रेय महाराज का गुरु है । बातें दोनों ही ठीक हैं; पर अमल में लाई जानेवाली बात वही है, जो पहले कह चुका हूँ अर्थात् कुत्ता अस्पृश्य माना जाता है ! क्यों ? कारण यही कि पंडित
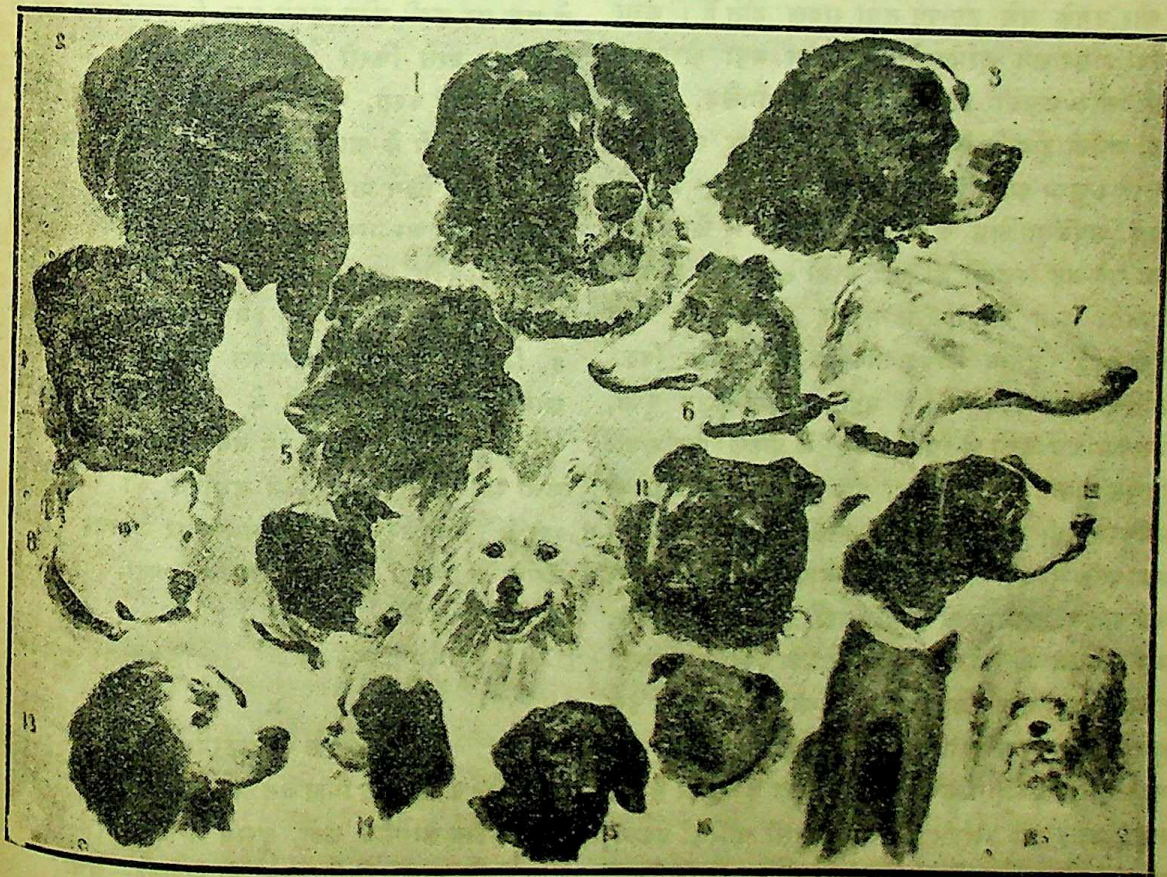
भिन्न-भिन्न जातियों के कुत्ते

लोग ऐसा समझते हैं, अतएव उनके आज्ञा-पालक शिष्य एक स्वर से बिना विचार किए उसकी पुष्टि कर रहे हैं। पर ऐसा करना कहाँ तक उचित है, यह जानने के लिये पहले लाभ और हानि हमको समझ लेनी चाहिए।

योरपवाले कुत्तों को केवल फ़ैशन की वस्तु नहीं, जीवन की लाभदायक तथा आवश्यक सामग्री समझते हैं। जिस प्रकार योरप के गौरांगों ने अपनी जाति की उन्नति, शिक्षा, व्यवस्था इत्यादि की ओर ध्यान देकर अपनेको इतना उन्नतिशील बना लिया है, वैसे ही उन्होंने अपने देश के पशुओं की दशा सुधारने, उनकी नस्ल अच्छी करने और रक्षा करने की भी पूरी-पूरी व्यवस्था की है। समय-समय पर योरप होकर लौटनेवाले भारतीय वहाँ के हृष्ट-पुष्ट, सुंदर-सुडौल जानवरों का वर्णन कर सच्ची दशा का दिग्दर्शन करा चुके हैं! कुत्ता और गऊ तो योरपियनों की विशेष सावधानी की चीज़ें हैं! गऊ से दूध और मक्खन मिलता है, जिससे वे और उनके बच्चे हृष्ट-पुष्ट तथा सबल होते हैं। कुत्ता अपना प्रतिपालन करनेवाले स्वामी का बड़ा ख़ैरख़्वाह होता और उसकी रक्षा करता है। इँगलैंड, फ़्रांस, रूस, जर्मनी इत्यादि देशों में कुत्ते रखना एक आवश्यक बात है। कुत्ता आपत्ति के समय, हमला किए जाने के समय, अपने मालिक के शत्रु की जान ही ले लेता है। कुत्ता बड़े-बड़े ख़ज़ानों की रक्षा करता है। योरप के चोरों को चोरी करते समय जितना डर 'ब्लड-हाउंड' कुत्ते से रहता है, उतना शायद तोप के गोले और विकट संतरियों के पहरे से भी नहीं। ब्लड-हाउंड कुत्ता, जिसका चित्र कुत्तों के चित्र नं० २ में पाठक देख सकते हैं, एक भयानक आकार का जीव है। एक तो इसकी भयंकरता ही भय का संचार करती है; दूसरे इसकी घ्राण-शक्ति भी बड़ी तीव्र होती है। आप लखनऊ से कानपुर चले आइए, अपना एक रूमाल वहाँ छोड़े आइए। बस, उसी रूमाल को सूँघकर ब्लड-हाउंड आपकी खोज करता हुआ कानपुर तक चला आवेगा। इसीलिये चोरों को इस कुत्ते से बड़ा भय रहता है। मि० ब्लैक के जासूसी उपन्यासों में पाठकों ने उनके ब्लड-हाउंड कुत्ते का वृत्तांत पढ़ा होगा। इस ब्लड-हाउंड ने पचासों चोरियाँ पकड़ीं, कई बार मि० ब्लैक के शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिए। सैकड़ों बदमाशों और दुर्दमनीय डाकुओं को मि० ब्लैक ने उस कुत्ते की सहायता से गिरफ़्तार कर सुयश कमाया। कुत्ते की स्वामिभक्ति का यह अच्छा परिचय है।

चित्र में कुल १८ प्रकार के कुत्तों के चित्र दिए हुए हैं। ये कुत्ते भिन्न-भिन्न योरप के देशों में पाए जाते हैं! इनमें मुख्य दो जाति के कुत्ते हैं—एक तो, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, 'ब्लड-हाउंड', और दूसरा नं० ७ का 'रशियन कुत्ता'। यह रशियन कुत्ता हिंदुस्तानी गधे के बराबर ऊँचा, और हाथी के समान ताक़तवर होता है। जिन्होंने रशिया का इतिहास थोड़ा भी पढ़ा है, वे जानते हैं, उस देश में कैसे बीहड़ जंगल हैं, और उन जंगलों में वहाँ के भेड़िए कैसा उपद्रव मचाए रहते हैं। ये भेड़िए—संसार-प्रसिद्ध सफ़ेद रूसी भेड़िए—मनुष्य को—मनुष्यों के झुंड-के-झुंड को—सफ़ाचट कर जाने की ताक़त रखते हैं! यह रूसी कुत्ते ही का दम है कि वह सावधानी के साथ उन दुर्दांत भेड़ियों से अपने मालिक की रक्षा करता है! कुत्तों ही के बल पर रूसी लोग अपने उस विस्तृत बीहड़ देश में तिजारत करते फिरते हैं! ये कुत्ते केवल भेड़ियों से रक्षा ही नहीं करते, गाड़ियों में जोते जाकर सवारी को बर्फ़ की चट्टानों के आर-पार भी ले जाते हैं! रूसी कुत्ता रूसवालों के लिये प्राणों के समान है।

अब रहे अन्यान्य जाति के कुत्ते, जिनके बहुत-से चित्र यहाँ दिए गए हैं। ये सभी प्रायः उपयोगी और आवश्यक सिद्ध हो चुके हैं। इनमें कुछ तो महज़ दिखाऊ हैं, जिन्हें योरप की फ़ैशनेबिल स्त्रियाँ और मनचले लोग अपने साथ दिखावे के लिये रखते हैं। १०, ११, १३, १४, १७ और १८ नंबर के कुत्ते ऐसे ही हैं। कुत्तों की नस्ल दिन-पर-दिन सुधारने की चेष्टा की जा रही है; क्योंकि कुत्ता एक समझदार जानवर है, तथा उससे और भी बहुत-से उपयोगी कार्य निकाले जा सकते हैं।

शिवनारायण टंडन

× × ×

७. सेठ मांचेस्टरदास

पाँच सौ गाँठ विलायत से जो मँगाता हूँ;
कौन-सा पाप कहो, इसमें मैं कमाता हूँ?
लोग कहते हैं कि गाढ़े को ख़रीदो—बेचो,
मांचेस्टर का मगर नाम मैं चलाता हूँ।

थान पीछे है, दहाई जो कमाई मैंने ;
लखपती उसकी बदौलत ही मैं कहाता हूँ।
देश जाता है रसातल को, चला जाने दो ;
मैं तो अपनी ही राह अब भी चला जाता हूँ।
देश का, लोग, बला से मुझे दुश्मन समझें ;
'धरना'वालों को हवा जेल की खिलाता हूँ।
कैसा सोराज ? बायकाट कहाँ का 'गुलज़ार' ?
ग़ैर की तुम बनाओ, अपनी मैं बनाता हूँ।

देवीप्रसाद गुप्त

× × ×

८. सीता-परित्याग

जून, १९२३ की 'सरस्वती' में "सीता-परित्याग पर कालिदास"-शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। उस पर श्रीवियोगीहरिजी ने कुछ आपत्तियाँ उठाईं। उनका संतोषजनक समाधान श्रीमिश्रबंधु महोदयों ने किया। इसके अनंतर 'सरस्वती' के संपादक महोदय ने "विमर्श-विचार"-लेख में, फिर वियोगीहरिजी के आक्षेपों के अवतरण देकर, मुझ पर उन्हीं दोषों का आरोप स्वयं किया।

मुझ पर संक्षेप में ये दोषारोप किए गए—

१. मैंने श्रीरामचंद्रजी को देवतुल्य नहीं माना, पुरुषोत्तम-मात्र माना है।

२. मैंने श्रीरामचंद्रजी और श्रीजगज्जननी सीताजी को 'श्री' और 'जी' की पदवी-माला लगाकर बहुत-से स्थलों पर याद नहीं किया।

ये दोनों कार्य मैंने किए हैं, इसमें संदेह नहीं। परंतु इससे मैं साहित्य-क्षेत्र में अपराधी सिद्ध होता हूँ या नहीं, यह विचार करना है।

वियोगीहरिजी से मेरा निवेदन है कि वह साहित्य-क्षेत्र में उतर आवें, और यह सिद्ध कर दिखा दें कि वाल्मीकि तथा कालिदास आदि कवियों ने श्रीराम को अपने काव्य का नायक बनाकर, उनको नर-सीमा में न रखकर, देव-सीमा में ही रक्खा है। इसके लिये श्रीवियोगीहरि पर्याप्त प्रमाण दें, तभी वह मेरी बात को काट सकते हैं, अन्यथा उनकी निराधार वाग्जाल-रचना किसी प्रयोजन की नहीं। दूसरे मैं लिखने बैठा था "सीता-परित्याग पर कालिदास" न कि "सीता-परित्याग पर हरि" या "सीता-परित्याग पर जयदेव शर्मा"।

इस कारण लेख लिखते समय मुझे वही ध्वनि रखनी आवश्यक थी, जो कालिदास ने अपने काव्य में रक्खी है। तभी उसका वास्तविक रहस्य पाठक जान सकते हैं। उसका रंग बदल जाने से रस में भंग होता हुआ जान पड़ता है। मुझे कोई श्रीरघुपति, राजा रामचंद्रजी तथा श्रीमती जगदंबा सीता-देवी से विद्वेष या उनके प्रति अनादर-भाव नहीं है। यह बात मेरे लेख को पढ़ने से ही प्रतीत हो सकती है। मेरी अपनी सम्मति लेख के आदि-वाक्य से ही पाठकों को मालूम हो जायगी।

क्या वियोगीहरिजी बतलावेंगे कि वाल्मीकि और कालिदास आदि ने 'राम' और 'सीता' आदि नामों को कितनी बार 'श्री', 'जी', और बहुवचनांत पदों से याद किया है ? पिता और गुरु-शब्द से आदर के अर्थ में, संस्कृत में, चरण-पाद आदि शब्द लगाए जाते हैं, जैसे श्रीतात-चरण। हिंदी में वैसे ही 'जी'-शब्द का प्रयोग किया जाता है। आदि कवियों ने कहीं भी चरण-पाद आदि शब्दों का प्रयोग नहीं किया। क्यों नहीं किया ? क्या वे अपने आदर्श पुरुषोत्तम नायकों को आदर-दृष्टि से न देखते थे ? देखते थे अवश्य, तो भी वे अपने नायकों को अनावश्यक शब्दों से लपेटकर सजी गुड़िया नहीं बनाना चाहते थे। वे अपने नायकों के नामों को अपनी कथा में ऐसे ढंग से जड़ते थे, जिससे सारी कथा की वाक्य-श्रृंखला को जोड़ने में ये विशुद्ध नाम ही हीरे की कनी के समान शोभा दें।

मैं भी उन नामों को उसी दृष्टि से देखता हूँ, और अपनी आलोचना में उसी भाव से कथा तथा आलोच्य विषय के भावों की रक्षा करते हुए मैंने विशुद्ध नामों का प्रयोग किया है। मैं पाठकों से निवेदन करूँगा कि वे मेरे लेख में मेरे व्यक्तिगत भाव से लिखे वाक्यों तथा प्राचीन कवियों का भाव-विन्यास करते समय उनके प्रवाह में बहे हुए आलोचक-रूप से लिखे वाक्यों को विवेक से देखें, तब वियोगीहरिजी के आक्षेपों की सचाई की परख करें।

एक आक्षेप आपने यह किया है कि मैंने अग्नि-परीक्षा को रजोदर्शन-मात्र माना है। इसमें अश्लीलता का अपराध मुझ पर लगाया गया है। ठीक है।

वियोगीहरिजी से निवेदन है कि मैं काव्य नहीं लिख रहा। घटनाओं की आलोचना कर रहा हूँ। मैं लोक-दृष्टि की सत्यता को वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से

देख रहा हूँ। क्या आपको मेरे भाव में कोई असंभावित असत्यता दिखाई दी है ?

यदि आपका हृदय इतना कोमल है कि मेरी आलोचना से आपके धर्म और श्रद्धा के भावों पर वज्राघात-सा हुआ है, तो उसका प्रतिकार आप संपादक महोदयों के गले दबाकर या लेखकों की स्वतंत्र विचार-परिपाटी पर नौकर-शाही क़ानून लगाकर नहीं कर सकते। आप भी अपनी स्वतंत्रता का पूरा सदुपयोग कीजिए।

जयदेव शर्मा

× × ×

९. पतित-पावन

पतितहिं पावन कौं पावनो सुहावन है,
पावनै हू पावन पतित ही को चहि है ;
पतित औ पावन दुहूँन सेज पावनती,
पावन-पतित नाम नेम कौं निबहि है।
मेरो शब्द पतित तिहारे शब्द पावन को,
पैहै ना तो पूरो नाम को "द्विजेस" कहि है ;
कहै तो आधो जो निरर्थ असमर्थ जामें,
पावन ही पावन कहावन कौं रहि है।
आपी आप आपनो कै पावन-पतित नाम,
कोऊ ना कह्यो की तुम्हें नाम ऐसो चहि है ;
ना तो भक्त पावन, न जात भक्त पावन,
न पावन विरक्तहू, जो वेद-शास्त्र लहि है।
केवल पतित ही के पावन कहावत हौ,
सोई गुन गुनि कै "द्विजेस" ऐसो कहि है ;
मेरो-सो पतित जो पै पाइ है न पावन, तो
पावन ही पावन कहावन को रहि है।

बलरामप्रसाद मिश्र "द्विजेश"

× × ×

१०. हिंदू-संगठन

हम आज आपके सामने हिंदू-जाति की वर्तमान दशा का रोना रोने नहीं बैठे, और न आप—विश्वास है—उससे अनभिज्ञ ही हैं। हमारे और आपके सामने इस समय तो केवल एक, और केवल एक ही प्रश्न है, और वह यह कि हमारे जीवित रहने का उपाय क्या है ? हम भी संसार में सुख और शांति से कैसे निवास कर सकते हैं, और उसके लिये हम अब क्या करें ? हमारा कर्तव्य क्या है ?

अन्य देशों के इतिहास देखने से पता चलता है कि जब कोई देश उन्नति के शिखर पर पहुँचा है, तब उसमें पहले एक धार्मिक या सामाजिक क्रांति हुई है। योरप तभी उन्नति कर सका, जब वहाँ एक ज़बर्दस्त धार्मिक क्रांति हुई, और उसका 'पोप' से पिंड छूटा। ठीक वही बात हिंदू-जाति के लिये भी कही जा सकती है। राजनीतिक क्रांति तो सामाजिक क्रांति के हुए बिना कभी सफल हो ही नहीं सकती। हिंदू-जाति, हिंदू-सभ्यता और हिंदू-धर्म की उन्नति केवल एक इसी बात की अपेक्षा करती है। इस समय तो इन तीनों की ही रक्षा के लिये, यदि हम इसके इच्छुक हैं, हमें एक ज़बर्दस्त सामाजिक क्रांति करनी होगी, और इसी में हमारा कल्याण भी है।

सामाजिक क्रांति की पहली सीढ़ी है हिंदू-संगठन और शुद्धि। इसी में हमको जुट जाना चाहिए। बिना संगठन के हिंदू-जाति की रक्षा असंभव है। जिस समय हिंदू संगठित हो जायँगे, जब वे महाराज युधिष्ठिर की इस बात को कि "अपने में हम १०० और ५ हैं, पर दूसरे के लिये हम १०५ हैं" भूल न जायँगे, धार्मिक प्रश्न पर मुसलमानों की तरह जब वे राजा से रंक तक एक ज़बान से बोलना सीख जायँगे, उन्हें कोई उँगली दिखाने का भी साहस नहीं कर सकेगा। इसी समय हिंदू-मुस्लिम ऐक्य की नींव भी पक्की हो जायगी, और किसी के हिलाने से भी न हिलेगी। मुसलमान भी जब यह देख लेंगे कि इनको छेड़ना बर्रों का छत्ता खोदना है, जब वे देखेंगे कि भाई इन्हें एक तमाचा मारने पर पचीसों तमाचे खाने पड़ते हैं, तब वे भी आप ही मित्रता के लिये हाथ फैलावेंगे। निर्बल और सबल की एकता उसी तरह असंभव है, जिस तरह शेर और बकरी की, मोर और सर्प की तथा बिल्ली और चूहे की। हिंदुओं को इस समय "जैसे को तैसा"-वाली नीति का पालन करना होगा। उन्हें "कर मिट या मर मिट" को अपना ध्येय बनाना होगा। तभी वे ज़िंदों की भाँति संसार में ज़िंदा रह सकेंगे।

समय आज हमारे साथ है। लोहा गरम है, और इसी समय वह अपनी इच्छा के अनुसार ठोक-पीटकर ठीक किया जा सकता है। फिर वह किसी की प्रतीक्षा नहीं करेगा। इसलिये नवयुवकों को अब आगे बढ़ना

चाहिए। उन्हें मालवीयजी और लालाजी-सरीखे पथ-प्रदर्शक भी इस समय मिल रहे हैं। ऐसे समय को खोना मूर्खता होगी। मौक़े का एक टाँका बेमौक़े के नव टाँकों से अच्छा है; क्योंकि—"अब की चढ़ी कमान, को जानै अब कब चढ़ै।"

पद्मकांत मालवीय

× × ×

११. प्रतीक्षा

खोलकर पावन हृत्पट-द्वार,
प्रतीक्षा करती निशि-दिन खड़ी;
कामना पूरी होगी कभी—
इसी पर चंचल पलकें अड़ी।
बना चातक-सा चोखा हृदय,
समझकर कष्टों को फूलझड़ी;
ध्येय-पथ पर हैं रक्खे पैर,
परीक्षाएँ होने दो कड़ी।
उसी पर होना है बलिदान,
नहीं काया की माया पड़ी;
विघ्न-बादल का डर भी नहीं,
लगे, लगने दो उनकी झड़ी।
तुम्हारी हूँ मैं तेरे लिये,
रहूँगी निर्भय होकर खड़ी;
कभी जब आवेगी यह याद,
दौड़ते आओगे उस घड़ी।
प्राणपति, प्रियतम, प्राणाधार,
तुम्हारी पावन प्रतिभा-लड़ी;
कभी क्या भूलूँगी हे नाथ,
रहेगी हृन्मंदिर में जड़ी।

"विमल"

× × ×

१२. एक डूबा हुआ नगर

अभी हाल ही में एक ग़ोताख़ोर ने एक सनसनी फैलानेवाली खोज की है, जो पुरातत्त्व के इतिहास पर बड़ा प्रभावोत्पादक प्रकाश डालेगी।

कमर के निचले भाग में ब्रीच-क्लाउट (ग़ोता लगाने के समय पहनने का वस्त्र) पहने, एक हाथ में अपने को पानी के भीतर दबा रखने के लिये एक भारी पत्थर और दूसरे हाथ में स्पंज को काटकर ढीला करने के लिये एक चाक़ू लिए हुए एक ग़ोताख़ोर ट्यूनिस के किनारे से दूर भूमध्य-सागर में ग़ोता लगा रहा था। ऐसे ग़ोता लगानेवाले पानी के भीतर आँखें खोले रहते और साँस रोककर मिनटों अंदर डूबे रह सकते हैं। सतह से तीस फ़ीट नीचे उसने भीतर ऐसा दृश्य देखा, जिससे वह भयभीत हो गया, और उसकी अक़्ल मारी-सी गई। एक सुंदर स्त्री सामुद्रिक नरकुलों में से निकलकर तनी हुई नंगी उसके सामने खड़ी थी। हरे, साफ़ पानी में वह भली भाँति दृष्टिगोचर हो रही थी। ग़ोताख़ोर को यह ज्ञान न हुआ कि यह स्त्री परी है या राक्षसी, अथवा मानव-सृष्टि की एक स्त्री, जो अभी हाल ही में डूब गई है, और अब तक जीवित है। उसने पूरा पता लगाने की प्रतीक्षा न की। क्या करे, बेचारा डर गया था! भयभीत होकर दो-तीन बार ज़ोर से उछलकर सतह पर पहुँच गया, और नाव पर आकर आश्चर्यमयी घटना कह सुनाई। समुद्र के ऊपर दिन के प्रकाश में कोई भी भय अनुभूत न हुआ, और तुरंत ही बहुतेरे लोगों ने फिर साथ ही ग़ोता लगाया।

'साइंस शिफ़्टिंग्स' नाम का एक लेखक लिखता है कि वहाँ अंदर इन लोगों को वीनस (Venus) देवी की एक अपूर्व सुंदर मूर्ति मिली, जो सहस्रों वर्ष पहले डूब गई थी। ऐसी मूर्ति को ईसवी सन् के बहुत पहले से ही किसी ने नहीं देखा।

ग़ोताख़ोरों में वैज्ञानिक अनुराग या पुरातत्त्व विषयक जिज्ञासा तो थी नहीं, पर उन्होंने अधिक खोज करने का प्रयत्न किया। यह केवल मानवी जिज्ञासा थी; परंतु उनके जो अन्वेषण हुए हैं, वे समस्त संसार को चकित कर देंगे।

उन लोगों को तली की लहरों के ३० फ़ीट नीचे एक पूरा डूबा हुआ नगर मिला, जिसमें अनेक मंदिर, महल और मकान अब तक खड़े हैं। नगर की सड़कों पर रंगीन मछलियाँ तैरती रहती और टूटी हुई खिड़कियों तथा दरवाज़ों से भीतर-बाहर आया जाया करती हैं। ग़ोताख़ोरों ने इस खोज की ख़बर जर्बा-द्वीप (Djerba Island) के फ़्रांसीसी गवर्नर को दी। इसी द्वीप और ट्यूनिस के किनारे (आफ़्रिका से दूर) के बीच में यह डूबा हुआ नगर स्थित है। गवर्नर ने संपूर्ण विवरण की रिपोर्ट कार्थेज के बड़े उत्साही नवयुवक, खोदनेवाले

काउंट बाइरन कुन डी प्रोरोक और उनकी स्त्री काउंटेस डी प्रोरोक को दी। इस दंपति ने साथ-साथ खुदाई करके बड़े-बड़े अन्वेषण किए हैं। अब कोर्ट की ओर से यात्रा की तैयारी हो रही है। इस भग्न नगर के रहस्य का पता लगाने का प्रयत्न किया जायगा।

अन्वेषण की सबसे मनोरंजक बात यह है कि यह नगर भूमध्य-सागर के ठीक उसी भाग में है, जिसे सिर्शियन सागर कहते हैं, और जो वर्जिल की ईनियड में इनहास्पिटा सिर्टी कहा गया है। बिलकुल इसके समीप जर्बा-द्वीप (आइल ऑफ् दि लोटस ईटर्स) है, जिसका होमर ने अपनी ओडेसी में वर्णन किया है। डूबी हुई वीनस देवी का डूबा हुआ नगर सचमुच किसी समय इसी द्वीप के किनारे पर था। धीरे-धीरे वह लहरों के नीचे डूब गया।

इसी नगर में या इसके आस-पास होमर की ओडेसी का प्रसिद्ध वीर यूलीसिस और उसके साथी यात्री लोगों ने कमल-भक्षकों के साथ बड़े साहस-पूर्ण कार्य किए थे, जिनका उल्लेख होमर ने ओडेसी में किया है। ये कमल-भक्षक लोग मनुष्य को सुअर बना लेते थे। बात इस अन्वेषण के संबंध में दूसरी मुख्य यह है कि इससे और अधिक भग्न वस्तुओं का शायद पता चले, जो इस प्रश्न पर प्रकाश डालेंगी कि यूलीसिस की साहस-पूर्ण यात्रा ऐतिहासिक घटना पर अवलंबित है या उसका आधार केवल कवि-कल्पना ही है।

बहुत समय तक इतिहासकारों का विश्वास था कि ट्राय का घेरा और हीलन की कथा केवल कवि-कल्पित है। बाद को उन्होंने एशिया-माइनर में ट्राय-नगर का पता लगाया, और इस बात पर प्रकाश डाला कि कथानक सच्चा है। बस, ठीक इसी तरह अब भी यूलीसिस के विषय में कोई ऐसी ही बात मालूम हो सकती है, यद्यपि डूबी हुई वीनस-देवी और नगर, जिसके रहस्य की वह देख-भाल करती है, दोनों ट्राय की घटना के बहुत बाद के हैं। शायद ये दोनों प्राचीन कार्थेज के समकालीन हों। आफ्रिका की भूमि पर कार्थेज के कुछ भग्नावशेष समुद्र में धँस आए हैं। हवाई जहाज़ के ऊपर से इसका फ़ोटो लेने से पता चला है कि वर्तमान किनारे पर समुद्र की तली में ये भग्नावशेष स्थित हैं। जर्बा-द्वीप के पास भी, जो किनारे से बहुत दूर है, एक दूसरा गड़ा हुआ नगर है, जिसकी लंबाई क़रीब ३ मील है।

स्पष्ट-रूप से इस स्थान पर नागरिक सभ्यता आरंभ होने के बाद पृथ्वी की गति में घोर परिवर्तन हुआ है। या तो समुद्र ऊपर उठा या ज़मीन नीचे धँसी; परंतु ऐसा परिवर्तन हर हालत में उत्तरोत्तर था। इतिहास ऐसे रद्दोबदल के बारे में बिलकुल चुप है। भग्नावशेष भूकंप के कारण नहीं उत्पन्न हुए हैं; क्योंकि बहुत-से डूबे हुए नगरों का पता चलता है। यह संभव है कि यह समस्त भाग, जो आज पानी के अंदर है, किसी समय सभ्यता का केंद्र रहा हो। ऐसा स्थान ईसा के पहले ६ ठी या ८वीं शताब्दी में रहा होगा, और उस समय तक डूब गया अथवा भूल गया होगा, जब कि रोम और कार्थेज अपनी-अपनी कीर्ति-पताकाएँ बड़ी शान से उड़ा रहे थे।

शिवमंगल पांडेय

× × ×

१२. क्या है ?

यह समस्त भूमंडल क्या है ?
जल-थल-नभ-अनिलानल क्या है ?
सृष्टिस्थिति भी प्रलय-कार्य का आदि मूल-कारण, फल क्या है ?
भूचर, अचर, वारिचर, नभचर,
भिन्न-भिन्न गुण-रूप कलेवर;
उक्त कुतूहल-पूर्ण विश्व में, निहित शक्ति वह अविकल क्या है ?
परिवर्तनशीलता प्रकृति की,
सार-भेद जगती की गति की;
निरुपमेय चांचल्य चारु में, नियम एक वह अविचल क्या है ?
पतनोत्थान, ऊर्मि-कुल-संकुल,
प्रबल प्रवाह-पुंज, झंझाकुल;
आवर्तायन संसृताब्धि के वह उस पार तट-स्थल क्या है ?
बहती ज्योतिर्धार जहाँ है,
रवि जिसका लघु बिंदु यहाँ है;
धी, इंद्रिय, मन परे अगोचर, उस पुर का पथ-अंचल क्या है ?
हुए वेद-पारंगत पंडित,
तपोधनी ज्ञानी गुण-मंडित;
सारी आयु खोज में खोई, लख न सके अंतस्तल क्या है ?
विचलित, मलिन हुआ मन-दर्पण,
हुआ अलक्ष्य लक्ष्य का दर्शन;

योगों की इति हुई, न पाया, औषध सिद्ध अनिष्फल क्या है?
रसना हो निराश, रट रोई,
कहकर 'नेति'-मात्र सब कोई;
मौन हो रहे, पूछूँ किससे आत्म-समस्या का हल क्या है?

रामनारायण मिश्र

× × ×

१४. राठौर-वीर दुर्गादास के नाम एक बादशाही फ़रमान

मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि जब शाहज़ादा मोहम्मद अकबर दक्षिण की तरफ़ होता हुआ ईरान की तरफ़ भागा, तब वह अपने कुटुंब को दुर्गादास की संरक्षा में छोड़ गया था। इसी से विक्रम-संवत् १७५४ में बादशाह औरंगज़ेब ने दुर्गादास को शाही मनसब देकर अकबर की स्त्री, पुत्र और कन्या आदि को अपने पास बुलवा लिया। इसके कुछ समय बाद बादशाह ने दुर्गादास के नाम एक फ़रमान भेजकर उन्हें सिंध में जाकर अकबर को ले आने की आज्ञा दी।

यद्यपि इस घटना का उल्लेख 'मआसिर आलमगीरी' आदि ऐतिहासिक ग्रंथों में नहीं है, तथापि आगे जिस फ़रमान की नक़ल दी जाती है, उससे उक्त बात की पुष्टि होती है—

फ़रमान की नक़ल

"भाइयों और पास रहनेवालों में मुख्य इसलाम का ताबेदार दुर्गादास बादशाही बख़्शिश का उम्मेदवार होकर जाने कि इन फ़तह के दिनों में मोहम्मद अकबर के निशाने[1] से जो उसने अमीरख़ाँ के बेटे मीरख़ाँ नाम लिखा था, और उसने हुज़ूर में भेजा था, मालूम हुआ कि जो प्यारा बेटा[2] काबुल में है, इसलिये वह काबुल के रास्ते से नहीं आ सकता है, और फिर प्यारे बेटे के नामदार बेटे[3] के मुलतान में होने की ख़बर पाकर उस रास्ते से भी नहीं आ सकता। शुजाअतख़ाँ के लिखने से पाया जाता है कि मोहम्मद अकबर ने दरगाह में हाज़िर होने का पक्का इरादा कर लिया है। इस वास्ते मोहम्मद अकबर को हुक्म लिखा गया है कि कंधार के इलाक़े कौसंज में आवे। पहले आने के वास्ते वह रास्ता बताया गया था, मगर (अब) सेवी कंजावे के रास्ते से, जो बख़्तावरख़ाँ का वतन है, सेवस्तान में आकर गुजरात में आ जाय, और वहाँ से इस बड़ी चौखट के चूमने को रवाना हो जाय। इसलिये यह फ़रमान भेजा जाता है। चाहिए कि इसके पहुँचते ही जल्दी से सेवस्तान में जाकर जैसलमेर या जिस रास्ते से मुनासिब जानो, उसको अहमदाबाद में लाओ, और वहाँ से उसके और शुजाअतख़ाँ[1] के साथ इस बड़ी दरगाह में आओ। तारीख़ १० रज्जब, सन् ४२ जलूस[2] को लिखा गया।"

इसी तारीख़ को एक फ़रमान[3] पीर नज़रअली शाह के नाम भी लिखा गया था। उसमें लिखा था कि तुम दुर्गादास के साथ जाकर मोहम्मद अकबर को कौसंज, इलाक़े कंधार, सेवी, सेवस्तान और जैसलमेर के रास्ते से अहमदाबाद में शुजाअतख़ाँ के पास ले आओ। इससे भी उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है।

इस फ़रमान के लिखने के एक वर्ष बाद अर्थात् औरंगज़ेब के सन् जलूस ४३ का हाल लिखते हुए 'मआसिर आलमगीरी' के रचयिता ने शाहज़ादा अकबर के विषय में लिखा है—

"सन् जलूस ४३ के जमादि अव्वल में अकबर के दो नौकर उसकी अरज़ी कुसूर मुआफ़ करने के लिये अतर के एक संदूक़चे के साथ दरगाह में लाए। उनके हाथ ख़िलअत और मेहरबानी का फ़रमान भेजा गया, और लिखा गया कि जब तक सरहद पर नहीं आयगा, कुसूरों की माफ़ी नहीं होगी। पर जब बादशाही मुल्क में आ जायगा, तो बंगाल की सूबेदारी और दूसरी बख़्शिशों का फ़रमान उसके नाम भेजा जायगा।"

इसके बाद के क़रीब ४ वर्षों का कुछ भी हाल नहीं मिलता। परंतु हिजरी सन् १११९ के शाबान महीने के हाल में लिखा है—

"शाबान में ईरान की सरहदों के ख़बर लिखनेवालों की अर्ज़ियों से अकबर के ईरान में मरने की और मशहद में दफ़न होने की ख़बर मिली, जिसको सुनकर बादशाह ने कहा कि हिंदुस्तान का बहुत बड़ा फ़ितना बैठ गया।

---

१. शाहज़ादे का फ़रमान
२. मोहम्मद मुअज़्ज़म (बहादुरशाह)
३. मोहम्मद मुइज़्ज़ुद्दीन (मुअज़्ज़म का बेटा)

१. गुजरात का सूबेदार
२. विक्रम-संवत् १७५५ की पौष-सुदी १३=ईसवी सन् १६९९ की ३ जनवरी=हिजरी सन् १११०, बुधवार
३. यह फ़रमान पीर नज़रअली के आठवें पोते साँई चाँदशाह के पास जोधपुर में मौजूद है

यह ख़बर नव्वाब जीनतुलनिसा बेगम (अकबर की सगी बहन) को भेजकर अकबर के बेटे सुलतान बुलंद अख़्तर को मातमी का तोरा (जोड़ा) भेजा, और बड़े बेटे सुलतान निकोसियर के वास्ते आगरे के क़िले में रज़िया बेगम-महल, शाहज़ादे रफ़ीउल क़दर और ज़किया बेग़म महल, शाहज़ादे ख़ुजस्तह अख़्तर के वास्ते भी तोरे भेजे गए।"

ये मोहम्मद अकबर की बेटियाँ थीं, तथा रफ़ीउल क़दर और ख़ुजस्तह अख़्तर बड़े शाहज़ादे मोहम्मद मुअज़्ज़म (बहादुरशाह) के पुत्र थे।

शाहज़ादे अकबर का बड़ा भाई मोहम्मद सुलतान भी बाग़ी हो गया था। इसके बाद जब वह लौटकर आया, तब औरंगज़ेब ने उसे क़ैद कर लिया, और वह मृत्यु-पर्यंत कारागार में ही सड़ता रहा। इसी डर से शायद औरंगज़ेब के बुलाने और आश्वासन देने पर भी मोहम्मद अकबर का ईरान से लौट आने का साहस न हुआ हो।

राठोर वीर दुर्गादास के वंशजों में इस समय बावा-वास के ठाकुर मुख्य हैं, और उन्हीं के पास दुर्गादास के नाम के ४ बादशाही फ़रमान मौजूद हैं। संभव हुआ, तो शीघ्र ही उन फ़रमानों का सचित्र विवरण सेवा में उपस्थित किया जायगा।

विश्वेश्वरनाथ रेऊ

× × ×

१५. तुम्हारी कविता

प्रकृति-प्रगति की नीरवता में,
विश्व छंद की मौलिकता में,
मुद्रित मायामय भाषा में व्यापी सकल-दिगंत;
तुम्हारी कविता अतुल, अनंत।
संतत सिद्ध, प्रबुद्ध प्रवर भी,
मरकर कोटि जन्म जीकर भी,
भाव-भरी तेरी कविता का कभी न पाते अंत;
तुम्हारी कविता अतुल, अनंत।
कवितामय मेरा यह जीवन,
किंकर्तव्य-विमूढ़ बना मन;
महाकवे! तेरी कविता का क्या स्वरूप आकार?
क्या रस है, क्या अलंकार है?
क्या कविता का भाव-सार है?
सुलझा जा भावों की उलझन हे कविता-करतार!
तुम्हें अर्पण जीवन-पर्यंत;
तुम्हारी कविता अतुल—अनंत।

"सहिष्णु"

× × ×

१६. चींटियों की भाषा

चींटियों के विषय की बहुत-सी बातें मेरे परम हितैषी श्रद्धास्पद माधुरी के पाठकों के सुपरिचित श्रीयुत बा० रमेशप्रसादजी बी० एस्-सी० ने समय-समय पर विज्ञान-वाटिका-स्तंभ में लिखी हैं, जिनसे उनका बहुधा मनोरंजन होता रहा है। आज मैं चींटियों की भाषा के विषय में अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान् अध्यापक वान एच्० आइडमैन के एक लेख के आधार पर कुछ लिखने का साहस करता हूँ। अध्यापक महोदय ने अनेक दिनों तक चींटियों के पारस्परिक भाव तथा आदान-प्रदान आदि विषयों की बहुत-सी बातों का स्वयं अध्ययन किया है, और अपने अनुभव को स्पष्ट-रूप से संसार के सामने रक्खा है। चींटियाँ किस प्रकार आहार खोजती तथा पता पा जाने पर किस प्रकार अपने दल के और सब चींटियों को ख़बर पहुँचाती हैं, यही बातें दिखलाई जायँगी।

एक चींटी ने खाद्य-पदार्थ का एक बड़ा-सा टुकड़ा देखा, और देखते ही उसे अकेले अपने स्थान पर ले जाने के लिये व्यग्र-सी हो उठी। अनेक चेष्टा करने पर भी जब वह सफल न हुई, तो सीधे अपने दल के और-और साथियों को जाकर सूचना दी। चींटियों के वास-स्थान पर बराबर कड़ा पहरा रहता है। वास-स्थान के द्वार पर ही एक पहरे का घर रहता है। इस घर में सहायता देनेवाली चींटियाँ बराबर तैनात रहती हैं। सहायता की पुकार सुनते ही वे बाहर निकल पड़ती हैं। खाद्य-आविष्कारक चींटी अपने वास-स्थान में घुसकर सबसे मुख मिला-मिलाकर, खाद्य-द्रव्य पाने का सुसंवाद सुनाने लगती है। ख़बर पाते ही झुंड-की-झुंड चींटियाँ अपने घर से निकलकर प्राप्त आहार की ओर चल पड़ती हैं। सूचना देनेवाली चींटी सबके आगे रास्ता बताती चलती और झुंड उसके पीछे-पीछे जाता है। खाद्य-पदार्थ के निकट पहुँचकर सभी उस टुकड़े को छोटे छोटे टुकड़ों में तोड़कर एक-एक टुकड़ा लेकर अपने घर की ओर चलती हैं। इस प्रकार ये छोटे-छोटे सभी टुकड़े चींटियों के खाद्य-

भांडार में जमा होते हैं। बहुत बार ऐसा देखा गया है कि खाद्य-पदार्थ की ओर जाते हुए चींटी-दल के रास्ते में यदि एक सफ़ेद काग़ज़ का टुकड़ा रख दिया जाय, तो चींटियों को दिशा का भ्रम हो जाता है। ऐसा क्यों होता है, ठीक मालूम नहीं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि किसी प्रकार की गंध-विशेष के कारण इन्हें दिशा का ज्ञान होता है या नहीं। अध्यापक आइडमैन ने चींटियों के अनेक आश्चर्यजनक अच्छे-अच्छे गुणों का पता लगाया है। चींटियाँ जिस भार को स्वयं वहन कर सकती हैं, उसके लिये दूसरे की सहायता कभी नहीं चाहतीं।

कितनी ही बार कुछ मिष्टान्नों के छोटे-छोटे टुकड़ों को एक चींटी के आगे डालकर देखा गया है कि बारी-बारी से वही एक चींटी सभी टुकड़ों को अकेले अपने वासस्थान को ले गई। चींटियों का कर्तव्य-ज्ञान प्रशंसनीय होता है। जब वे किसी स्थान में खाद्य-विशेष की चीज़ पा लेती हैं, तब यदि आप उनके आगे कुछ रख भी दें, तो वे अपने पाए हुए खाद्य के आगे उसे नहीं पूछेंगी, चाहे पूर्व-प्राप्त खाद्य की अपेक्षा अच्छी चीज़ भी क्यों न दी गई हो। संभव है, मनुष्य या और जीवों की तरह भला-बुरा परखने की मानसिक शक्ति चींटियों में न हो, अथवा जो पहले पाया है, उसे पहले लेना धर्म है, इस प्रकार के कर्तव्य-ज्ञान से प्रेरित होकर ही वे ऐसा करती हों। ऐसा मालूम होता है कि चींटियों की स्मरण-शक्ति अल्पकाल-स्थायी होती है; किंतु ऐसा भी देखा गया है कि किसी विशेष स्थान से एक बार खाद्य-द्रव्य ढो-ढोकर ले जाने के बाद भी उस स्थान पर बहुधा वे फेरी लगाया करती हैं।

गोपीनाथ वर्मा

---

१. क्या निद्रा अनावश्यक है ?

हम बहुत दिनों से सुनते आ रहे हैं कि निद्रा में समय लगाना समय व्यर्थ खोना है। जीवन का प्रायः एक-तिहाई भाग मनुष्य सोने में गँवा देता है। किंतु सोने से हमें क्या फ़ायदा है? क्या सोकर हम लोग अपनी खोई हुई शक्ति को पा लेते या अपने थके हुए शरीर और मस्तिष्क को आराम पहुँचाते हैं? यह कुछ नहीं, केवल सिद्धांत-ही-सिद्धांत है। इस सिद्धांत की जड़ अनुमान ही है। डॉ० एच्० एल्० हालिंगवर्थ का कहना है कि यह सिद्धांत बहुत-सी जानी हुई बातों का विरोधी है। डॉक्टर साहब निद्रा पर एक दूसरे ही पहलू से विचार करते हैं। उनका कहना है कि सोना एक बुरी आदत है। परंपरा से मनुष्य इस आदत का आदी हो गया है। यदि वह चाहे, तो अपने सोने के समय को क्रमशः थोड़ा-थोड़ा कम करके सर्वथा त्याग सकता है। आदत पड़ जाने पर विना सोए ही हम लोग अपना सब काम सुचारु रूप से करने लगेंगे।

वह एक न सोनेवाली जाति का स्वप्न देख रहे हैं। इस जाति के मनुष्यों को काम करने के लिये वह समय भी मिल जायगा, जिसे इस समय के लोग निद्रा में व्यतीत करते हैं। डॉ० हालिंगवर्थ का सिद्धांत बड़ा सीधा-सादा है। वह हमें उस समय की याद दिलाते हैं, जब हमारे पूर्वज घरों में न रहकर पहाड़ों या जंगलों में निवास करते थे। रात के समय अँधेरे में काम करने के साधन—दीप या इलेक्ट्रिक लाइट—उनके पास नहीं थे। यदि कोई मनुष्य रात को शिकार करने के लिये निकलता, तो वह स्वयं पशुओं का शिकार बन जाता था। इसके अतिरिक्त रात को रास्ता भूल जाने का भी डर बना रहता था। रास्ता दिखलाई न पड़ने के कारण प्रत्येक पग पर गिरने तथा ठोकर खाने का भय था। इसलिये वे सोकर ही रात बिताया करते थे। जिस बात की आदत उन्होंने उस समय डाली, वही उनकी संतानों में आज भी पाई जाती है। निद्रा का यही कारण है।

सोने की आदत को बेकार जानते हुए भी हम लोग उसे अपनाए हुए हैं। अब इस आदत से हमें कुछ भी फ़ायदा नहीं देख पड़ता; क्योंकि हम लोग रात को विद्युत्-प्रकाश द्वारा दिन में परिणत कर सकते हैं। हमें अब अंधकार का भय नहीं रहा। तब क्यों न इस आदत को छोड़ दें? कोई-कोई कह सकते हैं कि सोना नवजात शिशुओं की प्रकृति है, इसलिये यह मनुष्य के लिये आवश्यक है। किंतु यह दलील बेबुनियाद है। क्योंकि मनुष्य में कुछ ऐसी स्वाभाविक बातें हैं, जिनका कोई कारण नहीं दिया जा सकता।

किसी शिशु को एक डंडा पकड़ाइए, वह पकड़ लेगा, और इतने ज़ोरों से पकड़ेगा कि अपना भार सँभाल सके। आपके हाथ में यदि कोई गरम वस्तु पकड़ाई जाय, तो आप उसे तुरत फेंक देंगे। यह स्वाभाविक है। इसी प्रकार लड़कों का सोना भी स्वाभाविक है।

कुछ लोग निद्रा को शरीर की खोई हुई शक्ति लौटाने का साधन बतलाते हैं। उनका कहना है कि दिन में जब हम काम करते हैं, तो कोषों के नष्ट होने से शरीर में विष पैदा होता रहता है। निद्रा-काल में वे कोष पुनः गठित होते और हमारे शरीर को शक्ति देते हैं। इस पर भी विचार करना आवश्यक है। रात को जब हम सोते हैं, तब हमारा सारा शरीर पूर्ण विश्राम नहीं करता। हृदय धड़कता रहता है, नाड़ियाँ चलती रहती हैं, अचेतन मस्तिष्क जागता रहता है, जिस करवँट हम लोग सोते हैं, उधर की पेशियाँ काम करती रहती हैं। तब भला कैसे कहा जा सकता है कि हमारा सारा शरीर पूर्ण विश्राम करता है? क्या उस समय विष नहीं पैदा होता? क्या उस समय कोष नष्ट नहीं होते? जब शरीर के ये प्रधान अंग नहीं सोते, तो अन्य अंगों का सोना ठीक-ठीक समझ में नहीं आता।

निद्रा-संबंधी इतनी खोज हुई है; किंतु अब तक इस बात को किसी ने भी प्रमाणित करने की चेष्टा नहीं की कि निद्रा हमारे लिये आवश्यक है या नहीं। हाँ, ऐसी बहुत-सी परीक्षाएँ हुई थीं, जिनमें मनुष्यों को सौ-सौ घंटे तक जगाए रहने के बाद उनके कार्यों को देखा गया था; किंतु ऐसी एक भी परीक्षा नहीं हुई, जिसमें किसी मनुष्य ने अपने सोने के समय को क्रमशः कम किया हो, और उसका कोई फल निकला देखा गया हो। यदि आप लगातार दो महीने तक अपने सोने के समय में केवल १ मिनट की कमी करें, तो सोलह वर्ष के बाद (यदि आपके सोने का समय ८ घंटे हो) आप एक मिनट भी न सोवेंगे। सोने के समय में एकाएक कमी कर देने से फ़ायदा न होगा, और परीक्षा असफल रहेगी।

डॉक्टर नेथेनील क्लिटमैन ने कुछ विद्यार्थियों की, ११५ घंटे तक जगाए रहने के बाद, परीक्षा की। फल यह निकला कि ये विद्यार्थी ज्यों ही अपने अंगों को ढीला कर देते थे, निद्रा उन्हें आ दबाती थी; किंतु जब तक उनके अंग तने रहते थे, तब तक वे जागते रहते थे। जितना अधिक वे जागे, उतना ही उनका शरीर विवश होता गया। दिन-रात दो दिन तक जागने के बाद वे साफ़-साफ़ नहीं लिख सकते थे। रंगों को उस समय भी वे पहचान सकते थे; किंतु देर तक इसी काम में लगे रहने पर उनकी बुद्धि जवाब दे देती थी। जाग्रत्-अवस्था ही में वे स्वप्न देखने लगे थे। केवल मालूम यह हुआ कि इतने दिन जागते रहने पर भी उनकी मानसिक शक्ति का नाश नहीं हुआ था। ये परीक्षाएँ यह देखने के लिये हुई थीं कि यदि निद्रा की आदत को एकाएक छोड़ दिया जाय, तो क्या फल होगा। इसका फल आशाजनक न होने के कारण ही डॉक्टर हालिंगवर्थ ने इस आदत को धीरे-धीरे छोड़ने की सलाह दी है।

× × ×

२. लड़ाई के घोड़े

संयुक्त-राज्य की सेना का केमिकल वारफ़ेयर-विभाग युद्ध में व्यवहृत गैसों से रक्षा पाने के साधनों की तलाश कर रहा है। गत महायुद्ध में जो ज़हरीली गैसें व्यवहृत हुई थीं, उनसे मनुष्यों की रक्षा करने के लिये एक प्रकार का टोप बना था। इस टोप में हवा आने-जाने के लिये जो छिद्र बने थे, वे दवा मिली हुई रुई से रक्षित थे। इस कारण किसी प्रकार की विषैली गैस मनुष्य के शरीर में नाक या मुँह के रास्ते नहीं प्रवेश कर सकती थी। किंतु लड़ाइयों में मनुष्यों के सिवा पशु भी काम में आते हैं। लड़ाई के मैदान में घोड़ों, कुत्तों और कबूतरों से भी काम लिया जाता है। ये प्राणी भी विषैली गैसों से मूर्च्छित होते या मृत्यु के मुँह में चले जाते हैं। अस्तु, मनुष्यों की रक्षा के साथ-साथ इनकी रक्षा भी अत्यंत आवश्यक है।

प्रकृति घोड़े की एक विचित्र प्रकार से रक्षा करती है। उसकी आँखें युद्ध में व्यवहृत होनेवाली साधारण गैसों से नष्ट नहीं होतीं; ये कभी मुँह से साँस नहीं लेते। इसलिये केवल उनकी नाक की रक्षा करनी पड़ती है। इसके लिये एक ऐसा तोबड़ा बना है, जो सभी विषैली गैसों को सोख लेता है, और केवल शुद्ध वायु घोड़े की साँस के साथ जाने पाती है। यदि कदाचित् भविष्य में ऐसी कोई गैस आविष्कृत हो, जिसका

अक्सर घोड़े की आँखों पर भी पड़े, तो उससे भी रक्षा के लिये साधन बनाकर तैयार कर दिया गया है। किंतु घोड़ों के खुर विषैली गैसों से नहीं बच सकते थे। अस्तु, उनके बचाव के लिये चमड़े के जूते बने हैं, जो घोड़े के खुरों को अच्छी तरह ढके रहते हैं।

घोड़े का टोप

लड़ाई का घोड़ा
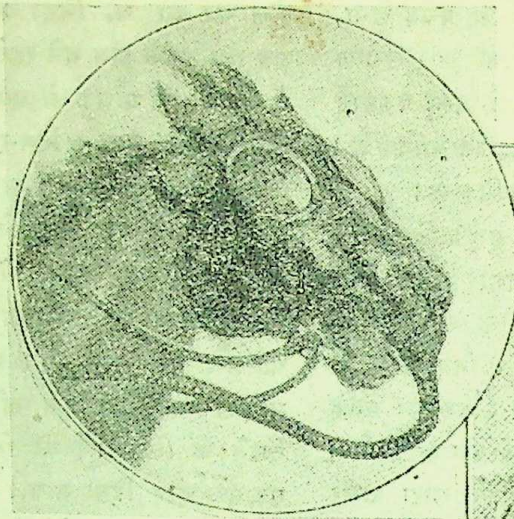
मनुष्यों और कुत्तों पर विषैली गैसों का प्राय: एक-सा प्रभाव पड़ता है। कुत्तों की आँखें और कान इसके द्वारा नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि वे मुँह से भी साँस लेते हैं। इसलिये कुत्तों को ऐसे ढक्कन की आवश्यकता होती है, जिससे उनका पूरा सिर ढक जाय। कबूतरों को अलग-अलग रक्षा-टोप पहनाना व्यर्थ सिद्ध हुआ है। इसलिये उन्हें एक पिंजड़े में, जो चारों तरफ़ से रक्षित रहता है, बंद करके लड़ाई के मैदान में ले जाते हैं। पिंजड़े का ढक्कन विशुद्ध हवा तो पिंजड़े में जाने देता है, किंतु विषैली गैस को बाहर ही रोक रखता है। आवश्यकता पड़ने पर कबूतर को जल्दी से पिंजड़े से निकालकर ज़ोर से ऊपर फेंक भी सकते हैं जिससे वह तुरंत ही विषैली वायु की

कुत्ते को टोप पहनाया जा रहा है

सतह से ऊपर चला जाता है, और उसे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचने पाती।

× × ×

३. न डूबनेवाला जहाज़

जहाज़ों में अब तक चाहे जितनी उन्नति हुई हो, किंतु उनमें एक बड़ा दोष रह ही गया है; अर्थात् पानी में डूबने से उन्हें कोई नहीं बचा सकता। अब तक करोड़ों टन वज़न के जहाज़ समुद्र-तल में चले गए हैं, और अभी न-मालूम कितने जहाज़ डूबेंगे। जहाज़ों के साथ ही अन्य बहुमूल्य पदार्थ भी, जो उनमें रहते हैं, समुद्र गर्भ में समा जाते हैं। कितने ही मनुष्य प्राण गँवाते हैं, और अनेक प्रकार की क्षति दूसरों को भी उठानी पड़ती है। बहुत दिनों से वैज्ञानिक एक ऐसा जहाज़ बनाने की फ़िक्र में हैं, जो नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर भी पानी में न डूब सके। अभी हाल में नोवा स्काटिया के पास एक जापानी जहाज़ डूब गया, और उसके साथ ही

४० मनुष्यों ने अपने प्राण गँवाए। इस घटना से दुःखित होकर न्यू-ब्राइटन के ऐडम टी० डेकोलियस नाम के सज्जन एक ऐसा जहाज़ बनाने पर उतारू हो गए हैं, के ऊपर तैरता रहेगा। इस प्रकार जंगी जहाज़ों को पानी में यहाँ तक डुबा दे सकेंगे कि वह पूरा तो डूब जाय, किंतु केवल तोप के मुँह पानी के ऊपर रह सकें। उन्होंने
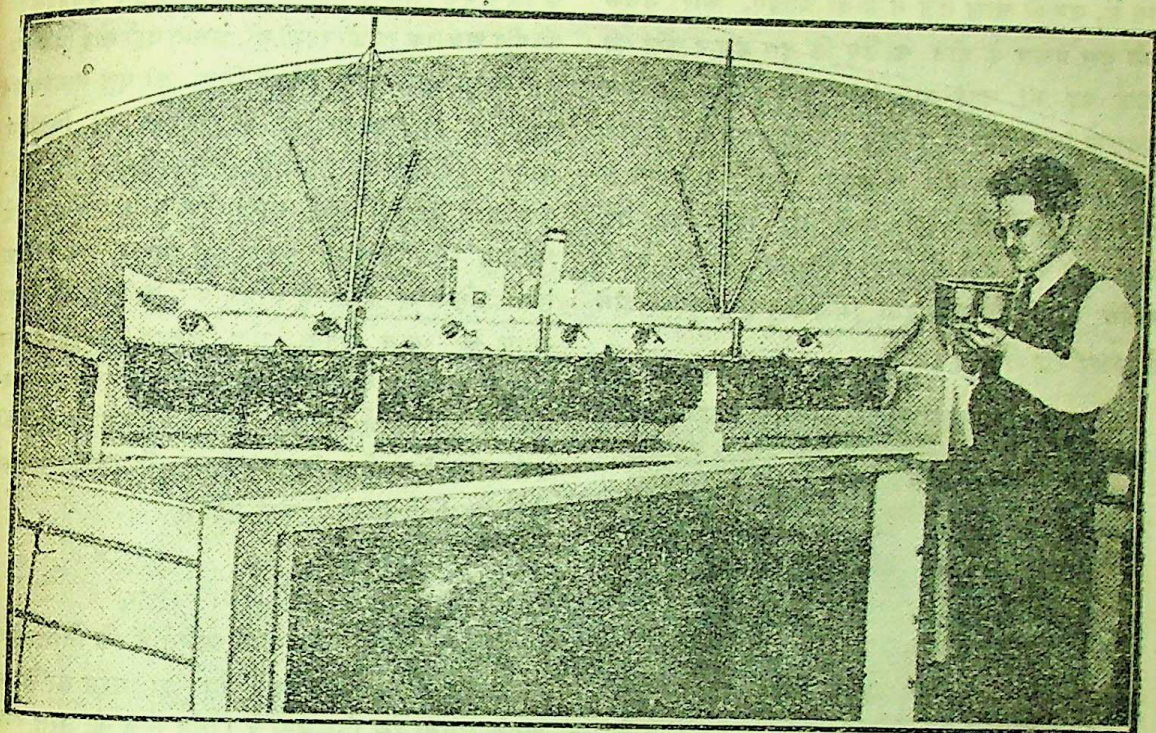
न डूबनेवाला जहाज़

जो कदापि डूब न सके। वह प्रत्येक जहाज़ के पेंदे में एक सिकुड़ जानेवाली वायु की कोठरी लगाना चाहते हैं। जब कभी जहाज़ पर विपत्ति आवे, तब उस कोठरी में हवा भर देंगे, इससे पूरा जहाज़ वायु के दबाव के कारण पानी के ऊपर ही तैरता रहेगा। यदि उसमें पानी भी भर जाय, तो उसका तख़्ता पानी के ऊपर ही रहेगा, जहाँ जहाज़ के मनुष्य आश्रय ले सकेंगे।

आजकल के जहाज़ों में जो हिस्सा व्यर्थ की सामग्री रखने के लिये काम आता है, वहीं पर यह हवा की कोठरी बनाई जा सकती है। इस कोठरी से और भी बहुत-से काम लिए जा सकते हैं। यही अग्निनिवारक का भी काम दे सकता है। जहाज़ में आग लगने पर हम इसी की सहायता से उसे बुझा भी सकेंगे। इसके द्वारा जहाज़ का कप्तान जहाज़ के बैलेंस को अपनी इच्छा के अधीन रख सकेगा। उसकी इच्छा के अनुसार ही जहाज़ का कोई हिस्सा पानी में डूबा रह सकेगा, या पानी

नमूने के जहाज़ों द्वारा प्रायः ७०० परीक्षाओं के बाद यह सफलता पाई है। उनका यह आविष्कार आर्कीमिडिज़ के सिद्धांत पर अवलंबित है।

× × ×

४. वायुयान द्वारा लिखना

महायुद्ध के बाद वायुयानों में बड़ी शीघ्रता से उन्नति हो रही है। उनके द्वारा भिन्न-भिन्न परीक्षाएँ या खेल हो रहे हैं। उन्होंने धुएँ की सहायता से आकाश में विज्ञापन लिखकर वाणिज्य-जगत् को बड़ी सहायता पहुँचाई है। ज़मीन से दो मील की ऊँचाई पर यदि कुछ लिखा जाय, तो वह १५० वर्गमील तक दिखलाई पड़ेगा। मेजर जॉन सी० सैमेज-नामक एक सैनिक ने इस कल्पना को सर्वप्रथम कार्य में परिणत किया था। कप्तान सिरिल टर्नर ने २४ नवंबर को प्रथम वायुयान द्वारा आकाश में धुएँ की सहायता से "Hallo U. S. A." लिखा।

आकाश में लिखने के काम में व्यवहार में आने के लिये अलग ही वायुयान बने हैं। इनकी चाल प्रति मिनट दो मील से कुछ अधिक है। इस काम में जो वायुयान आते हैं, उनकी चाल तेज़ न होनी चाहिए, और उनके क़ब्ज़े इस प्रकार के होने चाहिए कि दस हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर भी उन्हें घुमा-फिरा सकें। ऐसे वायुयान साधारण वायुयानों से अठगुने मज़बूत बनते हैं; क्योंकि इनमें विपत्ति की अधिक संभावना रहती है। ज़मीन से जब तक ये दस हज़ार फ़ीट ऊँचे नहीं जाते, तब तक लिखने की चेष्टा नहीं की जाती। जितना ही ऊँचे पर वे जायँगे, उतनी ही स्थिर हवा मिलेगी। हवा स्थिर होने से अक्षर स्थायी होंगे।
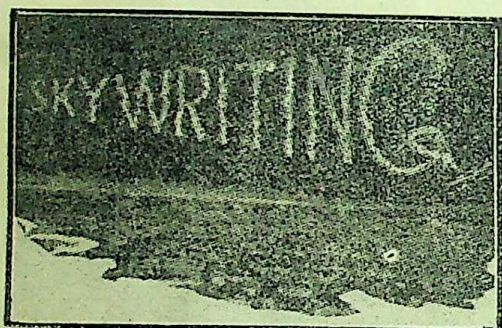
वायुयान द्वारा आकाश में लिखना

एक बार लिखना आरंभ करने के बाद फिर उसमें किसी प्रकार की भूल न होनी चाहिए। अक्षर उलटी तरफ़ से लिखे जाते हैं। ऐसा न करने से ज़मीन के ऊपर के लोग उन्हें ठीक नहीं पढ़ सकते। यदि लिखते समय किसी प्रकार की भूल हो जाय, तो उसे सुधार भी नहीं सकते। इसलिये वायुयान से लिखनेवालों को बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। प्रति मिनट दो मील के हिसाब से जब वायुयान धुआँ छोड़ता हुआ जाता है, तो धुएँ का परिमाण प्रति सेकेंड २,५०,००० वर्गफ़ीट होता है। दो मील में, अर्थात् एक मिनट में, वह १,५०,००,००० वर्गफ़ीट धुआँ छोड़ता है। शीघ्र ही तीन-चार वायुयानों द्वारा रंगीन विज्ञापन देने की भी चेष्टा की जायगी।

इस काम को करने के लिये बड़े चतुर तथा दक्ष व्यक्ति रहते हैं। गत महायुद्ध में जिन लोगों ने वायुयानों द्वारा बहुत साहस के काम करके नाम पैदा कर लिया है, वे ही इस काम में नियुक्त किए जाते हैं।

× ×

५. विज्ञापन की एक नई प्रथा

किसी सभा, सोसाइटी, बायस्कोप, थिएटर आदि में जब कोई जाता है, तो उसे बैठने के निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचाने के लिये एक मनुष्य नियुक्त रहता है। इन पथप्रदर्शकों की पीठ अब तक ख़ाली रहती थी, अर्थात् वहाँ कोई विज्ञापन नहीं रहता था। किंतु कैलिफ़ोर्निया की एक बायस्कोप-कंपनी ने इन पथप्रदर्शकों की पीठ पर भी विज्ञापन छापना अब शुरू कर दिया है। दर्शक जब उनके पीछे-पीछे जाते हैं, तब उन्हें दूसरे दिन या अगले हफ़्ते के 'प्रोग्राम' का विज्ञापन पथप्रदर्शक की पीठ पर लिखा हुआ दृष्टिगोचर होता है। विज्ञापन की यह नई प्रथा लोगों का ध्यान अपनी ओर अवश्य आकर्षित कर लेती है। यदि बायस्कोप-भवन में अँधेरा हुआ, तो पथ-प्रदर्शक एक बटन दबाकर एक छोटी-सी बिजली की बत्ती जला देता है, जिसके प्रकाश में उसकी पीठ का विज्ञापन अँधेरे में भी दिखाई देता है।

× × ×

६. काग़ज़ी नींबू का व्यवहार

साधारणतः यह बात सभी जानते हैं कि निचोड़ने के पहले यदि काग़ज़ी नींबू को थोड़ा-सा गरम कर लें, तो उससे दुगना रस निकलता है। यदि नींबू को तुरत व्यवहार में न लाना हो, तो उसे पानी में डुबाकर रख देना चाहिए। इससे वे सूखते नहीं, और बहुत दिनों तक ताज़े बने रहते हैं। गले में यदि किसी प्रकार की तकलीफ़ हो, तो एक चम्मच काग़ज़ी नींबू का रस और उतना ही शहद मिलाकर चाटने से आराम मिलता है। नींबू के रस का व्यवहार करने से भाषण देनेवालों के गले में किसी प्रकार की बीमारी नहीं होती। यदि सिर में दर्द हो, तो गरम चाय में शक्कर के बदले नींबू का अर्क डालकर पीने से बहुधा फ़ायदा होते देखा गया है। यदि दूध पीने से किसी को बाई होती हो, और पेट गड़-गड़ करता हो, तो दूध औटने के समय उसमें नींबू के दो टुकड़े डाल देना चाहिए। ऐसा दूध शीघ्र पच जाता है। यदि किसी कपड़े पर स्याही गिर गई हो, तो उस पर नमक का पर्त देकर नींबू निचोड़ दो। रोशनाई का दाग़ जाता रहेगा। यदि एक बार में दाग़ न छूटे, तो दो-तीन बार में अवश्य छूट जायगा। संगमरमर साफ़ करने के लिये काग़ज़ी नींबू के रस का व्यवहार करो। मुँह के मुहाँसे या झुर्रियों

मिटाने के लिये काग़ज़ी नींबू का एक ऐसा टुकड़ा 'स्पंज'-जैसा व्यवहार में लाओ, जिसका प्रायः सारा रस निचोड़ लिया गया हो।

× × ×

७. पशुओं की सफ़ाई

पशुओं की सफ़ाई के विषय में दो मत नहीं हो सकते। इस देश के अशिक्षित मनुष्य भी पशुओं की सफ़ाई की ओर काफ़ी ध्यान देते हैं। घोड़ों की सफ़ाई तो प्रायः प्रतिदिन खरहरे से की जाती है। किंतु गऊ, बैल, भैंस आदि पशु भी कभी-कभी पानी से धो दिए जाते हैं। जो गाँव किसी नदी के पास बसा है, वहाँ पशुओं के नहलाने की विशेष सुविधा है। जहाँ नदी नहीं, वहाँ तालाब से

पशुओं की सफ़ाई

यह काम निकाला जाता है। किंतु ऐसे भी बहुत-से स्थान हैं, जहाँ न तो नदी है, और न तालाब। इन स्थानों के पशुओं को अस्वच्छता के कारण बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ती है। आवोवा (Iowa) के एक पशुपालक ने पशुओं की सफ़ाई का एक वैज्ञानिक ढंग निकाला है। वह Vacuum Cleaner द्वारा पशु के शरीर की सारी धूल, मैल आदि निकाल डालता है। इस प्रकार साफ़ किए हुए पशु को न नहलाने की ज़रूरत होती है, न खरहरे की।

× × ×

८. धूल-कणों की गणना

लंदन में रहनेवाले मनुष्य प्रतिदिन ५०० अरब धूल के कण साँस के द्वारा अपने शरीर में ले जाते हैं। यदि ये सब कण एक लाइन में रक्खे जायँ, तो २५० मील तक लंबे पहुँचें। लंदन के हरएक घन-सेंटिमिटर हवा में २०,००० से ५०,००० तक धूल-कण रहते हैं। इसका पता हाल की परीक्षाओं से लगा है। जिस यंत्र द्वारा धूल-कण इकट्ठे किए जाते हैं, उसका एक चित्र अगले पृष्ठ में दिया जाता है। यंत्र का ऊपरी हिस्सा टोकरी के सदृश है। इसी में कुहासा जमा होता है (लंदन की हवा कुहासे से भरी रहती है), और वहाँ से कुहासे का पानी नीचे रक्खी हुई बोतल में गिर जाता है। धूल-कण छन्ने के ऊपर ही रह जाते हैं। इन्हें सुखाकर फिर तौलते हैं। तब कणों को एक दूसरे यंत्र में डालकर गिनते हैं। इस यंत्र को धूल-प्रतिरोधक (Dust Counter) कहते हैं। संसार के प्रधान-प्रधान शहरों में यह यंत्र है। इसमें एक सूराख़

कुहासा जमा करने का यंत्र

द्वारा कुछ हवा का प्रवेश कराते हैं। उसके धूल-कण यंत्र के शीशे पर सट जाते हैं, जिन्हें अणुवीक्षण-यंत्र द्वारा उन्हें गिन लेते हैं। इस प्रकार यह पता लग जाता है कि हवा में कितने धूल-कण हैं।

× × ×

९. एक इंच लंबा कोष

संसार का सबसे छोटा कोष क्लीवलैंड के पीटर जेन-किल के पास है। यह उन्हें इटली के पंपियाई-नगर में मिला था। कोष केवल एक इंच लंबा, पौन इंच चौड़ा और पाव इंच मोटा है।

इंच-भर का लंबा कोष

श्रीरमेशप्रसाद

---

१. लखनऊ का इसाबिला-थोबर्न-कॉलेज

आज से कई वर्ष पहले यह कॉलेज छोटे-से प्राइमरी स्कूल के रूप में इसाबेला नाम की एक महिला ने अमीनाबाद, लखनऊ में खोला था। श्रीमती इसाबेला के दृढ़ निश्चय तथा लगातार परिश्रम से यह उसी छोटे रूप में कुछ दिनों तक चलता रहा। उस समय एक विदेशी महिला के लिये इस छोटे-से स्कूल का चलाना भी हमारे देश में असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य था। स्कूल अमीनाबाद से उठाकर लालबाग़-नामक स्थान में लाया गया। अब यह पहले की अपेक्षा बहुत उन्नति कर चुका था। श्रीमती इसाबेला अच्छे शील-स्वभाव की तथा मधुरभाषिणी थीं। उनके फ़ोटो से तेज और हास्य-रस टपकता है, जिसे देखकर पता लगता है कि वह एक प्रभावशाली महिला रही होंगी।

जब स्कूल लालबाग़ में दिनोदिन उन्नति करने लगा, तो मिशनरियों की कृपा से श्रीमती इसाबेला को, अमेरिका से, स्कूल की सहायतार्थ कुछ धन मिला। रुपए के लिये स्कूलवालों को सदा ही कष्ट रहा, और आजकल भी कॉलेज के ऊपर पाँच लाख क़र्ज़ है।

स्कूल तो अब भी लालबाग़ में है। एक सुंदर इमारत है; चारों ओर सुहावने वृक्ष हैं। पहले कॉलेज भी यहीं लगा करता था; परंतु दो साल से नवीं-दसवीं या और कॉलेज की कक्षाएँ अब चाँदबाग़ की नई इमारत में लगती हैं। यह स्थान शहर से बिलकुल बाहर है। वास्तव में यहाँ कोई ख़ास बाग़ नहीं है; तो भी यह जगह चाँदबाग़ कहलाती है। कॉलेज बनाने के लिये यह जगह बहुत ही होशियारी से चुनी गई है। चाँदबाग़ का कॉलेज क्या है, वास्तव में एक अद्भुत वस्तु है। यह नहीं कि इसकी इमारत बहुत अजीब है; बल्कि जिन आत्माओं के उद्योग से यह चाँदबाग़ का कॉलेज बना है, उनके निस्स्वार्थ, कठिन परिश्रम का यह चिह्न है। लड़कियाँ चाँदबाग़ को अपने घर की तरह स्नेह-दृष्टि से देखती हैं। चाँदबाग़ को छोड़ते समय उनके आँसू निकल पड़ते हैं।

चाँदबाग़-कॉलेज की इमारत बहुत बड़ी और बिलकुल सफ़ेद है। दूध के समान उजली दीवालों पर पूर्णिमा का चंद्रमा अपनी निराली ही छटा दिखलाता है। कमरों के भीतर विद्युत् का प्रकाश अलग ही अपना रूप दिखाकर मन को खींच लेता है।

यहाँ तीन तरह का खाना मिल सकता है, और फ़ीस भी अलग-अलग है। हिंदू-बालिकाओं के लिये एक अलग ही पाकशाला, अलग नौकर, अलग ही मेज़, सब
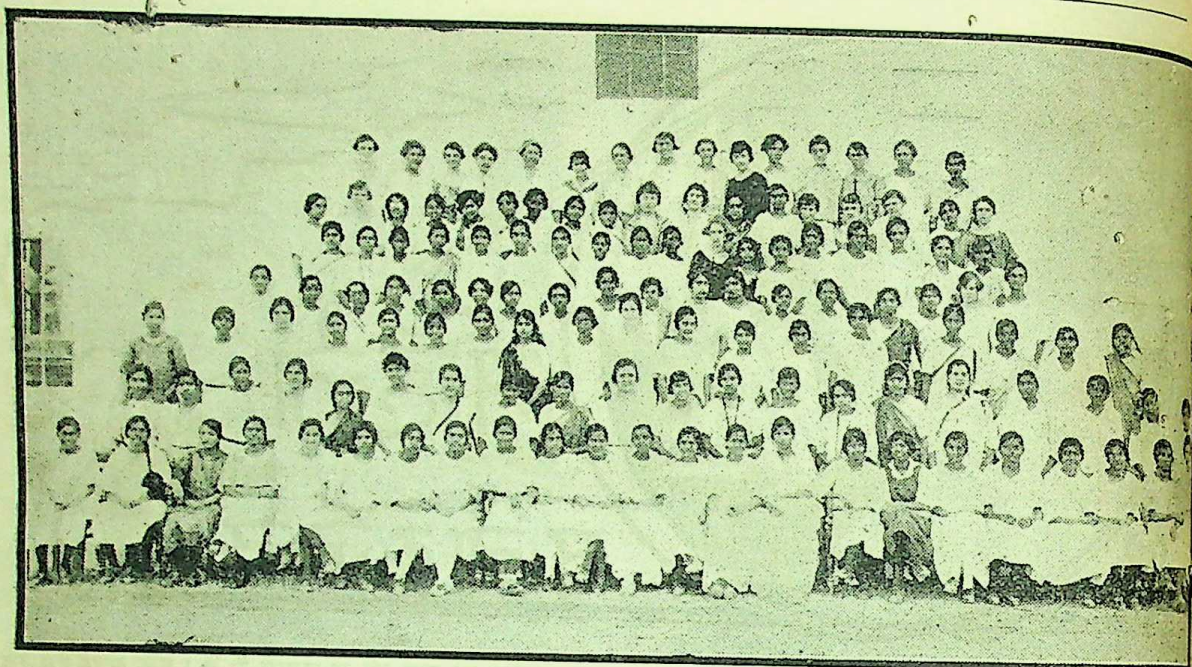
इसाबेला-थोबर्न-कॉलेज का एक फ़ोटो-ग्रूप
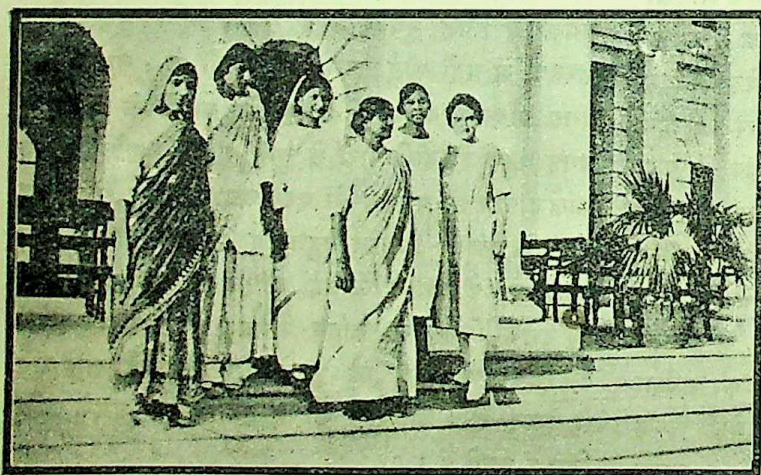
चाँदबाग़-कॉलेज की फ़िलॉसफ़ी की कक्षा

कुछ अलग है। हिंदू-लड़कियों को हर तरह का सुबीता है। सबेरे पराँठे और चाय मिलती है; बाक़ी लड़कियों को मक्खन, डबल-रोटी और चाय।

शनिवार के रोज़ कॉलेज के बरामदे में छोटा-सा बाज़ार भी लगता है, जिसमें लड़कियों को हर तरह की चीज़ें वहीं बाज़ार-भाव पर मिल जाती हैं, और बाहर से चीज़ें ख़रीदने की तकलीफ़ नहीं होती।

चाँदबाग़ में चार बड़ी इमारतें हैं—एक युनिवर्सिटी की लड़कियों के लिये, जिसका नाम मैत्री-भवन है। दूसरी इंटरमीडिएट-कक्षाओं के लिये, जिसका नाम नौनिहाल-मंज़िल है। तीसरी इमारत में दिन-भर कक्षाएँ लगती हैं, और प्रोफ़ेसरों के लिये एक अलग बड़ी भारी कोठी है। नौनिहाल-मंज़िल के साथ ही सटा हुआ खाने का कमरा है। आगे थोड़ी दूर पर अस्पताल भी है।

चाँदबाग़ के होस्टल दुमंज़िले हैं। प्रत्येक कमरे में स्वच्छ निर्मल वायु का सदा ही प्रवाह रहता है, तथा दिन को सूर्यदेव भी अपने दर्शन अवश्य ही किसी-न-किसी समय देते हैं। चाँदबाग़ में रहनेवाली लड़कियाँ यह गर्व कर सकती हैं कि वे महलों में रहती हैं; किंतु फ़र्क़ इतना ही है कि यहाँ रहनेवाली आगे जाकर दूसरों की ज़िंदगी का महल बनाती हैं।
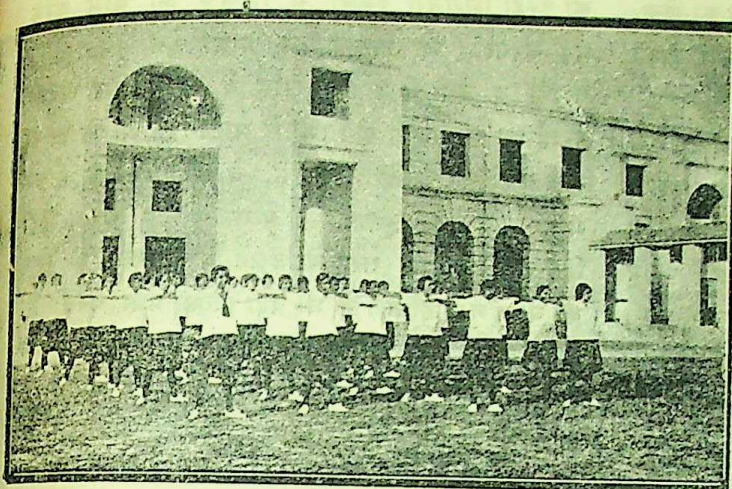
नौनिहाल-मंज़िल के सामने लड़कियाँ कसरत कर रही हैं
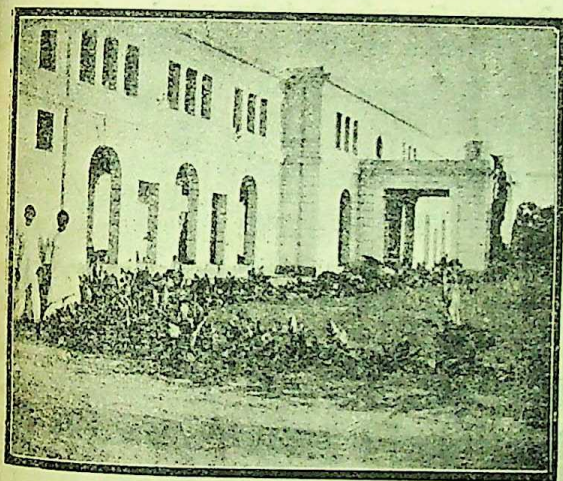
टीचरों की कोठी

और महलों में रहनेवाले दूसरों की हड्डियों पर अपने महल बनाकर रहते हैं। चाँदबाग़ के चारों ओर खेत तथा गुलाब और चमेली के छोटे-छोटे बग़ीचे बड़े ही सुहावने लगते हैं।

मिस निकल्स ने यह चाँदबाग़ की इमारत बनवाई थी। अभी इस इमारत को बने कुल दो ही वर्ष हुए हैं, इससे बहुत ही सुंदर लगती है। मिस निकल्स को इसके बनवाने में बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। पर दृढ़ निश्चय सदा पूरा होकर ही रहता है। धन्य हैं वे कुमारियाँ, जो अपना जीवन अपने धर्म तथा मनुष्य-मात्र की सेवा के लिये अर्पण कर देती हैं। ये हैं असल मेमें, जो सुबह से शाम तक कड़ा परिश्रम करती हैं—धूप की परवा नहीं, पानी की फ़िक्र नहीं—अपने जीवन को सफल करने में हमेशा लगी रहती हैं। हिंदू-जाति जिन मनुष्यों को पद-दलित कर, अछूत के नाम से, सांसारिक सुखों से वंचित रखती है, उन्हीं को ये जीवन, विद्या तथा प्रत्येक वस्तु का दान देती हैं। हिंदू-जाति यह मानते हुए भी कि संसार ही ब्रह्म-रूप है, इन बातों को अलग रहने देती है, और न-मालूम, किस गूढ़ विचार में निमग्न हो प्रतिदिन अपना विनाश करती चली जा रही है।

जिस दिन मिस निकल्स ने प्रिंसिपल के पद का त्याग किया, उसी दिन सब प्रोफ़ेसरों ने मिलकर इस कॉलेज का नाम फ़्लॉरेंस-निकल्स-हाल रक्खा। मनुष्य इन विदेशी रमणियों के स्वार्थ-त्याग को देखकर स्तंभित रह जाता है। क्या भारत की देवियाँ भी कभी वह शक्ति दिखावेंगी, जिससे भारत का नाम उज्ज्वल हो उठे?

मिस निकल्स ने जब इस कॉलेज की इमारत बनवानी चाही, तो सब लोग, क्या अमेरिका और क्या हिंदुस्तान में, इसके बनवाने के विरुद्ध थे। परंतु उनके दृढ़ निश्चय के आगे कोई भी बाधा खड़ी न रह सकी, और लड़कियों के सुख, आराम तथा विद्याध्ययन के लिये यह चाँदबाग़ की इमारत बनकर खड़ी ही हो गई। इस कॉलेज में हिंदू, ईसाई, मुसलमान आदि सभी धर्मों की लड़कियाँ पढ़ती हैं। लड़कियाँ व्यवहार में बहुत सुशील एवं सौम्य हैं। उनकी देख-रेख यहाँ बहुत अच्छी होती है।

कसरत के लिये बड़ा अच्छा इंतज़ाम है। एक ख़ास प्रोफ़ेसर, जिन्हें कसरत की शिक्षा अमेरिका में मिली है, लड़कियों को हाईजीन पढ़ाने तथा कसरत और खेल सिखाने के लिये हैं। यदि आप त्रुटि ढूँढ़ने लगें, तो आप-को इस कॉलेज में शायद ही कोई मिलेगी। लड़कियाँ खूब बैड-मिंटन, टैनिस, बास्केट-बॉल, वालीबॉल और तरह-तरह के खेल खेलकर अपनी शारीरिक शक्ति बढ़ाती हैं। भारत को वास्तव में स्वस्थ माताओं की बड़ी आवश्य-कता है। गरमियों में कसरत एक बड़े कमरे में होती है। ग्रामोफ़ोन पर रिकार्ड चढ़ा रहता है, और उसी गाने

की ताल पर लड़कियाँ कसरत करती हैं । खेल-का-खेल, व्यायाम-का-व्यायाम और दिलचस्पी-की-दिलचस्पी, सभी बातें एकसाथ होती हैं ।

गरमियों में डेढ़ बजे से ढाई बजे तक सब होस्टलों में सन्नाटा रहता है । यह विश्राम का समय होता है । सप्ताह में तीन दिन लड़कियों के बाहर घूमने जाने के लिये निश्चित रहते हैं । प्रायः सातवें दिन पियानो के बजने की ध्वनि आती रहती है । कॉलेज में सात पियानो हैं । कॉलेज की इमारत सड़क से काफ़ी दूर है । इसका फाटक ग्रीस की इमारतों के ढंग का है । जो लड़कियाँ ग्रीस का इतिहास पढ़ती हैं, इन्हें यह विशेष रूप से रुचिकर लगता है । यह बहुत बड़ा है । गरमियों में इतवार के रोज़ यहीं बैठकर रात को भजन होते हैं ।

यहाँ पर ट्रेनिंग-कक्षाएँ तथा बी० टी० भी है । जो लड़कियाँ मैट्रिक पास करके ट्रेनिंग करती हैं, उन्हें २०) रु० वज़ीफ़ा मिलता है । यहाँ की बहुत-सी लड़कियाँ मिशन से वज़ीफ़ा लेकर पढ़ती हैं, और बाद को इन्हीं मिशनरी स्कूलों में शिक्षक का काम करके वह रुपया (जो असल का आधा देना पड़ता है) वापस दे देती हैं । इस तरह वे अपने सिर अपनी पढ़ाई का भार लेती हैं । जिनके माता-पिताओं में इतना ख़र्च करने की शक्ति नहीं है, वे भी शिक्षित होकर माता-पिता का बुढ़ापे में पालन-पोषण करती हैं । हिंदू-लड़कियों की तरह ये उलटे माता-पिता के सिर का बोझ नहीं होतीं । ये भी वही शिक्षा प्राप्त करती हैं, जो हिंदू-घरानों में सिर्फ़ अमीरों की लड़कियों को मिल सकती है । क्या हिंदू-जाति भी कभी जगकर कर्म-मार्ग का अवलंबन करेगी, और श्रीकृष्ण महाराज का अपने आपको सच्चा भक्त कहाने-योग्य बनेगी ? क्या ऐसा दिन हिंदू-जाति के लिये कभी आवेगा, जब वास्तव में गीता का उपदेश मानकर उसके अनुसार कर दिखाने-वाले मनुष्य हिंदू-जाति में भी पैदा होंगे ?

कौशल्यादेवी

कवि-चर्चा

१. कृष्ण कवि

मिश्रबंधु-विनोद में अनेकों त्रुटियाँ हैं। माधुरी में प्रकाशित याज्ञिक-बंधुओं के लेखों में कुछ पर प्रकाश डाला जा चुका है। पर कृष्ण कवि के ग्रंथों का ठीक-ठीक पता दोनों में से किसी भी बंधु-वर्ग को नहीं है, तथा जो ग्रंथ उन्हें प्राप्त हुए हैं, उनके रचना-काल के विषय में अनुमान से ही काम लिया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि दोनों में से किसी को कोई ऐसा ग्रंथ दृष्टिगोचर नहीं हुआ, जिसमें कवि ने रचना-काल लिखा हो; अन्यथा मिश्रबंधु यह कभी न लिखते कि "कृष्ण कवि ने अपनी रचना का समय तक नहीं लिखा।"

मिश्रबंधुओं ने राधाकृष्ण चौबे और कृष्ण कवि को पृथक्-पृथक् कवि माना है। इसका संशोधन करते हुए याज्ञिक-बंधुओं ने "मिश्रबंधु-विनोद"-शीर्षक लेख में, वर्ष ३, खंड १, संख्या ५, मार्गशीर्ष, ३०१ तुलसी-संवत् की माधुरी में, लिखा है कि यदि राधाकृष्ण चौबे ने भी बिहारी-सतसई पर टीका की है, तो कृष्ण कवि और राधाकृष्ण चौबे, दोनों एक ही पुरुष हैं, दो नहीं, जैसा कि काशी-नागरी-प्रचारिणी की खोज की रिपोर्ट में दोनों के अवतरणों के देखने से स्पष्ट हो जाता है।

अस्तु, यदि हम मिश्रबंधुओं के अनुसार कृष्ण कवि को राधाकृष्ण चौबे से पृथक् मानें, तो उनकी बनाई केवल 'बिहारी-सतसई की टीका' ही हिंदी-संसार को विदित है—यदि याज्ञिक-बंधुओं के अनुसार दोनों कवियों को एक ही माना जाय, तो उनकी बनाई दो पुस्तकें, 'कृष्ण-चंद्रिका' तथा 'बिहारी-सतसई की टीका', विदित हैं। किंतु मेरे पास कृष्ण-कवि-निर्मित एक और ग्रंथ है, जिसका नाम है 'बिदुर-प्रजागर'।

इसकी रचना का समय कवि ने अंत में स्पष्ट-रूप से गुरुवार, कार्त्तिक-शुक्ल पंचमी, संवत् १७९२ दिया है, और यह भी लिख दिया है कि यह ग्रंथ राजा आपामल्ल की आज्ञा से लिखा। यथा—

> राजा आपामल्ल की, अग्या अति हित जानि;
> बिदुर-प्रजागर कृष्ण कवि भाषा कह्यो बखानि।
> मैं अति ही ढीठौ करी कबि-कुल सरल सुभाइ;
> भूल-चूक कछु होइ तौ लीजौ समुझि बनाइ।
> सत्रह से अरु बानबे, संबत कातिक मास;
> सुक्ल पच्छ पाँचै गुरौ, कीनौं ग्रंथ प्रकास।

यह ग्रंथ ६ अध्यायों में लिखा गया है। इसमें विविध छंदों द्वारा विदुर और धृतराष्ट्र का धर्म-संवाद वर्णन किया गया है, जैसा कि आरंभ में स्वयं कवि ने ही कहा है—

> धितराष्ट्र सों बिदुर नैं, कियौ धर्म-संबाद;
> कहत कृष्ण भाषा बरनि, सुनत बिलाइ बिषाद।

पाठकों के अवलोकनार्थ मैं यहाँ 'बिदुर-प्रजागर' से कुछ छंद उद्धृत किए देता हूँ—

सब नीतिन की नीति यह, राज रंक जो कोइ ;
समों देखि के अनुसरे, अंत सुखी वहु होइ ।

रची अपनी मय माया उपाय, सभा की प्रभा न कही कछु जाय ;
अनेक बनें बहु अद्भुत भाय, रही तिहुँ लोकनि में छबि छाय ।
सबै ब्रह्मंड तहाँ दरसाय, हिये भ्रम कौन के होत न आय ;
बिलोकत लोचन लेत लुभाय, बढ़े सुषपुंज मनो-बच-काय ।

मदिरा ते ऐश्वर्य-मद दारुन अधिक लखाय ;
वह उतरै अपने समै, यह बिन बिपति न जाय ।

रथ सरीर या पुरुष कौं ताकैं इंद्री बाज ;
रथी बिराजत आतमा, चक्र-मनोरथ साज ।

चक्र-मनोरथ साज, बाज अति चंचल आही ;
जित ही कों मुँह परै, खैंचि तिनकौं लै जाही ।
ज्ञान-रज्जु सों बाँधि धीर जो करत आप हथ ;
कठिन पंथ-संसार भले निबहत ताकौं रथ ।

जैसी गति बीतत दुहागिनि तिया कौ राति,
जैसी गति बीतत है जुआ धन हारे ते ;
तैसी गति बीतै बहु बैरिन के बस परें,
जैसी गति बीतै सिर धरैं भार भारे ते ।
नगर में घिरयो होय, बाहर कलत्रगत,
खैबे को न पावे कछु बसु न बिचारे ते ;
कहै कबि कृष्ण होत एतिन कौं जैसी गति,
तैसी गति होत जिय जानि मौन धारे ते ।

सत्येंद्र कुलश्रेष्ठ

× × ×

२. बिहारी और केशव

विद्वद्वर श्रीयुत पं० पद्मसिंहजी ने अपने 'संजीवन-भाष्य' में बिहारी की कविता की संस्कृत तथा हिंदी के अन्य कवियों की कविताओं से तुलना की है, और स्पष्ट-रूप से इस बात को प्रमाणित भी कर दिया है कि बिहारी के छोटे-छोटे दोहे अन्य कवियों के बड़े-बड़े श्लोकों और कवित्तों से अधिक सरस और भाव में बढ़े-चढ़े हैं। सचमुच साहित्य की दृष्टि से बिहारी-सतसई हिंदी-साहित्य में एक अनुपम ग्रंथ-रत्न है।

पंडितजी ने अपने 'भाष्य' में, "बिहारी और हिंदी-कवि"-नामक शीर्षक में, पहले ही बिहारी और केशव की कविताओं की तुलनात्मक दृष्टि से समालोचना की है। इसी प्रकरण में बिहारी के—

चिरजीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर ;
को घटि, ये बृषभानुजा, वे हलधर के बीर ।

इस दोहे का मुक़ाबला केशव के निम्न-लिखित कवित्त से किया है—

अनगने औठपाय रावरे गने न जाहिं,
वेऊ आहिं तमक करैया अति मान की ;
तुम जोई-सोई कहौ, वेऊ जोई-सोई सुनैं,
तुम जीभ-पातरे, वे पातरी हैं कान की ।
कैसे "केसौराय" काहि बरजौं, मनाऊँ काहि,
आपने सयाँ धौं कौन सुनत सयान की ;
कोऊ बड़वानल की ह्वैहै, सोई ऐहै बीच,
तुम बासुदेव, वे हैं बेटी बृषभान की ।

पंडितजी के कथनानुसार "बिहारी की सखी का परिहास बड़ा ही लाजवाब है। रसिकमोहन सुनकर फड़क गए होंगे ; और इससे अच्छा, साफ़, सच्चा, सीधा और दिल में गुदगुदी पैदा करनेवाला मीठा मज़ाक़ साहित्य-संसार में शायद ही हो।"

अस्तु, यदि बिहारी की सखी का परिहास लाजवाब हो सकता है, तो इसमें संदेह नहीं कि केशव की सखी भी कम पुर-मज़ाक़ न थी। यदि रसिकमोहन बिहारी की सखी की उक्ति सुनकर फड़क सकते हैं, तो केशव की सखी के वाद-विनोद को सुनकर भी आनंद-मग्न हो जायँगे। यदि केशव का तात्पर्य केवल "कान की कच्ची और जीभ की पतली से ही होता" (जैसा कि पंडितजी लिखते हैं), और इतने बड़े कवित्त में सिर्फ़ दोनों की 'बुद्धिमत्ता' ही दिखलानी होती—"दोनों ही बड़े बाप की औलाद हैं, बराबर का जोड़ है"—केवल इतना ही अभिप्राय बतलाना होता, तो कवित्त के चौथे चरण में "कोऊ बड़वानल की ह्वैहै सोई ऐहै बीच", यह वाक्य बिलकुल निष्प्रयोजन था, और बड़वानलवाली की कोई ज़रूरत न थी !

हाँ, यह मानने को हम प्रस्तुत हैं कि केशव के अभंग-श्लेष में "कुछ-न-कुछ खींचतान" अवश्य है, अर्थ निकालने में बुद्धि को कष्ट अवश्य देना पड़ता है; परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि खींचतान और कष्ट के डर के मारे कवि के वास्तविक अभिप्राय को ही छोड़ दिया जाय।

जिन साहित्य-प्रेमियों ने केशव के ग्रंथों का ध्यान-पूर्वक मनन किया है, उन्हें यह बात पूर्ण रूप से ज्ञात

है कि केशव को 'श्लेष' कहने में विशेष आनंद प्राप्त होता था। रामचंद्रिका, कवि-प्रिया और रसिक-प्रिया इत्यादि प्रत्येक ग्रंथ देख डालिए, अधिकतर आपको श्लेषों की भरमार मिलेगी। जहाँ तुलसीदासजी ने रामचरित को सिर्फ़ सीधी-सादी चौपाइयों और दोहों में वर्णन किया है, वहाँ केशव ने रामचंद्रिका में ७५ फ़ी सदी व्यंग्योक्तियाँ कही हैं। इसी कारण हिंदी-संसार में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"दीबो न चाहै बिदाई नरेश तो पूछत केशव की कविताई।"

अस्तु, वासुदेव का अर्थ केवल 'बड़े बाप', वसुदेव के पुत्र वासुदेव, अर्थात् कृष्णजी से ही नहीं है, बल्कि श्लेषार्थ वासुदेव अर्थात् सूर्य के पुत्र, यों किया जाना चाहिए; क्योंकि "वसुस्त्वग्नौ देवभेदे नृपे रुचौ" इति मेदिनी।

अमर-कोष में भी "देवभेदेऽनले रश्मौ वसु रत्ने धने वसु" के अनुसार वसु-शब्द का अर्थ रश्मि (किरणें) अग्नि है। इस प्रकार वसुदेव हुए सूर्य और उनकी अपत्य हुई वासुदेव।

मतलब यह हुआ कि यह तो हैं सूर्य के पुत्र, और वह हैं वृष के सूर्य की पुत्री। पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वृष के भानु, ज्योतिष-मतानुसार, वैशाख या ज्येष्ठ में अर्थात् गरमी के दिनों में पड़ते हैं, जो सूर्य की अत्युष्णता को प्रकट करते हैं। इससे समझ सकते हैं कि मानिनी राधा के लिये वृषभानुजा कैसा उपयुक्त शब्द है।

अब रही बड़वानल की बात। मनुष्य जब सूर्य की तीक्ष्ण रश्मियों के ताप में अत्यंत व्याकुल हो जाता है, तो शीतल होने का सबसे अच्छा उपाय है जल। परंतु बड़वानल इस जल का भी शोषण कर लेता है। इस कारण इन सूर्य के लड़के और लड़की के बीच में जाने की किसी बड़वानलवाली की ही हिम्मत हो सकती है; वही इनको समझा सकती है।

बैल के भाई-बहन और सूर्य के लड़का-लड़की, इनमें कौन-सा परिहास अच्छा है, इसका निर्णय हम पाठकों के ऊपर ही छोड़ते हैं।

लक्ष्मीनारायण पांडेय

× × ×

३. गोस्वामीजी पर मिथ्या दोषारोपण

आधुनिक हिंदी-संसार में लोग प्रायः गोस्वामी तुलसीदासजी से भी उलझ बैठते हैं। अक्सर तो वर्ण-ज्ञान प्राप्त करते ही लोग उन्हीं से मैदान जीतने को खड़े हो जाते हैं। मात्रा गिननेवाले, कवि-नामधारी व्यक्ति तो बहुधा उन्हीं से लोहा लिया करते हैं। लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक भी उनकी कविता का मन-माना अर्थ करके उस पर क़लम-कुल्हाड़ा चला बैठते हैं। इस नवीन सभ्यता के युग में यह प्रथा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है।

कुछ दिन हुए, "फूलै-फलै न बेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद" इस आधे सोरठे को लेकर, तुलसीदासजी की उक्तियों में प्रकृति-पर्यवेक्षण की प्रतिकूलता पर विवाद चल रहा था। गोस्वामीजी के मुद्दई हैं सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए०। 'साहित्यालोचन' में बाबू साहब ही ने उन्हें दोषी बनाकर संसार के सामने उपस्थित किया है। गोस्वामीजी के भक्तों ने संपादकों के इजलास में अपील करके सारा दोष शेख़ सादी और प्रकृति-सुंदरी के सिर मढ़ने की चेष्टा की है। बाबू साहब ने तो केवल अर्थ की हत्या की है; किंतु गोस्वामीजी के श्रद्धांध भक्तों ने न्याय की भी दुर्गति कर डाली है। वास्तव में तुलसीदासजी जो बेत का फूलना-फलना न मानते, तो इसके लिये प्रकृति-सुंदरी नहीं, शेख़ सादी के सदृश वही दोषी कहे जाते। परंतु असल में यह बात नहीं। लोग व्यर्थ उनकी निर्दोष कविता-कामिनी के माथे कलंक का टीका लगा रहे हैं।

इस सोरठे में गोस्वामीजी ने 'बेत'-शब्द का प्रयोग, वेत्र के लिये नहीं, पान (नागवल्ली) के लिये किया है। बघेलखंडी हिंदी में पान को भी 'बेत' कहते हैं। पान फूलता-फलता भी नहीं है।

'रामचरित-मानस' में अवधी भाषा का प्राधान्य है, और अवधी तथा बघेलखंडी हिंदी में बहुत थोड़ा अंतर है। आश्चर्य नहीं कि अवध-प्रांत में 'बेत' और 'पान' पर्यायवाची शब्द माने जाते हों, अथवा गोस्वामीजी के समय माने जाते रहे हों। प्रमाण में ग्रामीण पंडित लोग निम्न-लिखित दोहे उपस्थित करते हैं—

प्रथम खरांते सींचियतु, चंद्र-सूर्य नहिं हेत;
'तुलसी' खल-संगति बसे, फूलै-फलै न बेत।
बेत कहत आकाश को, बेत कहत पाखान;
बेत बेंत को कहत हैं, कहत बेत को पान।

हम नहीं कह सकते कि इन दोहों की उत्पत्ति तुलसीदासजी ही की पवित्र लेखनी से हुई है या नहीं।

हम इनकी खोज कर रहे हैं। पता लगने पर यथार्थ बात पाठकों के सामने उपस्थित करेंगे।

हम भी स्वीकार करते हैं कि गोस्वामीजी यह सोरठा लिखने के प्रथम ही शेख़ सादी का पद्य देख चुके थे। यही कारण है कि उन्होंने 'पान' के अन्य पर्यायवाची शब्दों को छोड़कर 'बेत'-शब्द को ही पसंद किया। शेख़ सादी-जैसे महाकवि को प्रकृति-सुंदरी से पराजित होते देखकर भी गोस्वामीजी ने, उन्हीं के भावों में 'बेत'-शब्द का समुचित प्रयोग करके, वास्तव में कमाल किया है। उन्होंने इस अनोखे ढंग से शेख़ सादी के पद्य पर प्रकाश डालकर हिंदी के अलौकिक शब्दार्थ-शक्ति-चमत्कार को अभिव्यंजित किया है। यदि वह बेत के स्थान पर पान अथवा उसके किसी अन्य पर्यायवाची शब्द का प्रयोग करते, तो शेख़ सादी के पद्य से सोरठे का सामना होने पर उनका यह काव्य-चातुर्य प्रकट न होता। 'बेत'-शब्द गोस्वामीजी की प्रखर प्रतिभा तथा प्रकृति-परिचय का परिचायक है।

वाक्य-विलास की सामग्री समझकर छिद्रान्वेषण के लिये ही गोस्वामीजी की कविता पढ़ने से उनकी भावुकता और काव्य-मार्मिकता का पता नहीं चल सकता। उनके काव्य का रसास्वादन करने के लिये हृदय भी होना चाहिए।

शत्रुसूदनसिंह कर्चुली

---
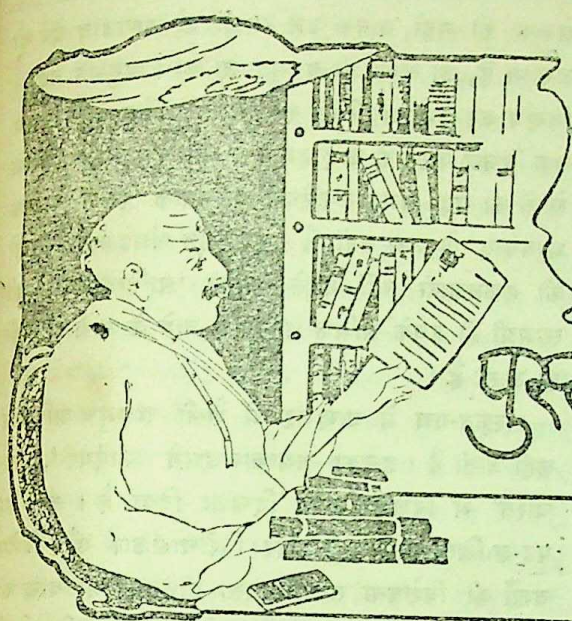
१. साहित्य

संक्षिप्त राम-स्वयंवर—रचयिता, स्वर्गवासी महाराज रघुराजसिंह, रीवाँ-नरेश ; संपादक तथा संक्षिप्त रूप में प्रकट करनेवाले बाबू व्रजरत्नदासजी; प्रकाशक, काशी-नागरीप्रचारिणी-सभा ; मनोरंजन-पुस्तकमाला का ४२वाँ ग्रंथ । छपाई और काग़ज़ साधारण । पृष्ठ-संख्या २७३ ; मूल्य १)

रीवाँ-नरेश स्वर्गवासी महाराज रघुराजसिंहजी ने 'राम-स्वयंवर' नाम की एक बहुत बड़ी पुस्तक लिखी है। आकार में बड़ी होने के कारण मूल्य अधिक है। सर्व-साधारण में उसका प्रचार नहीं है। फिर भी वह एक अच्छी पुस्तक है, और इस बात की आवश्यकता थी कि स्वर्गीय महाराज की कविताओं के प्रचार का उद्योग किया जाय, तथा विस्मृति के गर्त में पड़ने से उनकी रक्षा की। हर्ष की बात है कि बाबू व्रजरत्नदासजी ने इस ओर सबसे पहले ध्यान दिया है, जिसका फल यह समालोच्य-पुस्तक 'संक्षिप्त राम-स्वयंवर' है। इसके आदि में १२ पृष्ठों की एक छोटी, परंतु अच्छी भूमिका है। फिर ३ पृष्ठों में अनुक्रमणिका है, और उसके बाद २७ विषयों में विभक्त २७३ पृष्ठव्यापी मूल-ग्रंथ। मूल-कविता के कठिन स्थल समझाने के लिये न तो फ़ुटनोट हैं, और न पुस्तकांत में ही किसी प्रकार के नोट। इस कारण पुस्तक की अर्थ-संबंधी कठिनाइयों को यह संस्करण दूर नहीं कर सकता। यह खेद की बात है। आशा है, अगले संस्करण में यह त्रुटि दूर कर दी जायगी। स्वर्गीय महाराजा रघुराजसिंहजी की कविता के संबंध में विशेष कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। सभी लोग उसका आदर करते हैं, और वह है भी प्रशंसनीय। 'राम-स्वयंवर' में सत्काव्य के सभी लक्षण हैं। हाँ, दो-एक बातें खटकने-वाली भी हैं। कहीं-कहीं पर महाराज ने कृत्रिमता का आश्रय आवश्यकता से अधिक लिया है, और कहीं-कहीं पर अप्रचलित शब्दों का व्यवहार भी पाया जाता है। कथा-प्रसंग में भी कहीं-कहीं पर किसी साधारण घटना का आवश्यकता से अधिक वर्णन है, और कहीं पर मुख्य घटना का वर्णन अत्यंत संक्षिप्त। बाबू व्रजरत्नदासजी ने इस संक्षिप्त संस्करण में इस त्रुटि को दूर करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

× × ×

भारतीय आत्मत्याग—लेखक, कुमार नारायणसिंह बी० ए० ; प्रकाशक, साहित्य-परिषद्, करौली (राजपूताना)। पृष्ठ-संख्या २५२ ; काग़ज़ और छपाई साधारण ; सुंदर जिल्द से विभूषित ; मूल्य १॥)

अँगरेज़ी में 'गोल्डेन डीड्स' नाम की एक प्रसिद्ध पुस्तक है। इसमें सच्ची शूरता का परिचय देनेवाले वीरों के पुण्य-चरित वर्णित हैं। अँगरेज़ी-साहित्य में इस पुस्तक का बड़ा आदर है। खेद है कि उक्त पुस्तक में भारतीय वीरों की चरितावली नहीं है। कुमार नारायण-

सिंहजी ने 'भारतीय आत्मत्याग'-पुस्तक उपर्युक्त 'गोल्डेन डीड्स' के आदर्श पर हिंदी में लिखी है, और उसमें भारतीय वीर-चरितावली का समावेश किया है। पुस्तक-रचना का यह उद्देश्य परम प्रशंसनीय है। कुँअर साहब की पुस्तक लोकप्रिय हुई है; क्योंकि हमारे सामने जो समालोच्य प्रति है, वह दूसरे संस्करण की। इस पुस्तक में जिन वीरों और वीरांगनाओं का वर्णन हुआ है, उनमें से बहुतों के चित्र भी कदाचित् प्राप्त हो सकें। यदि आगामी संस्करण में पुस्तक सचित्र कर दी जाय, तो और भी अच्छा हो। 'भारतीय आत्मत्याग' की भाषा में भी कहीं-कहीं संशोधन की आवश्यकता समझ पड़ती है। वीरों और वीरांगनाओं के चुनाव में सदा मतभेद हो सकता है, इसलिये उस विषय में हम कुछ नहीं कहना चाहते। हमें हर्ष है कि शिक्षित राजपूत-युवकों का ध्यान हिंदी-साहित्य-सेवा की ओर आकृष्ट हुआ है। हमारा विश्वास है कि हिंदी-संसार इस पुस्तक का आदर करके कुमार नारायणसिंहजी को और पुस्तकें लिखने के लिये प्रोत्साहित करेगा। इस पुस्तक में चरित्रों की संख्या सब मिलाकर ४१ है। प्रारंभ में विषय-सूची का अभाव बहुत खटकता है। हम इस पुस्तक का प्रचार चाहते हैं।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

साहित्य-हृदय—लेखक, उपाध्याय हरिश्चंद्र शर्मा; प्रकाशक, नर्मदेश्वर उपाध्याय एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। पृष्ठ-संख्या २१०; मूल्य जिल्ददार का १।=); कागज़ साधारण; छपाई-सफ़ाई मामूली।

जिस समय हमारे हाथ में यह पुस्तक आई, इसकी बढ़िया जिल्द और उस पर छपे हुए सुनहले अक्षर तथा एक विद्वान् प्रकाशक का नाम देखकर हमारे चित्त में आकर्षण उत्पन्न हुआ। हमने समझा, इस हृदय के भीतर कुछ ऐसी तंत्रियाँ ज़रूर होंगी, जो सचमुच हृदय को हिला देंगी। ख़ैर, आगे चलकर कुछ अधिक आशा हुई, जब संपादक के वक्तव्य से यह मालूम हुआ कि इस पुस्तक के भिन्न-भिन्न लेखों के लेखक उपाध्यायजी बाणभट्ट की शैली को अपनाकर भी उससे अधिक मौलिक एवं अँगरेज़ी कवि काउपर से भी अधिक ज्ञान-संचयी हैं, तथा यदि पाठक इन लेखों को पढ़कर प्रसन्न हो जायँ, तो उन्हें लेखक को नहीं, बल्कि उन रसज्ञों को धन्यवाद देने की ज़रूरत है, जो लेखों की बहुमूल्यता का (अनुभव नहीं) निर्णय कर उन्हें उपस्थित कर रहे हैं। किंतु बहुत समय तक विचार करने के बाद हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि लेखों का यह संग्रह उपस्थित करनेवाले 'रसज्ञ' अधिक धन्यवाद के पात्र नहीं हैं। हम इन संग्रहकर्ता रसज्ञों की हक़तलफ़ी नहीं करते, बल्कि 'साहित्य-हृदय' की सामग्री ही उनके अधिक धन्यवाद पाने के मार्ग में खड़ी हो जाती है।

संस्कृत-गद्य में बाणभट्ट की शैली सचमुच अद्वितीय कही जाती है। इसका चमत्कार उसने 'कादंबरी', 'हर्ष-चरित' में बिलकुल स्पष्ट दिखला दिया है। दंडी का पद-लालित्य प्रसिद्ध है; पर विरोधालंकार और विशेष वर्णों की विशेषता तथा प्रचुरता होने पर भी बाण की शैली में कुछ ऐसा प्रवाह है, जो पाठक को स्थिर नहीं होने देता। किंतु प्रस्तुत पुस्तक में इसकी बिलकुल कमी है। बाणभट्ट की सरसता का स्थान यहाँ शर्माजी की नीरसता ने ले लिया है। बाणभट्ट की शैली हमें हठात् श्रीहर्ष का स्मरण दिलाती है, तथा उसमें हम प्रत्यक्ष भवभूति की सरसता एवं लालित्य का स्रोत प्रवाहित पाते हैं। इस पुस्तक में उसका सर्वथा अभाव है। संभव है, "वेदांत या अध्यात्म" की छाया के कारण ऐसा हो गया हो। पर फिर भी इसे हम बाणभट्ट पर साहित्यिक प्रहार समझते हैं। अवश्य ही यह अनधिकार सीमोल्लंघन साहित्यिक हीनता का द्योतक है। हाँ, इसके कुछ लेख काउपर के लेखों की श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं, संपादक के इस कथन से हम ज़रूर सहमत हैं। मतभेद केवल इतना है कि काउपर ने काव्य की सीमा का उल्लंघन नहीं किया; पर हमारे शर्माजी उसका उल्लंघन करने में एकदम वज्रांग बन गए हैं। पुनः इस कथन से भी हम सहमत हैं कि साहित्य-हृदय कदाचित् साहित्य-मर्मज्ञों के ही लिये लिखा गई है। छायावाद की कुछ ऐसी दुर्बोध पहेली इसके अंदर है, जो छायावाद भी पूर्णतः नहीं है, और इसीलिये जिसे सुलझाना साधारण पाठकों के लिये कठिन हो जाता है। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि बायरन ने किसी के द्वारा अपनी ही कविता का अर्थ पूछे जाने पर एक समय कहा था—"क्या जानें कौन-सी रचना किस विशेष परिस्थिति में की गई है।" इसी प्रकार की

दुर्बोधता से यह पुस्तक यत्र-तत्र भी पड़ी है। दूसरी बात, जिसके कारण यह साहित्य-मर्मज्ञों के लिये कही गई है, शायद यह है कि साहित्य-मर्मज्ञ ही इसका उचित संशोधन कर पारायण कर सकते हैं। भाषा-संबंधी विशेषता की दृष्टि से इसमें मुहावरों का कहीं पता नहीं; व्याकरण की दृष्टि से सर्वनाम और लिंगों की भूलें विद्यमान हैं, और प्रूफ़ (जिसके लिये धन्यवाद भी दिया गया है) तथा विराम-संबंधी भूलों से भी यह वंचित नहीं रही। यह लेखक का नहीं, बल्कि संपादक का दृष्टिकोण है कि लेखक की शैली की रक्षा करते हुए भाषा तथा विराम चिह्नों की शुद्धता से लेखक के भावों को अधिक स्पष्ट रूप से सामने आने दे। फिर ऐसी पुस्तक में, जहाँ वर्णन-क्रम के साथ-साथ कल्पना अपने खेल करती हुई आती देख पड़ती है, स्पष्टता का न होना पुस्तक की महनीयता को कम कर देता है।

"अँगरेज़ी के प्रकृति-भक्त कवि वर्ड्सवर्थ की प्रकृति-उपासना ने इन (लेखक) के चित्त को मोह लिया था; इससे यह भी प्रकृति के बड़े उपासक हैं।" ऐसे अनन्य उपासक की उपासना बिलकुल विशुद्ध एवं निर्लेप होनी चाहिए थी। खेद है, यह उपासना हमको इस पुस्तक में आडंबरयुक्त देख पड़ती है। प्रकृति आडंबरों से रहित है, यह प्रसिद्ध है; प्रकृति और कृत्रिमता में फिर भेद ही क्या? प्रकृति की उपासना का जितना अंश, जितना वर्णन और जितना चित्रण इस पुस्तक में आया है, वह सब आडंबर-विहीन नहीं है, प्रत्युत रंगामेज़ी से भड़कीला बना दिया गया है। जिस प्रकार कोई बिसाती किसी टूटी-फूटी वस्तु को झाड़-पोंछकर क़रीने से रख देता है, ठीक उसी प्रकार इस पुस्तक की सामग्री रख दी गई है। कल्पना है अवश्य; पर वह विना साज की है, और जहाँ प्रकृति-चित्रण में साज की ज़रूरत नहीं, वहाँ वह अच्छी तरह पहनावे के साथ खड़ी कर दी गई है, जिसका परिचय हमें कविता, प्रेम, क्षमा और आनंद-शीर्षक लेखों में मिलता है। यही इस पुस्तक के लेखक की प्राकृतिक उपासना का स्वरूप है; पर वह ऐसा नहीं है, जिसके बारे में कहा जाय—

'नहीं मुहताज ज़ेवर का जिसे ख़ूबी ख़ुदा ने दी।'

इस २१० पृष्ठों की पुस्तक में उपाध्यायजी के १८ स्फुट लेखों का संग्रह है, जिनमें से बहुत-से कदाचित् 'कादंबिनी' मासिक पत्रिका में निकल चुके हैं। निम्न-लिखित विषयों पर ये लेख हैं—मित्र, पुस्तकों की महिमा, कविता, लक्ष्मी, प्रेम, विवाह, आषाढ़ का आरंभ, फाल्गुन, संतोष, जन्मभूमि, क्षमा, श्रीशीतलगंज की अष्टमी, हमारी मसहरी, हमारी दिनचर्या, आनंद, श्रीशीतलगंज की द्वितीय अष्टमी, लखनऊ और शरद्।

यह सब पढ़कर कदाचित् पाठकों को यह ख़याल हो रहा हो कि तब तो पुस्तक में कुछ नहीं है। ऐसा सोचना भूल होगी। पुस्तक में एक बड़ी भारी चीज़ है, और वह है आशा। इस साहित्य-हृदय के भीतर से एक आशा फूट रही है कि हिंदी-भाषा का क्षेत्र बहुत शीघ्र लहलहानेवाला है। 'साहित्य-हृदय' में भले ही साहित्य न मिला हो, अथवा दिग्भ्रम के कारण हमें ही ढूँढ़ निकालने में निराशा हुई हो, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, पर उपाध्यायजी के हृदय में साहित्य का वास ज़रूर है—निस्संदेह है। इसका प्रतिबिंब हमें साहित्य-हृदय में ही मिलता है। ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे। हमको विश्वास हो रहा है कि यदि यही लगन बनी रही, तो उनका विशाल हृदय वास्तव में कुछ अमर साहित्य छोड़ जायगा।

मातादीन शुक्ल

× × ×

२. इतिहास

भारत-इतिहास—लेखक, रायसाहब पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए०, साहित्य-रत्न, हितकारिणी-सभा हाई स्कूल (जबलपुर) के प्रिंसिपल और 'हितकारिणी' मासिक पत्रिका के संपादक; प्रकाशक, मिश्रबंधु-कार्यालय, जबलपुर; मूल्य ३); पृष्ठ-संख्या ६८६; काग़ज़ चिकना; छपाई-सफ़ाई सुंदर; चित्र-संख्या ४३; मान-चित्र ७।

हिंदी में अच्छे और ऐसे इतिहास-ग्रंथों की बहुत ही कमी है, जो आलोचनात्मक दृष्टि से लिखे गए हों। फिर यह विषय प्रायः बहुतों के लिये रूखा होता है, और ख़ासकर चंचल मनवाले विद्यार्थियों के लिये। ऐसे नीरस विषय को ही रोचक बनाना पहले तो कठिन कार्य है। फिर विद्यार्थियों की दृष्टि से उसे रुचिकर बनाना तो और भी अधिक कष्टसाध्य है। भारतवर्ष के जो इतिहास वर्तमान हैं, उनमें सबसे अच्छा लाला लाजपतराय का है। पर वह परीक्षार्थी—ख़ासकर माध्यमिक

शिक्षा के विद्यार्थियों—के काम का नहीं। पं० श्यामविहारी तथा शुकदेवविहारी मिश्र एवं श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालंकार के इतिहास-ग्रंथ भी हैं, 'शालोपयोगी भारतवर्ष' आदि ग्रंथ भी हैं; पर भारतवर्ष पर प्रकाश डालनेवाले इतिहास-ग्रंथों की संख्या अंत में उँगलियों पर गिनी जा सकती है। हमारा मतलब ऐसे ग्रंथों से है, जिन्हें सचमुच ग्रंथों की श्रेणी में रख सकते हैं। इसीलिये प्रायः बहुत समय तक मार्सडन साहब के अँगरेज़ी-इतिहास का अनुवाद ही स्कूलों में पढ़ाया जाता रहा। अच्छे ग्रंथ न होने पर जो कुछ था, उसी से लाभ उठाया जाता रहा। राजा शिवप्रसाद के 'इतिहास-तिमिर-नाशक' से लेकर हंटर साहब के अनुवादित 'भारतवर्ष का इतिहास' तक एक भी पुस्तक ऐसी नहीं, जिसे भारतवर्ष का इतिहास कह सकें। प्रयाग के म्योर सेंट्रल कॉलेज के श्रीयुत ईश्वरीप्रसाद एम्० ए०, एल्-एल्० बी० का हाल ही में निकला हुआ भारतवर्ष का इतिहास भी इस कोटि का नहीं, जिसे वास्तव में हम हिंदी में भारतवर्ष का इतिहास कह सकें। अस्तु, इस परिस्थिति में यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि विद्वद्वर रायसाहब द्विवेदीजी के राष्ट्रीय दृष्टि से लिखे हुए छात्रोपयोगी इस 'भारत-इतिहास' ने हिंदी-साहित्य के एक अत्यंत महत्त्व-पूर्ण अंग के अभाव की पूर्ति कर दी है।

द्विवेदीजी के प्रिय विषय साहित्य और इतिहास ही हैं। 'भारत-इतिहास' की लेखन-शैली, आलोचनात्मक दृष्टि, क्रमबद्ध वर्णन और घटनावली का ऐतिहासिक सिंहावलोकन देखकर सहसा लेखक की लेखनी चूम लेने की इच्छा होती है। द्विवेदीजी सचमुच इतिहास के पंडित हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि जिस समय वह क्लास में इतिहास पढ़ाया करते थे, मि० क्रेडक-सरीखे स्कूल-इंस्पेक्टर उनसे ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करने और इतिहास पढ़ाने की शैली के सीखने की इच्छा से घंटों विद्यार्थियों के साथ बैठे रहा करते थे। 'भारत-इतिहास' के देखने से भी यही प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि द्विवेदीजी ने अपने अध्यापक-जीवन का महत्त्व-पूर्ण अनुभव हिंदी-संसार के सामने रख दिया है। भारतवर्ष के इतिहास पर प्रकाश डालनेवाली हिंदी में मौलिक तथा आलोचनात्मक दृष्टि से लिखी हुई इतनी अच्छी छात्रोपयोगी पुस्तक हमने तो आज तक नहीं देखी। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जिन विद्वानों एवं इतिहासप्रेमियों के हाथ में यह पुस्तक पहुँचेगी, वे भी अध्ययन के उपरांत हमारे उपर्युक्त मत का समर्थन करेंगे।

द्विवेदीजी आदि के ही उद्योग से मध्यप्रांतीय शिक्षा-विभाग तथा नागपुर-विश्वविद्यालय ने जो हिंदी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया है, उसी को सफलता-पूर्वक चलाने के लिये हिंदी में पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। यही इस ग्रंथ के निर्माण का आधार है। उसी के अभाव की पूर्ति के लिये द्विवेदीजी ने अपने ४० वर्ष के शिक्षक-पद का अनुभव—३०-३५ वर्ष तक के मैट्रिक-क्लास को पढ़ानेवाले इतिहास के अध्यापक का अनुभव—इस भारत-इतिहास में भर दिया है। इसी से इसका अंदाज़ लगाया जा सकता है कि द्विवेदीजी ने अपने ग्रंथ में इतिहास-संबंधी खोज एवं अध्ययन का कितना अच्छा मसाला भरा होगा। विंसेंट स्मिथ, टामसन, प्रथरो, वाडिया, शास्त्री, हंटर, फ्रेज़र, मार्शमैन, ह्वीलर प्रभृति अँगरेज़ी-इतिहासलेखकों के ग्रंथों से सामग्री जुटाकर तथा उसके बाद शिक्षकों और छात्रों की कठिनाइयों का अनुभव कर तब कहीं द्विवेदीजी ने यह ग्रंथ लिखा है; और चूँकि ग्रंथ अपने असली स्वरूप में हमारे सामने है, इसलिये हमें यह कहने का साहस होता है कि जिस समय निकट-भविष्य में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का मंगलाप्रसाद-पारितोषिक इतिहास-ग्रंथों पर दिया जायगा, उस समय 'भारत-इतिहास' का भी गौरव के साथ स्मरण किया जायगा। राजपूताने के इतिहास पर रायबहादुर गौरीशंकर-हीराचंद ओझा-सरीखे विद्वान् प्रकाश डाल रहे हैं सही; पर यह इतिहास केवल एकांगीन होगा। भले ही राजपूताने के इतिहास में खोज का अच्छा क्रम मिलेगा; क्योंकि ओझाजी पुरातत्त्व के विशेषज्ञ हैं। पर हमारी दृष्टि में एकांगीन इतिहास की अपेक्षा एक सर्वांगीण इतिहास पर प्रकाश डालना, और वह भी सत्य की रक्षा करते हुए आलोचनात्मक ढंग से, कुछ कठिन नहीं, तो विशेष सरल बात भी नहीं है।

नागपुर-विश्वविद्यालय की 'करिक्युला-कमेटी' की रिपोर्ट में भारत का इतिहास राष्ट्रीय दृष्टि से पढ़ाने का नियम रक्खा गया है। इसलिये द्विवेदीजी ने "हिंदू-काल में पाश्चात्य इतिहास-लेखकों के मत के साथ-साथ

हिंदुओं का क्या मत है", यह भी स्पष्ट दिखला दिया है। इसके सिवा हिंदू और मुसलमान-जातियों में कौन-कौन-से प्रशंसनीय गुण थे, अथवा कौन-कौन-से दोष थे, जिनके कारण उनका पतन हुआ, यह भी सम्यक् प्रकार से इसमें दिखलाया गया है। फिर भी यह सत्य है कि लेखक ने इसे पाठ्य पुस्तक की सीमा का उल्लंघन नहीं करने दिया। लेखक ने अपना एक स्थिर मत पाठकों के लिये रख दिया है। मध्य-प्रांत, पंजाब, और बिहार के शिक्षा-विभागों द्वारा यह ग्रंथ पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकार कर लिया गया है, यह भी इसकी उत्कृष्टता का एक ख़ासा सर्टिफ़िकेट है।

प्रस्तुत ग्रंथ कुल १०५ अध्यायों में विभक्त है। ये मुख्य हैं। इनमें बहुतों के अंतर्गत कई-कई उप-अध्याय भी हैं, जिनमें अध्याय की ख़ाली व्याख्या की गई है। पर हम सहूलियत के लिये इसे तीन ही विभागों में विभाजित करते हैं—(१) प्राचीनकालीन भारत, (२) मध्यकालीन, और (३) वर्तमान भारत। प्रथम भाग में पाषाण-युग, आर्यों और अनार्यों का सम्मिलन, विदेशी जातियों का मिश्रण, आर्यों की सभ्यता, जैन और बौद्ध-कालीन सभ्यता, हिंदू-सभ्यता तथा उसका वैभव और विस्तार दिया हुआ है। द्वितीय भाग को हम मध्यकालीन इतिहास के नाम से पुकारते हैं। इस भाग में मुसलमान-राजवंशों का स्थापन, वैभव-विकास तथा पतन है। लेनपूल ने जैसा अपनी 'मेडीवल इंडिया' में मुसलमानकालीन भारत का वर्णन किया है, यद्यपि वैसा विशद यह नहीं है, तथापि प्रामाणिकता की दृष्टि से कम भी नहीं है। प्रत्येक मुसलमान-राजवंश का संक्षेप में अच्छा वर्णन दिया गया है। गज़ेटियरों और 'रूलर्स ऑफ़ इंडिया'-सिरीज़ का निचोड़ इसमें आ गया है। तृतीय भाग वह है, जिसमें वर्तमान अँगरेज़ी-सभ्यता का संपर्क जब से शुरू होता है, तब से उसका वर्णन है। हिंदूकालीन सभ्यता के विकास को कुछ मानचित्रों और मुद्राओं के चित्र देकर जहाँ अधिक स्पष्ट कर दिया गया है, वहीं राजनीतिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिये राज्य-संबंधी मान-चित्र भी दिए गए हैं। यह प्रायः अप-टु-डेट इतिहास है। यदि तृतीय विभाग में वर्तमान ब्रिटिश-शासनांतर्गत भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक मताधिकार का विश्लेषण है, तो हिंदूकालीन सभ्यता में तत्कालीन साहित्यिक एवं सामाजिक विकास का अच्छा दिग्दर्शन पहले ही हो जाता है। इसका प्रमाण 'ग्राम्य-स्वराज्य' के वर्णन में मिलता है। संपूर्ण इतिहास को पढ़ जानेवाला पाठक अच्छी तरह यह जान सकता है कि हिंदुओं की प्राचीन सभ्यता के ज़माने में, जिसे आधुनिक पाश्चात्य-इतिहासकार अंधकार-युग समझते हैं, शासन की दृष्टि से, हिंदुओं की सामाजिक स्थिति आज के ब्रिटिश-साम्राज्यांतर्गत भारत की अपेक्षा कहीं अधिक उन्नत थी। उन्हें प्रतिनिधित्व के समस्त सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। पर लेखक ने आर्यों के आगमन के संबंध में जो विचार प्रकट किए हैं, उनसे हम सहमत नहीं हैं। एक तो उन्होंने अपना कोई स्थिर विचार वहाँ नहीं प्रकट किया; दूसरे जैसा वह लिखते हैं, लोकमान्य तिलक ने आर्यों का आदि स्थान उत्तरीध्रुव स्थिर किया है सही; पर उनका विस्तार भारतवर्ष से अन्य देशों में किस प्रकार हुआ, इस पर भी कुछ प्रकाश पड़ना चाहिए था। पर्शिया के इतिहास, हेरोडोटस के इतिहास तथा पुराणों में भी इसका अच्छा उल्लेख पाया जाता है। हिंदूकालीन सभ्यता पर जितना प्रकाश इस समय इस पुस्तक द्वारा पड़ता है, उससे कहीं अधिक प्रकाश उस समय पड़ता। दूसरी प्रधान बात प्राचीन इतिहास के संबंध में यह है कि इसमें व्यापारिक क्रांति का उल्लेख नहीं है। यदि हम वर्तमान ब्रिटिश-शासन की बुनियाद का पता लगावें, तो हमें इसका समस्त आधार व्यापारिक विकास जान पड़ेगा। इस उद्देश्य से वर्तमान भारत का आलोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन करनेवाला पाठक जब प्राचीनकालीन भारत में प्रवेश करता है, तो उसे अपनी हीनता पर कुछ निराशा हो जाती है। इतिहास राजनीतिक विकास का साधन है, इसलिये इसकी बड़ी आवश्यकता थी; क्योंकि यह राजनीतिक विकास आज व्यापारिक क्रांति पर ही अवलंबित है। हाँ, इस पुस्तक में यह ज़रूर दिखाया गया है कि प्राचीन आर्य-सभ्यता में कला-कौशल और साहित्य एक उच्च सीमा पर थे। पर इससे सर्वथा उस कमी की पूर्ति नहीं हो जाती। पुनः जिस प्रकार २१वें अध्याय में "बौद्ध-काल का सिंहावलोकन", "हिंदू-भारत या राजपूत-काल का सिंहावलोकन" २८वें अध्याय में और ३८वें अध्याय में "दिल्ली के सुलतानों के काल का सिंहावलोकन" दिया गया है, उसी प्रकार कुछ अधिक सिंहावलोकन देने की भी ज़रूरत थी।

"मुग़ल-साम्राज्य का पतन और मरहठा-राजमंडल का उदय" जिस तरह २४वें अध्याय में दिया गया है, उसी प्रकार यदि प्रत्येक हिंदू अथवा मुसलमान-राजवंश के उत्थान और पतन का सिंहावलोकन उपसंहार-रूप में दिया जाता, तो पाठक को कुछ अधिक सुविधा होती। इसी प्रकार युद्धों से होनेवाली राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थिति के यथार्थ वर्णन का अभाव भी कुछ खटकता है। अच्छा हो, यदि हमारे विचार लेखक महोदय को पसंद हों, तो उनका समावेश अगले संस्करण में कर दिया जाय।

पर इन अभावों का यह अर्थ नहीं कि पुस्तक की उपादेयता, उत्कृष्टता अथवा ऐतिहासिक परिशीलन में इनके कारण कोई त्रुटि आ गई है। ये तो सोने में सुगंध का काम करतीं। खरे सोने को आँच में तपाकर परखनेवाला खोटा कहीं कहा सकता है। कहना तो यहाँ तक चाहिए कि भारतीय विश्वविद्यालयों के संचालक जो यह कह दिया करते हैं कि हिंदी माध्यम स्वीकार करने के लिये हिंदी में पुस्तकें हैं ही कहाँ, उनके लिये यह पुस्तक मुँहतोड़ जवाब है। इसके लिये हम नागपुर-विश्वविद्यालय और मध्यप्रांतीय शिक्षा-विभाग को ही वास्तव में धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने द्विवेदीजी की लेखनी द्वारा एक ऐसे उच्च कोटि के ग्रंथ के निर्माण का अवसर दिया, जिसकी बदौलत आज हिंदी दूसरी किसी भी भाषा के सामने गर्व से अपना मस्तक ऊपर उठा सकती है।

मातादीन शुक्ल

× × ×

३. गणित

वृत्तच्छेद—लेखक, श्रीअवध उपाध्याय, रिसर्चस्कॉलर, लखनऊ-विश्वविद्यालय।

यह लेख पहले 'विज्ञान' में प्रकाशित हो चुका है, और अब पुस्तकाकार। गणित जाननेवालों के लिये तो यह लेख अति उत्तम है; परंतु जो गणित से अनभिज्ञ हैं, उनके लिये तो इस लेख का पढ़ना भी 'टेढ़ी खीर' है। अभी भाषा में लोकप्रिय पुस्तकों की ज़्यादा ज़रूरत है। कालांतर में जब कॉलेज में गणित-शिक्षा भाषा द्वारा दी जाने लगेगी, तब ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता पड़ेगी।

श्यामाचरण

× × ×

४. संस्कृत

श्रीमद्भगवद्गीता (खंड १; अध्याय १, २, ३)—लेखक और प्रकाशक, श्रीहृषीकेश चतुर्वेदी, जंजीरीकटरा, किनारी बाज़ार, आगरा; आकार रायल, काग़ज़ उत्तम, छपाई साफ़; पृष्ठ-संख्या २६; मूल्य ≡)

गीता की ज्ञान-गंभीरता जगत्-प्रसिद्ध है। उसके एक-एक वाक्य की व्याख्या बड़े-बड़े धुरंधर आचार्यों ने कई-कई पन्नों में की है। लेखक ने पं० राधेश्यामजी के ढंग की कविता में इसका पद्य-बद्ध अनुवाद करने की चेष्टा की है। भाषा आपकी खिचड़ी है—कहीं खड़ी बोली, कहीं पड़ी बोली। जहाँ भावों की जटिलता दिखलाई दी, वहाँ आपने संस्कृत के वे ही पद उठाकर रख दिए हैं, और वह भी बेढंगेपन से। छंद भी आपके शुद्ध नहीं हैं। हिंदी जाननेवालों को इससे गीता के भावों का ज्ञान होगा, इसकी आशा हमें नहीं है। नमूना देखिए—

फल-श्रुति में रति रखनेवाले स्वर्गहि सर्वोच्च बताते हैं;
अविवेकी भोगैश्वर्य-हेतु वे पुष्पित बात बनाते हैं।
उस जन्म-कर्म-फल-प्रदा क्रियावाली से जो चित हरे हुए;
नहिं निश्चय बुधि उर में धरते वे भोग-विभव में पड़े हुए।

पद्यों पर आपने टिप्पणी भी की है। 'फल-श्रुति' का अर्थ लिखा है—फल को चाहनेवाले! हमारी सम्मति में अनुवाद करने के पहले आपको गीता का अर्थ समझने की कोशिश करनी चाहिए थी।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

५. महिला-साहित्य

पत्रांजलि—रूपांतरकार, श्रीयुत पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी; संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारी; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या ८०; मूल्य ||); काग़ज़, छपाई-सफ़ाई उत्कृष्ट।

हिंदी में महिला साहित्य की बड़ी ही कमी है। इसी की पूर्ति के लिये लखनऊ की गंगा-पुस्तकमाला के उत्साही संचालकों ने 'महिला-माला' का प्रकाशन शुरू किया है। पत्रांजलि उसी की पहली मणि है। यह मणि वास्तव में दिव्य, उपयोगी और मूल्यवान् है। श्रीसतीशचंद्र चक्रवर्ती महाशय ने बँगला में 'स्वामी-स्त्री-पत्र' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है। बँगला में तो अब तक उसके कई संस्करण हो चुके और हज़ारों प्रतियाँ

बिक चुकी हैं। 'पत्रांजलि' उसी उपयोगी पुस्तक का रूपांतर है। हिंदी में भी इसकी यह तृतीय आवृत्ति है। इससे जान पड़ता है, पुस्तक महिलाओं को बहुत पसंद आई है। रूपांतर कैसा हुआ है, इसके विषय में तो हम कुछ नहीं कह सकते ; पर जो सामग्री हमारे सामने है, वह अवश्य ही सुंदर है—उसकी उपयोगिता में संदेह नहीं किया जा सकता। पुस्तक की भाषा रुचिकर एवं विनोद-पूर्ण है, साथ ही आसानी से महिलाओं की समझ में आने लायक़ भी। पत्रों में व्याज-रूप से महिलाओं को जो सम्मतियाँ दी गई हैं, वे अवश्य ही उनके जीवन को उन्नत करनेवाली हैं। इस पुस्तक के पाठ से पति-पत्नियों को एक बड़ा लाभ यह भी हो सकता है कि पति पत्नी को एवं पत्नी पति को सुंदर पत्र लिखना सीख सकती है। गंगा-पुस्तकमाला विशुद्ध छपाई के लिये प्रसिद्ध है ; परंतु इस पुस्तक में छपाई की कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। कई स्थानों में तो मात्राएँ हवा हो गई हैं। यह छोटी-सी त्रुटि पुस्तक के गौरव को कम करनेवाली है*। कवर पर पुस्तक के नामानुकूल एक बहु-वर्ण सुंदर एवं भाव-पूर्ण चित्र भी दिया है, जिससे पुस्तक की शोभा बहुत अधिक बढ़ गई है। आशा है, हिंदी की पाठिकाएँ इस उपयोगी पुस्तक से अवश्य लाभ उठावेंगी।

× × ×

नारी-उपदेश—लेखक, स्वर्गीय श्रीयुत गिरिजाकुमार घोष ; संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारी ; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ ; पृष्ठ-संख्या लगभग १०० ; मूल्य ॥) ; काग़ज़, छपाई-सफ़ाई उत्कृष्ट।

यह पुस्तक गंगा-पुस्तकमाला से प्रकाशित होनेवाली 'महिला-माला' की तीसरी मणि है। विषय नाम से ही प्रकट है। हिंदी में 'नारी-उपदेश' से संबंध रखनेवाली जितनी पुस्तकें हमने देखी हैं, उनमें इसका विशेष स्थान होना चाहिए। इसमें प्रामाणिक ग्रंथों और शास्त्र-पुराणों से स्त्रियों के योग्य उपदेश संग्रह किए गए हैं। इसके अलावा प्रवीण लेखक ने अपनी ओर से भी कई सुंदर लेख लिखे हैं, जिनमें स्त्रियों के लिये उपयोगी बहुत-सी बातों का समावेश हो गया है। उपदेश-संबंधी पुस्तकें प्रायः शुष्क एवं अरोचक होती हैं ; पर यह पुस्तक वैसी नहीं है। इसका कारण यह है कि एक तो पुस्तक की भाषा अत्यंत सरस, रोचक और विनोद-पूर्ण है; दूसरे, कुशल लेखक ने उपदेशों को कथा का रूप देकर अत्यंत हृदयग्राही बना दिया है, और इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है। उनका उद्देश्य आदर्श उपस्थित करने की ओर ही विशेष रहा है, कोरे उपदेश ही नहीं। कुशल लेखक का कर्तव्य भी यही होना चाहिए। पुस्तक का कोई अंश निरुपयोगी और अरोचक नहीं रहा। "अरी नारी" के पढ़ने से तो कविता-जैसा आनंद प्राप्त होता है। "नारी-पूजा" और "नारी का महत्त्व" लेख भी बहुत बढ़िया हैं। "तीन गृहस्थ" ने स्त्रियों के समक्ष गृह-संबंधी उत्तम आदर्श प्रस्तुत कर दिया है। "पति-पत्नी की लड़ाई"-शीर्षक लेख इतनी उत्तमता से लिखा गया है कि लेखक की क़लम चूम लेने को जी चाहता है। उसमें जो बातें लिखी गई हैं, वे अनुभव-पूर्ण हैं—अक्षरशः सत्य हैं। "गहनों की पिटारी", "भूषण-भावना" और "आभूषण-प्रेम" लेख ऐसे हैं, जिनसे स्त्रियों की सामाजिक अवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है, और ये स्त्रियों को बड़े लाभप्रद हो सकते हैं। पुस्तक की भाषा के संबंध में हम पहले जो कुछ लिख चुके हैं, उसके सिवा इतना और कहना चाहते हैं कि इसकी भाषा सरल है ; पर कहीं-कहीं कठिन भी हो गई है। ऐसी पुस्तकों की भाषा जहाँ तक सरल हो, उतना ही अच्छा। पृष्ठ ४५ में एक वाक्य आया है—"परंतु योरप की दानवी जब तक लंबी नहीं होती, तब तक वह सुंदरी ही नहीं समझी जाती।" यह वाक्य हमें बहुत खटका। लेखक महाशय ख़ुद ही क़बूल करते हैं—देखिए, दोनों देशों की रुचि में कितनी भिन्नता है ! फिर योरप की रमणी 'दानवी' क्यों ? आशा है, अगले संस्करण में यह महत्ता-

* यदि इस पुस्तक में कहीं कोई छपाई की अशुद्धि रह गई है, तो उसका एक-मात्र कारण हिंदी में अच्छे और स्टैंडर्ड प्रेस का एकदम अभाव ही है। यह पुस्तक साहित्य-प्रेस (चिरगाँव) में छपी है। अभी तक भरसक प्रयत्न करने पर भी हम केवल नवलकिशोर-प्रेस के ही आदमियों को कुछ तैयार कर सके हैं। यदि अन्य प्रकाशक भी इस ओर समुचित ध्यान दें, तो कुछ प्रेस ऐसे तैयार हो सकते हैं, जो बिलकुल शुद्ध पुस्तकें छाप सकें। हिंदी में मात्राएँ बहुधा उड़ जाया करती हैं। भविष्य में इस त्रुटि को भी दूर करने का हम पूर्ण उद्योग कर रहे हैं।—प्रकाशक

हीन 'दानवी' दूर कर दी जायगी। कवर-पेज पर 'माधुरी' के प्रसिद्ध चित्रकार खातू महाशय द्वारा अंकित त्रिवर्ण चित्र दे देने से पुस्तक बहुत ही दिव्य हो गई है। हम इस उपयोगी पुस्तक का प्रचार घर-घर में देखने के इच्छुक हैं।

ज़हूरबख़्श

× × ×

६. बाल-साहित्य

प्रयाग के श्रीयुत रामनरायनलाल बुकसेलर ने भी बाल-साहित्य के अभाव का अनुभव करके 'बालमित्र मासिक ग्रंथमाला' का प्रकाशन प्रारंभ किया है। अब तक इस माला में सोलह पुस्तकें निकल चुकी हैं। प्रत्येक पुस्तक लगभग ६४ पृष्ठों की रहती है; काग़ज़ अच्छा तथा छपाई आदि भी अच्छी होती है। मूल्य रहता है प्रति पुस्तक पाँच आने। इस माला के लेखक और संपादक हैं हिंदी के प्रसिद्ध लेखक पं० रामदहिन मिश्र काव्य-तीर्थ। माला की दो पुस्तकों का कुछ परिचय यहाँ दिया जाता है—

ईसब्नीति-कथा (दो भाग)—योरप में ईसप्स नाम का एक अच्छा लेखक हो गया है। उसने बालकों के लिये बड़ी ही उपदेशप्रद एवं मनोरंजक कहानियाँ लिखी हैं। उनका अनुवाद दुनिया की सभी भाषाओं में हो गया है। हिंदी में भी उसके दो-एक अनुवाद हो चुके हैं। परंतु इस पुस्तक में एक विशेषता है, और विशेषता न हुई, तो लिखने से लाभ ही क्या? अच्छा, वह विशेषता भी सुनिए। पुस्तक की कहानियाँ अविकल अनुवाद नहीं हैं—विशेष रोचक और उपयोगी बनाने के ख़याल से घटा-बढ़ाकर लिखी गई हैं। कहिए, है न ठीक। पुस्तक में "कहानियाँ भी ऐसी चुनी गई हैं, जो मनोरंजन के साथ ही बहुत ही उपदेश देनेवाली हैं; और कुछ ऐसी भी हैं, जो अब तक हिंदी में लिखी नहीं गई हैं। कहानियों का उपदेश 'सार-मर्म'-शीर्षक के रूप में दे दिया गया है, और नीचे भी उसका ख़ुलासा लिख दिया गया है।" यह बहुत अच्छा हुआ है। आशा है, लेखक का यह प्रयत्न लड़कों को लाभ पहुँचाने में समर्थ होगा। मिश्रजी, वाक़ई आपका यह प्रयत्न लड़कों को लाभ पहुँचाने में समर्थ हुआ है। लड़के कहते हैं—

रमज़ानख़ाँ—"उम्दा कहानियाँ हैं; मैंने मन लगाकर पढ़ी हैं।"

सदाशिवराव—"मैं तो दिन-भर पढ़ता रहा।"

बालमुकुंद—"दिन-भर पढ़ता रहा—खेलने भी नहीं गया।"

सीताराम—"ख़ूब उपदेश मिलता है।"

बस, और क्या चाहते हैं?

× × ×

विज्ञान की सरल बातें—पहले लड़कों की राय सुनिए—

भोलाशंकर—"क्या ही अच्छा होता कि मैं भी ऐसी अच्छी चीज़ें बना सकता!"

रामगोपाल—"पढ़कर बड़ा अचरज हुआ। क्या ये सब बातें सच हैं?"

सखाराम—"कई बातें नई मालूम हुईं; मज़ा भी आया। कल हम लोगों ने भी तार का खेल किया था।"

इस तरह मिश्रजी का परिश्रम भी सार्थक हुआ, आशा भी सफल हुई। पुस्तक में, चलने-फिरने में तरक़्क़ी, रेलगाड़ी, बिजली, बिजली के खेल, हवा में उड़ना, गुब्बारा, हवाई जहाज़, तार आदि विषयों पर मनोहर लेख लिखे गए हैं। बड़ी अच्छी किताब है। ऐसी किताबें जितनी लिखी जायँ, अच्छा है।

खेद की बात है कि इन पुस्तकों में चित्र नहीं दिए गए। प्रकाशक महाशय को जानना चाहिए कि बालकों को आकृष्ट करने के लिये चित्र बड़े ही उत्तम साधन हैं। इन पुस्तकों में विषय-सूची का भी अभाव खटकता है। आशा है, प्रकाशक इस ओर ध्यान देंगे। लेखक महाशय को गदहा, रोवाँ, सोताबिक आदि शब्दों पर विचार करना चाहिए। हम समझते हैं, वह अखंडित, श्रेष्ठ, तुच्छ, अन्य आदि शब्दों के बदले और सरल शब्द लिखते, तो उनकी सरल भाषा और भी सरल हो जाती। आशा है, इन पुस्तकों का भी अच्छा प्रचार होगा।

ज़हूरबख़्श

× × ×

अद्भुत कहानियाँ—लेखक, श्रीयुत बाबू ज्ञानेंद्रमोहनदास; अनुवादक, पं० जनार्दन झा; प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, १२६, हरिसन-रोड, कलकत्ता; मूल्य ॥); आकार डबल क्राउन; पृष्ठ-संख्या ६०; काग़ज़ चिकना; छपाई-सफ़ाई सुंदर; सचित्र

कलकत्ते की हिंदी-पुस्तक-एजेंसी हिंदी-साहित्य की वर्तमान प्रगति में अपना विशेष स्थान रखती है। कितनी ही अच्छी-अच्छी पुस्तकें, जो हिंदी-साहित्य का शृंगार कही जा सकती हैं, वहाँ से प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक उक्त एजेंसी की 'बाल-विनोद-पुस्तकमाला' की तीसरी पुस्तक है, जो बालकों के ही योग्य मोटे अक्षरों और सुबोध भाषा में है। मूल-लेखक ने २९ सच्ची और अनूठी कहानियों का संग्रह बँगला में किया है। उसी का यह हिंदी-रूपांतर है। कहानियों के पढ़ने से जान पड़ता है, विद्वान् लेखक ने पशु-स्वभाव का अच्छा अध्ययन किया है। इन कहानियों में पालतू और जंगली पशु-पक्षियों के हृदय का विश्लेषण है। लेखक ने अनुभवों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि पशुओं में भी सब गुण—दया, सहानुभूति, करुणा, सहृदयता, प्राणोत्सर्ग, सद्भाव, बंधु-स्नेह आदि—तथा हठधर्मी आदि दुर्गुण पाए जाते हैं। बाल-साहित्य की वास्तव में यह एक अच्छी पुस्तक है। बालकों के उज्ज्वल चरित्र-निर्माण में, पशुओं से तुलना करके मनुष्योचित गुणों के प्रति प्रवृत्ति उत्पन्न करने में, यह पुस्तक अच्छी सहायता कर सकती है। प्रत्येक माता-पिता को चाहिए, इस पुस्तक के द्वारा अपने बालकों को प्राणियों के हृदय की बात जानने का अवसर दें।

मातादीन शुक्ल

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—

(१) "ज़च्चा", स्त्रियों के लिये उपयोगी। लेखक, कविराज श्रीप्रतापसिंह। संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारी। मूल्य ।।।=)

(२) "इतिहास की कहानियाँ", बालोपयोगी। लेखक, श्रीयुत ज़हूरबख़्श। संपादक, श्रीप्रेमचंद। मूल्य ।।=)

(३) "स्वास्थ्य-साधन", स्वास्थ्य-संबंधी। लेखक, श्रीरामदास गौड़। मूल्य ३), सजिल्द ३।।)

(४) "गीता रत्नमाला", श्रीमद्भगवद्गीता का पद्यानुवाद। लेखक, श्रीवासुदेव कवि। मूल्य १।।)

(५) "बिहारी की सतसई", तृतीय परिवर्द्धित संस्करण—भाग १। लेखक, श्रीपद्मसिंह शर्मा। मूल्य २)

(६) "हिंदू-धर्मप्रवेशिका", हिंदी-पुस्तक-एजेंसी से प्रकाशित। मूल्य ।)

(७) "आकाश की सैर", ज्योतिष-शास्त्र। लेखक, श्रीदुर्गाप्रसाद खेतान। मूल्य ।।)

(८) "प्रवेशिका पद्यावली", पहला भाग। नागरीप्रचारिणी-सभा से प्रकाशित। मूल्य ।।)

(९) "परम भक्त प्रह्लाद", नाटक। लेखक, श्रीराधेश्याम कथावाचक। मूल्य १)

(१०) "रुई और उसका मिश्रण", अनुवादक, श्रीकस्तूरमल बाँठिया। मूल्य १।।)

(११) "संदेह", उपन्यास। लेखक, श्रीगिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'। मूल्य १)

(१२) "रामचरितमानस की भूमिका", लेखक, श्रीरामदास गौड़। मूल्य ३), सजिल्द ३।।)

(१३) "विनोदरत्नाकर", मनोरंजन। संग्रहकर्ता, श्रीश्यामसुंदर चतुर्वेदी। मूल्य ।।)

(१४) "खेल-खिलौना", बालोपयोगी। लेखक, श्रीव्रजभूषणप्रसाद। मूल्य ।=)

(१५) "विराट्रूप-दर्शन", लेखक, श्रीरामनारायण पाठक। मूल्य =)

---

१. सम्मेलन में साहित्य का प्राधान्य कैसे हो ?

वृंदावन-साहित्य-सम्मेलन के संबंध में हमें जो कुछ निवेदन करना था, वह हम माधुरी की पिछली संख्या में कर चुके। हम अब भी यही कहते हैं कि हमें वृंदावन से जो आशा थी, वह पूरी नहीं हुई। पर अब बीती हुई बात को बार-बार दोहराने से क्या फ़ायदा? अब तो इस बात की आवश्यकता है कि आगामी वर्ष भरतपुर में जो साहित्य-सम्मेलन होने जा रहा है, उसके संबंध में विचार किया जाय, और यह सोचा जाय कि साहित्यिक दृष्टि से वह कैसे सफल बनाया जा सकता है। साहित्य-सम्मेलन की स्थायी समिति की बैठकों में यथारुचि प्रस्ताव पास किए जा सकते हैं, और उनके अनुसार काम किया जा सकता है। ऐसी दशा में सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन को प्रस्ताव पास कराने का दंगल न बनाना चाहिए, और न उसके द्वारा एक-मात्र प्रदर्शन का काम लेना चाहिए। हम यह नहीं कहते कि यह काम वार्षिक सम्मेलन से बिलकुल उड़ा दिया जाय। यह काम भी हो; पर अधिक महत्त्व साहित्यिक प्रगति को मिलना चाहिए। अच्छा, तो सम्मेलन अधिक साहित्यिक कैसे बनाया जा सकता है? सम्मेलन को अधिक साहित्यिक बनाने के लिये यह परमावश्यक है कि वह कई विभागों में विभक्त कर दिया जाय, और प्रत्येक विभाग के सभापति अलग चुने जायँ। स्थूल-रूप से अभी विज्ञान, काव्य, नाटक-उपन्यास और इतिहास, इन चार विभागों को लेकर काम का प्रारंभ किया जाय। फिर जैसे-जैसे आवश्यकता बढ़ती जाय, वैसे-ही-वैसे विभाग भी अधिक कर लिए जायँ। सम्मेलन के अवसर पर प्रत्येक विभाग के विषयों पर निबंध पढ़े जायँ, और व्याख्यान भी हों। विज्ञान विषय पर मैजिक लैंटर्न की सहायता से चित्र दिखलाते हुए व्याख्यान देना परम उपयोगी होगा। काव्य-सम्मेलन में नवीन रचनाओं का पाठ, पुरानी रचनाओं पर समालोचनात्मक निबंध, और खोज से संबंध रखनेवाले लेख पढ़े जायँ। नाटक और उपन्यास-विभाग में कोई उत्कृष्ट नाटक खेला जाय, दो-चार छोटी-छोटी कहानियाँ सुनाई जायँ, और आलोचनात्मक निबंधों द्वारा नाटक-उपन्यास के साहित्य पर प्रकाश डाला जाय। इसी प्रकार इतिहास-विभाग भी अपने कर्तव्य का पालन करे। प्रत्येक विभाग के सभापतियों का चुनाव कम-से-कम सम्मेलन होने के चार महीने पहले कर दिया जाय, जिसमें सभापतियों को अपने भाषण तैयार करने का पर्याप्त समय मिले। इन चार विभागों के अतिरिक्त अब के समान सम्मेलन का एक

प्रधान सभापति भी चुना जाय। उसके सभापतित्व में अब के समान प्रदर्शन, प्रचार और प्रस्तावों के पास करने की व्यवस्था रहे। यही सभापति प्रचलित नियम के अनुसार साल-भर तक सम्मेलन का सभापति माना जाय। सम्मेलन के अवसर पर जो पुस्तकों आदि की प्रदर्शिनी की जाय, उसमें केवल ऐसी ही चीज़ें रक्खी जायँ, जो बहुमूल्य हों, और सर्वसाधारण को सुलभ न हों। वृंदावन की प्रदर्शिनी के समान यह न किया जाय कि चार-चार आने में मिल सकनेवाली पुस्तकें भी रक्खी जायँ। हाँ, यदि ऐसी प्रदर्शिनी की जा सके, जिसमें कम-से-कम ८० प्रतिशत प्राप्त पुस्तकें संगृहीत हों, तो उसमें चार-चार आने की पुस्तकें भी स्थान पा सकती हैं। यदि भरतपुर के साहित्य-प्रेमी हमारे इन विचारों में कोई सार वस्तु पावें, तो उसका उपयोग करें, अन्यथा जाने दें।

× × ×

२. संपादक-सम्मेलन के सभापति का भाषण

वृंदावन में 'आज'-पत्र के संपादक श्रीबाबूरावजी विष्णु पराड़कर के सभापतित्व में अखिल भारतवर्षीय प्रथम संपादक-सम्मेलन का भी अधिवेशन सानंद समाप्त हो गया। पराड़करजी हिंदी के एक अनुभवी संपादक हैं। समय-समय पर आपने हिंदी के कई पत्रों का संपादन किया है, और इस समय आप 'आज'-पत्र को जिस गंभीरता से चला रहे हैं, वह हिंदी-साहित्य-संसार पर भली भाँति प्रकट है। सभापति की हैसियत से पराड़करजी ने जो भाषण किया था, उसमें कई महत्त्व-पूर्ण बातों का समावेश है। आपकी राय है कि हिंदी-पत्रों का अधिक प्रचार न होने के तीन प्रधान कारण हैं। यथा— (१) पत्रों के समाज का प्रतिबिंब न होना, (२) धनाभाव और (३) हिंदी-भाषी जनता में साक्षरता का अल्प प्रचार। इन तीनों कारणों पर आपने काफ़ी प्रकाश डाला है। आगे चलकर आप कहते हैं कि हिंदी और अँगरेज़ी, इन दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञाता हुए विना हिंदी के पत्रों का संपादक-उपसंपादक तो क्या, संवाददाता होना भी कठिन है। आपकी सलाह है कि हिंदी-समाचार-पत्रों को समाज के भीतर घुसने का प्रयत्न करना चाहिए। आपका विचार है कि सनसनी पैदा करनेवाले समाचारों के चित्र-विचित्र आविष्कारों तथा रोंगटे खड़े कर देनेवाले, बड़े-बड़े शीर्षकों से अब समाचार-पत्रों को विशेष लाभ नहीं पहुँच सकता। पराड़करजी चाहते हैं कि अमेरिका और इँगलिस्तान के पत्रों के समान ही हिंदी के पत्र भी निकाले जायँ, जिनमें प्रत्येक श्रेणी और हरएक पेशे के स्त्री-पुरुषों के काम की और मनोरंजन की बातों का समावेश रहे। आपका यह भी ख़याल है कि प्रत्येक ज़िले से एक साप्ताहिक पत्र निकाला जाय। उस पत्र में उस ख़ास ज़िले के लोगों की रुचि के अनुकूल, और अधिकांश में स्थानीय, समाचारों का संग्रह रहे। संक्षेप में संसार के समाचारों का भी परिचय दिया जाय, और इस पत्र को ग्राम-ग्राम में पहुँचाने का उद्योग किया जाय। ऐसा पत्र एक सच्चे समाचार-पत्र का काम देगा, और पत्र निकालनेवालों को लाभ भी भरपूर होगा। पराड़करजी का विचार है कि पत्रों पर धनिकों का आधिपत्य होना स्वाभाविक है। अभी तक धनिक लोग स्वदेश-प्रेम के भावों से प्रेरित होकर ही समाचार-पत्रों में अपनी पूँजी लगाते हैं; पर जब समाचार-पत्रों का प्रभाव बढ़ेगा, तो व्यापार-दृष्टि से भी धनी लोग पत्रों को अपने हाथ में लेने का उद्योग करेंगे। भविष्य में समाचार-पत्र लागत-मूल्य से भी कम पर बिकेंगे, और उनको अपनी यह घटी विज्ञापनों की आय से पूरी करनी पड़ेगी। यह विज्ञापन-निर्भरता जितनी ही बढ़ेगी, उतनी ही संपादक की स्वतंत्रता घटेगी, और कार्य-कुशल व्यवस्थापक की बढ़ेगी। आपका कहना है कि संपादक का सच्चा धर्म लोक-शिक्षण है, और उसे अपने पत्र में सदा उच्च आदर्श को स्थान देना चाहिए। अश्लील समाचारों और अपराध-मूलक दुराचारों के अतिरंजित वर्णनों को प्रधानता देकर कुछ ग्राहक बटोरने का प्रयत्न परम निंदनीय है। संपादकों को चाहिए कि परमेश्वर ने उनको जो बड़ा पद दिया है, उसका सदुपयोग करें, और समाज को सदा उन्नत करते रहना अपना धर्म समझें। संपादक में साहित्य और भाषा-ज्ञान के अतिरिक्त भारत के इतिहास का सूक्ष्म और संसार के इतिहास का साधारण ज्ञान तथा समाज-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र और अंतरराष्ट्रीय विधानों का साधारण ज्ञान होना आवश्यक है। अंत में पराड़करजी ने संपादक-समिति

के संगठन पर ज़ोर देते हुए कहा है कि ऐसे संगठन से संपादकों के स्वत्वों की रक्षा, आपस के झगड़ों का निपटारा, विपत्ति में संपादक की सहायता तथा डाक और तार की सुविधाओं में वृद्धि हो सकेगी। संक्षेप में पराड़करजी का भाषण ऐसी ही सुंदर सलाहों से भरा पड़ा है। हम चाहते हैं, हिंदी-पत्रों के संपादक इससे लाभ उठावें। तथास्तु।

× × ×

३. उरोज-शब्द और अश्लीलता-दोष

वृंदावन में कवि-सम्मेलन के अवसर पर, महिलाओं की उपस्थिति में, एक कवि महाशय ने एक कविता पढ़ी थी। इस कविता में स्त्रियों के एक अंग-विशेष का भी उल्लेख था। कुछ लोगों ने यह आपत्ति की कि जिन रचनाओं में ऐसे अंगों का उल्लेख हो, वे स्त्रियों के समक्ष न पढ़ी जायँ। कविजी ने कविता पढ़ने के लिये आग्रह किया, और ऐसी कविता पढ़ने में कोई हानि नहीं बतलाई। सभापति महोदय ने कविजी को कविता पढ़ने की आज्ञा दे दी। इस पर अधिकांश महिलाएँ उस स्थान से उठकर चली गईं। इस घटना का उल्लेख पिछले मास की माधुरी में हो चुका है। इधर इस विषय को लेकर हिंदी के समाचार-पत्रों में कुछ विवाद चल पड़ा है। सहयोगी 'प्रताप' में कवि-सम्मेलन के सभापति ठाकुर गोपालशरणसिंहजी ने एक पत्र छपवाकर इस घटना का स्पष्टीकरण किया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि मेरी दृष्टि से कविता अश्लील नहीं है। इस पर प्रताप-संपादक ने टिप्पणी करके उक्त कविता को अश्लील ही बतलाया है। कविता को ठाकुर गोपालशरणसिंहजी अश्लील नहीं मानते, और प्रताप-संपादक मानते हैं। किसकी बात ठीक है, यह कहना बड़ा कठिन है। यदि वह संपूर्ण कविता हमारे सामने होती, तो हम उस पर अपनी सम्मति देने में समर्थ होते, और अन्य विद्वानों की राय जानने का भी हमें अवसर प्राप्त होता। पर प्रताप-संपादक को कविता इतनी अश्लील जँची कि उन्होंने उसे प्रताप में प्रकाशित करना भी ठीक न समझा। तब हम केवल सुनी-सुनाई बातों के सहारे ही कुछ लिखेंगे। हमने सुना है कि विवाद-ग्रस्त कविता में स्त्रियों के जिस अंग-विशेष का उल्लेख हुआ है, वह अंग 'उरोज' है। यदि हमारी सुनी हुई बात ठीक है, तो प्रश्न यह उठता है कि क्या 'उरोज'-शब्द अश्लील है? हमारी राय में उरोज-शब्द स्वयं अश्लील नहीं है; पर स्थान-विशेष पर इसका प्रयोग अश्लील भी हो सकता है। आदि-कवि वाल्मीकि की रचनाओं में 'उरोज' का प्रयोग निर्दोष रूप में हुआ है। महाकवि तुलसीदास ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है, और अश्लीलता-दोष से बचे रहे हैं। यदि स्मरण-शक्ति धोखा नहीं देती, तो पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने एक कान्यकुब्ज-सभा में कुमारी कान्यकुब्ज-कन्याओं का वर्णन करते हुए उनके पीन पयोधरों का भी उल्लेख किया है। हाल में 'पंचवटी'-नामक पुस्तक में श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त भी उरोजों का वर्णन करने से नहीं चूके। हमारी राय में, किसी युवती का वर्णन करनेवाला कवि या लेखक उसके प्रधान यौवन-चिह्न उरोज का वर्णन बहुत करके कर ही जायगा। उदाहरण देने की ज़रूरत नहीं, संसार की प्रत्येक भाषा के काव्य-साहित्य में इस अंग-विशेष का उल्लेख मिलेगा। तब अकेले 'उरोज'-शब्द के प्रयोग-मात्र से ही हम किसी कविता को अश्लील नहीं मान सकते। हाँ, यदि संबंध से कोई और भी अनौचित्य हो, तो उसके विषय में हम कुछ नहीं कहना चाहते। अब रहा इस बात पर विचार करना कि महिलाओं के समक्ष ऐसे शब्दों का पढ़ना ठीक है या नहीं? सो हमारी तो यह राय है कि हाँ, स्त्रियों के समक्ष ऐसे शब्दों का न कहना ही श्रेयस्कर है। सारांश यह कि केवल उरोज-शब्द के प्रयोग से कोई कविता अश्लील नहीं हो सकती। पर ऐसे शब्द यदि स्त्रियों के सामने न कहे जायँ, तो ठीक होगा। हम चाहते हैं कि शृंगार-पूर्ण कविताओं का प्रचार कम कराने के लिये महिलागण जान-बूझकर कवि-सम्मेलनों में अधिक संख्या में उपस्थित हुआ करें।

× × ×

४. पद्य-सम्मेलनों का सुधार

संयुक्त-प्रदेश में इस समय कवि-सम्मेलनों की बाढ़ बड़े ज़ोरों पर है। इसका वेग इतना प्रबल है कि भय होता है, कहीं वह कविता-क्षेत्र को संपूर्ण आप्लावित करके उसमें खड़े हरे-भरे कविता-तरुवरों को भी नष्ट-भ्रष्ट न कर दे। किसी भी चीज़ की 'अति' अच्छी नहीं होती। कवि-सम्मेलनों का भी यही हाल है। यह तो सभी जानते हैं कि हिंदी में सुकवियों की संख्या न्यून है। फिर इन कवि-सम्मेलनों में ये सैकड़ों कवि कहाँ से

टपक पड़ते हैं ? जिस संख्या में हम कवि-सम्मेलनों में कवियों को देखते हैं, वह संख्या यदि सचमुच ठीक है, तो फिर यह कहना ग़लत है कि हिंदी में कवियों की कमी है। पर वास्तव बात क्या है, यह किसी भी विद्वान् से छिपा नहीं है। हमें यह बात विश्वस्त सूत्र से मालूम है कि अनेक अच्छे कवि इन अनियंत्रित कवि-सम्मेलनों में कविता पढ़ना अनुचित समझने लगे हैं। हमारी राय में उनका ऐसा समझना बेजा भी नहीं। जहाँ सभी धान बाईस पंसेरी हों, वहाँ कपूर और कपास में क्या भेद-भाव किया जायगा। अच्छा, तो इन कवि-सम्मेलनों का सुधार कैसे किया जाय ? हमें इस संबंध में दो-चार बातें निवेदन करनी हैं। हमारी राय में इस समय जो सम्मेलन 'कवि-सम्मेलन' के नाम से पुकारे जाते हैं, उनमें से या तो कोरे तुक्कड़ पद्य-रचयिताओं का बहिष्कार होना चाहिए, या उनका नाम 'पद्य-सम्मेलन' रखना चाहिए, 'कवि-सम्मेलन' नहीं। कविता करने और पद्य-रचना में काफ़ी फ़र्क़ है। हमें 'कवि'-नाम की सम्मान-रक्षा अवश्य करनी चाहिए। प्रत्येक पद्य-सम्मेलन के लिये यह आवश्यक नियम बना दिया जाना चाहिए कि तब तक पद्य-सम्मेलन की व्यवस्था न की जाय, जब तक उसका सूत्रधार कोई जानकार कवि न हो। इन सम्मेलनों में पढ़े जाने के लिये आनेवाले सब पद्य १५ दिन पहले ही संगृहीत कर लेना चाहिए। फिर उन सब पर विचार करके जितने पढ़ने के योग्य समझे जायँ, वे अलग छाँट लिए जायँ, और शेष या तो वापस कर दिए जायँ, या भस्मसात्। कौन पद्य-रचयिता अपनी रचना पहले सुनावेगा, और कौन बाद को, इस बात को लेकर हमने अनेक तुक्कड़ों को झगड़ते देखा है। इसमें व्यर्थ का बहुत-सा समय निकल जाता है। हमारी राय में पद्य-रचयिताओं के नामों की गोलियाँ बनाकर एक पात्र में रख लेनी चाहिए, और सम्मेलन के समय किसी बालक से गोलियाँ निकलवाई जायँ और जिस क्रम से जिसका नाम निकलता जाय, उसी क्रम से उससे पढ़ने को कहा जाय। यदि रचनाओं पर पुरस्कार देने का विचार हो, तो उसके लिये कम-से-कम तीन कविता-मर्मज्ञों की समिति बनानी चाहिए। इस बात पर पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि इस समिति के सदस्य पक्षपात-रहित हों, तथा उनमें एक पद्य-सम्मेलन का सभापति भी हो। विद्यार्थियों के सम्मेलनों में कुरुचि-भाव-पूर्ण रचनाओं को पढ़ने का अवसर न मिलना चाहिए। जिस सम्मेलन में महिलाएँ भी उपस्थित हों, उनमें अश्लील भाव-वाली कविताएँ कदापि न पढ़ी जानी चाहिए। प्रयाग-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन अथवा काशी-नागरीप्रचारिणी-सभा की ओर से कभी-कभी 'आदर्श कवि-सम्मेलनों' की योजना की जानी चाहिए। इन आदर्श सम्मेलनों में २० या २५ चुने हुए कवियों की रचनाएँ पढ़ी जानी चाहिए। समस्या-पूर्तियों की अपेक्षा निर्दिष्ट विषय बतलाकर उन पर कविताएँ लिखवाना कहीं अधिक अच्छा होगा। इस बात पर भी ज़ोर देने की ज़रूरत है कि कोरे शृंगार की अपेक्षा देश और काल से संबंध रखने-वाली कविताएँ अधिक हों। क्या संचालकगण इधर ध्यान देंगे ?

× × ×

५. क्या केशव हृदय-हीन थे ?

एक प्रतिष्ठित समालोचक की राय है कि "केशव में हृदय का तो कहीं पता ही नहीं है।" पर हृदय के बिना कविता हो नहीं सकती। ऐसी दशा में समालोचक की इस उक्ति का अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि केशव कवि न थे। केशवदास पर यह बहुत बड़ा अभियोग है। कविता-संसार में उनका जो स्थान है, उससे तो वह च्युत होते ही हैं, साथ ही जो लोग अब तक उनको कवि मानते आए हैं, उनकी बुद्धि की भी उपर्युक्त वाक्य से पूर्ण निंदा हो जाती है। तो क्या सचमुच अब तक हिंदी-साहित्य-संसार घोर भ्रम में पड़ा हुआ था ? यदि अभियोग सच्चा है, तो अभियोग लगानेवाले का सम्मान होना चाहिए, और यदि झूठा, तो उसके कथन का प्रतिवाद। हम नहीं जानते कि समालोचक महोदय का हृदय से क्या प्रयोजन है। इसलिये यदि वह हृदय की पूर्ण व्याख्या कर दें, तो बड़ा उपकार हो। साधारण रीति से तो कविता का हृदय से और बुद्धि का विज्ञान से संबंध माना गया है। हृदय-प्रसूत विचार भावमय, कल्पना-पूर्ण और स्वाभाविकतामय होते हैं। उनमें एक सहज आकर्षण होता है। वे दूसरे के हृदय पर तुरंत प्रभाव डाल देते हैं। केशवदास की रचनाओं में ऐसे हृदय-प्रसूत विचारों का अभाव मानने को कम-से-कम हम तो तैयार नहीं हैं। हाँ, संभव है, समालोचक महोदय ने

अपने कथन में जिस 'हृदय' का उल्लेख किया है, उसे हम जानते ही न हों। इसीलिये हमने उस हृदय के यथार्थ रहस्य को जानने की इच्छा प्रकट की है। एकआध समालोचक का कहना है कि केशवदास जिस विषय पर रचना करने बैठते थे, उसमें संपूर्ण तल्लीन नहीं हो जाते थे। यदि इस असंपूर्ण तल्लीनता को ही हृदय-हीनता भी कहते हों, तो समालोचक के आक्षेप से हम बहुत कुछ सहमत हो सकते हैं। पर हमारी राय में हृदय-हीनता दूसरी ही चीज़ है। हृदय-हीन मनुष्य कविता की एक पंक्ति भी नहीं लिख सकता। लिखेगा कैसे? कविता के लिये आवश्यक हृदय तो उसके पास है ही नहीं। हम नीचे केशवदास के दो छंद देते हैं। हमारी जिज्ञासा है कि इनमें हृदय का पता है या नहीं? यदि है, तो केशव के ऊपर जो अभियोग लगाया गया है, वह मिथ्या है; और यदि नहीं, तो हम सहृदय कवियों की उन रचनाओं के नमूने देखना चाहते हैं, जिनमें हृदय का परिचय मौजूद हो। दोनों छंद ये हैं—

(१)

नीके कै केँवार देहौं द्वार-द्वार 'केसौदास'
मेरे घर आस-पास सूरजौ न छ्वैगो ;
छिन मैं छवाय लैहौं ऊपर अटान आज,
आँगन पटाय लैहौं जैसो मोहिं भावैगो।
न्यारे-न्यारे नापदान मूँदिहौं झरोखा-जाल
पाइहै न पथ पौन आवन न पावैगो ;
माधव, तिहारे पीछे मोपर मरन मूढ़
आवन कहत, सु तौ कौन पैंड़े आवैगो ?

(२)

सौंहैं दिवाय सखी इकबारक कानन-कानन आनि बसाए ;
जानै को 'केसव' कानन तैं कित ह्वै कब नैनन माहिं सिधाए।
लाज के सींज धरेई रहे सब नैनन लै मन को सु मिलाए ;
कैसी करौं, अब क्यों निकसैं, यों हरे-ई-हरे हियरे हरि आए।

× × ×

६. भूषण और शिवाजी

महाकवि भूषण महाराज छत्रपति शिवाजी के आश्रित कवि थे या नहीं, इस विषय को लेकर हिंदी-संसार में बहुत दिनों से विवाद चल रहा है। माधुरी में भी इस संबंध में कई नोट निकल चुके हैं। जिस समय वे नोट प्रकाशित किए गए थे, उसके बाद भूषण के समय के संबंध में कई नई बातें विदित हुई हैं। यह बात अब निश्चित-सी जान पड़ती है कि जयपुर के महाराज रामसिंह का देहांत संवत् १७४६ में हुआ था। यह बात भी निश्चित है कि इन्हीं महाराज रामसिंह की प्रशंसा में भूषण ने एक छंद की रचना की थी, जो याज्ञिक-त्रय के लेख में, माधुरी में, छप चुका है। उस छंद की भाषा इतनी स्वच्छ और मँजी हुई है कि कोई नहीं कह सकता, यह किसी नौसिखुए या बाल-कवि की रचना है। इस किंवदंती के विरुद्ध भी अभी तक कोई सबूत नहीं मिला कि भूषण ने प्रौढ़-वयस्क होकर ही कविता का प्रारंभ किया था। ऐसी दशा में यह अनुमान नितांत स्वाभाविक है कि महाराजा रामसिंह की प्रशंसावाला भूषण-कृत छंद उस समय बना होगा, जब उनकी अवस्था कम-से-कम ४० वर्ष के लगभग होगी। यदि यह मान लें कि भूषण ने महाराजा रामसिंह की प्रशंसावाला छंद संवत् १७४२ के इधर-उधर बनाया, तो भूषण का जन्म-काल संवत् १७०० के आस-पास पड़ता है। इस अनुमान में दस-पाँच बरस का फ़र्क़ पड़ सकता है, अधिक नहीं। इसलिये स्वर्गीय शिवसिंहजी का भूषण का जन्म-संवत् १७३८ मानना नितांत अशुद्ध है। अब दूसरी बात पर विचार करना है। भूषणजी यदि शिवाजी के आश्रित कवि थे, तो उनके किसी समसामयिक कवि या लेखक की रचना में इसका उल्लेख होना चाहिए। माधुरी के एक नोट में ऐसा प्रमाण भी दिया जा चुका है। कविवर लोकनाथ चौबे बूँदी-नरेश रावराजा बुधसिंह के आश्रित कवि थे। महाकवि भूषण भी इन्हीं बुधसिंह के दरबार में उपस्थित हुए थे। लोकनाथजी भूषण के समसामयिक ही नहीं, एक ही राजा के आश्रित भी थे। इन्हीं लोकनाथजी ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि भूषण को शिवाजी महाराज ने पुरस्कृत किया। कोई कारण नहीं जान पड़ता कि लोकनाथ के छंद पर क्यों अविश्वास किया जाय। हिंदी के और भी कई कवियों ने शिवाजी और भूषण के संबंध की बात सकारी है। फ़ारसी के एक प्रतिष्ठित तज़किरे में भी, जो भूषण की मृत्यु के थोड़े समय बाद बना, इस बात का ज़िक्र है। मराठी के 'बखर' में भी भूषण और शिवाजी में आश्रित और आश्रयदाता का संबंध पाया जाता है। स्वयं भूषण की कविता पुकार-पुकारकर कह रही है कि मैं

शिवाजी के जीवन-काल ही में बनी हूँ। कवि यहाँ तक कह डालता है कि मैं शिवाजी का यश सुनकर उनके दरबार में उपस्थित हुआ, इत्यादि। भगवंतराय और बाजीराव की प्रशंसा में भूषण के बनाए जो छंद बतलाए जाते हैं, वे संपूर्ण संदिग्ध हैं। उनमें पाठभेद है, और यह भी प्रमाणित होता है कि वे दूसरे कवियों की रचना हैं। चिंतामणि और भूषण को भाई-भाई मानने में कोई भी पक्ष आपत्ति नहीं कर रहा है। यह भी निर्विवाद है कि चिंतामणि 'मणि'-उपनाम से कविता करते थे। औरंगज़ेब के भाई शाह शुजा की प्रशंसा में चिंतामणि के बनाए छंद मिलते हैं। चिंतामणि नाम का दूसरा और कोई कवि था भी नहीं। फिर जब चिंतामणि शुजा का समसामयिक था, तो उसी का भाई भूषण शिवाजी का समसामयिक क्यों नहीं था? मामला बहुत साफ़ है। स्वयं उलझनें पैदा करना दूसरी बात है; पर ऊपर जिस विचार-सरणि का आभास दिया गया है, उस पर पक्षपात छोड़कर विचार करने से जान पड़ता है, महाकवि भूषण छत्रपति महाराज शिवाजी के आश्रित कवि अवश्य थे।

× × ×

७. हिंदी-हितचिंतकों से निवेदन

हिंदीलेखकों के अदम्य उत्साह और अथक परिश्रम के फल-स्वरूप हिंदी-साहित्य की दिन-दूनी, रात-चौगुनी उन्नति हो रही है। यह बड़ी ही प्रसन्नता और संतोष की बात है। परंतु काम जिस गति से हो रहा है, वह प्रशंसनीय होने पर भी अभी बहुत कुछ सुस्त है। उन्नति की गति अभी कईगुना बढ़ानी पड़ेगी, तब कहीं हम राष्ट्र-भाषा के प्रति अपने ऋण का आंशिक परिशोध कर पावेंगे। उन्नति हो रही है, इस बात से हममें अभिमान का प्रादुर्भाव न होना चाहिए। बरन् जितना ही हम आगे बढ़ते जायँ, उतना ही हमें नम्रता का आश्रय लेना चाहिए। जो वृक्ष विना फलों के होते हैं, वे कैसे तने खड़े रहते हैं। पर जैसे ही उनमें फल आए कि उन्होंने अपनी डालों को नीचे झुकाकर नम्रता का परिचय दिया। यही हाल हमारा होना चाहिए। हिंदी का काम करनेवालों में आपस का सौहार्द भी परमावश्यक है। हिंदी के प्रत्येक हितचिंतक को यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि वह हिंदी-हितचिंतक संस्था का एक सदस्य है, तथा अन्य प्रत्येक हिंदी-हितचिंतक उसका सहयोगी और भाई। प्रत्येक सदस्य का एक ही लक्ष्य है, और वह है हिंदी की उन्नति। जब लक्ष्य एक है, तब उसी लक्ष्य के उपासकों में परस्पर का विरोध कैसा? नेकनीयती के मतभेद और स्वार्थ-पूर्ण अहम्मन्यतामय व्यक्तिगत विरोध में बड़ा अंतर है। नेकनीयती के मतभेद से लक्ष्य को हानि नहीं पहुँच सकती, बरन् कभी-कभी बड़ा लाभ होता है। पर स्वार्थ-पूर्ण अहम्मन्यतामय व्यक्तिगत विरोध बड़ी ही बुरी वस्तु है। इससे बड़ी-बड़ी हानियाँ होती हैं। हिंदी का हित चाहनेवालों को ऐसे दूषित विरोध से बहुत सावधान रहना चाहिए। इसकी बदौलत कटुता, ईर्ष्या, विद्वेष और कलह की ऐसी भयंकर सृष्टि होगी, जो हमें बिलकुल लक्ष्य-भ्रष्ट कर सकती है। इस समय, थोड़ी मात्रा में, हमें हिंदी के कुछ प्रचारकों में ऐसे विरोध-राक्षस का दर्शन हो रहा है। इससे हम बहुत भयभीत हैं। यदि यह विरोध-राक्षस हमारे बीच में थोड़े समय के लिये भी ठहर गया, तो हमारे बने-बनाए खेल को बिगाड़ देगा। हमारा अब तक का सारा उद्योग नष्ट हो जायगा। हम इस नोट में जान-बूझकर न तो निर्दिष्ट विरोध-राक्षस के वास्तविक स्वरूप का वर्णन करेंगे, और न उन प्रचारकों का नाम लेंगे, जो इस राक्षस को कटुवाद-रूप भोजन देकर पुष्ट कर रहे हैं। हाँ, इतना अवश्य कह देंगे कि जिस साँप को दूध पिलाया जा रहा है, वह दूध पिलानेवालों को ही पहले डसेगा। कहने का प्रयोजन यह कि इस अनुचित विरोध का हनन किए विना उन्नति का मार्ग अवरुद्ध रहेगा। हिंदी के हितचिंतकों में हम विवेक-बुद्धि की भी बड़ी भारी आवश्यकता का अनुभव करते हैं। हममें उत्साह है। इसकी बदौलत हम बहुत बड़े-बड़े काम कर सकते हैं। पर यदि हममें विवेक न हो, तो हमारे उत्साह का बहुत बड़ा अंश व्यर्थ बरबाद हो सकता है। उससे हम उतना लाभ न उठा पावेंगे, जितना उठा सकते हैं। विवेक की बदौलत अल्प उत्साह से भी हम बहुत बड़े-बड़े काम कर सकते हैं। ऐसी दशा में जहाँ हमें अपने नवयुवक कार्यकर्ताओं का उत्साह चाहिए, वहीं हमें अनुभवी और विवेकशील वृद्ध हिंदीसेवकों की सलाह का भी आदर करना चाहिए। अभिमान और अनुचित विरोध के त्याग के साथ-साथ यदि हम विवेक को अपनाकर उत्साह-पूर्वक काम करते

रहें, तो अल्प काल में हिंदी का अभूतपूर्व हित-साधन हो सकता है। क्या हमारे सहयोगी और भाई हिंदी-हित-चिंतक हमारे इस नम्र निवेदन पर ध्यान देंगे? हमारा विश्वास है कि हमारी विनय व्यर्थ न जायगी।

× × ×

८. लाला लाजपतराय का भाषण

हाल ही में, बंबई में, हिंदू-सभा का एक अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशन के सभापति लाला लाजपतरायजी थे। आपने सभापति की हैसियत से जो भाषण दिया था, वह प्रत्येक विचारशील हिंदू के पढ़ने और मनन करने-योग्य है। सबसे प्रारंभ में आपने हिंदू-महासभा के उद्देशों का स्पष्ट उल्लेख किया, और बतलाया कि इस संस्था का उद्देश फूट पैदा करना नहीं है। यह एकता उत्पन्न करनेवाला वातावरण निर्माण करना चाहती है। इस समय मुसलमान लोग विशेषाधिकारों के लिये ज़िद कर रहे हैं। निर्वाचन में विशेषाधिकारों का फल बड़ा ही हानिकारक होता है। इस अनिष्ट के रोकने का एक-मात्र उपाय यह है कि हिंदू अपना संगठन और अपने स्वत्वों की रक्षा करें। एक छोटी संगठित जाति एक बड़ी असंगठित जाति को हरा सकती है। अँगरेज़ लोग इसके उदाहरण हैं। मुसलमान भी विशेषाधिकार और संगठन के ज़ोर से हिंदुओं के हितों को कुचल सकते हैं। हिंदुओं को संगठन करना चाहिए। लाला लाजपतरायजी की राय है कि जो जातियाँ जातिगत विशेषाधिकारों के पक्ष में नहीं हैं, उनके साथ हिंदुओं को नवीन मैत्री और सद्भाव स्थापित करना चाहिए। ईसाई और पारसियों के साथ हिंदुओं का व्यवहार अत्यंत प्रेम-पूर्ण रहना चाहिए। पारसियों और हिंदुओं की संस्कृति में बहुत कुछ समता है। इसलिये इन दोनों जातियों में खूब मेल-जोल बढ़ना चाहिए। स्वयं हिंदू-जाति के अंतर्गत जो बहुत-से भेद-भेदांतर हैं, उनको भी दूर करने का पूर्ण उद्योग होना चाहिए। आपने दाक्षिणात्य और पाश्चात्य भारत के हिंदुओं को यह सलाह दी कि वहाँ के अब्राह्मणों को द्विजाति के अधिकार तुरंत दे देना चाहिए। उत्तर-भारत में ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय और वैश्य भी द्विजातियों में गिने जाते हैं। उनको वेद और गायत्री पढ़ने का अधिकार प्राप्त है। इसीलिये वहाँ ब्राह्मणों और अब्राह्मणों में विरोध नहीं है।

हिंदू-धर्मशास्त्र में ब्राह्मणेतर वैश्य और क्षत्रिय को ये अधिकार प्राप्त हैं, तब दक्षिण और पश्चिम के कट्टर ब्राह्मण शास्त्र की आज्ञा कार्यरूप में परिणत करके विरोध के एक प्रधान भाव को क्यों नहीं दूर कर डालते? वर्णाश्रम-धर्म की ज़ोरों के साथ दुहाई दी जा रही है। पर उसका पालन कौन करता है? क्या बारह वर्ष के लड़के का विवाह करना आश्रम-धर्म के अनुकूल है? क्या आजकल के हिंदू ६० वर्ष की अवस्था होने पर गृहस्थाश्रम छोड़कर उचित आश्रम का आश्रय लेते हैं? यदि नहीं, तो फिर शास्त्र-सम्मत, देश और काल के अनुकूल, धर्म को हम क्यों नहीं अपनाते? हिंदुओं में अस्पृश्यता की प्रथा भी फूट पैदा करनेवाली है। इसका भी अति शीघ्र बहिष्कार होना चाहिए। लालाजी ने कट्टर हिंदुओं से विशेष रूप से प्रार्थना की कि वे किसी के बहकावे में आकर राष्ट्रीय भाव रखनेवाले हिंदुओं को अपना शत्रु न समझें, और देश-काल की दशा देखते हुए अपने लोकाचारों में परिवर्तन करने को तैयार हो जायँ। भाषण के अंतिम भाग में लालाजी ने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि हिंदुओं को अपनी माताओं की रक्षा में प्राणपण से लग जाना चाहिए। उनकी शारीरिक निर्बलता, मानसिक हीनता, मिथ्या विचार-प्रियता, बेपरवाही आदि को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न होना चाहिए। हिंदू-स्त्रियों में कायरता और पराश्रय-प्रियता के भाव अत्यधिक हैं। वे अपने भोजन आदि के मामलों में बहुत ही उदासीन भाव रखती हैं। प्रतियोगिता के साथ काम करने की शक्ति उनमें कम पाई जाती है। उनमें उत्साह और ओज का अभाव दिखलाई पड़ता है। इन सब कमियों को दूर करने की आवश्यकता है। विना उत्कृष्ट माताओं के अच्छी संतान नहीं उत्पन्न हो सकती। इसलिये हमें उनकी रक्षा और शिक्षा का प्रबंध करना ही होगा। संक्षेप में लालाजी के भाषण का यही सारांश है। हम चाहते हैं, जो लोग पढ़ सकते हैं, उन्हें यह भाषण अवश्य पढ़ना चाहिए। समग्र हिंदू-जाति लालाजी के इन अमूल्य उपदेशों के लिये उनकी कृतज्ञ है। हमें यथासाध्य लालाजी की इच्छा पूर्ण करनी चाहिए।

× × ×

९. स्वराज्य-दल

देश में इस समय राजनीतिक आंदोलन के संबंध में

काम करनेवाले दलों में स्वराज्य-दल का एक विशेष स्थान है। इस दल की संगठन-शक्ति और सब दलों के संगठन से दृढ़ समझी जाती थी। इसके नेता स्वर्गीय दास और वर्तमान पं० मोतीलाल नेहरूजी-सदृश त्यागी महानुभाव थे। दो-तीन साल के अंदर इसने अद्भुत उन्नति की। यहाँ तक कि कांग्रेस में भी इसी की तूती बोलने लगी। कौंसिलों में इसने सरकार को बहुत तंग किया। पर अब इतने दिनों के बाद इसका संगठन डगमगा उठा है। हम माधुरी के एक नोट में दिखला चुके हैं कि स्वराज्य-दल की अड़ंगा की नीति धीरे-धीरे सहयोग के समीप पहुँच गई है। स्कीन-कमेटी की मेंबरी और कौंसिल की प्रेसिडेंटी अड़ंगा-नीति के प्रभाव को बढ़ानेवाली नहीं, बल्कि घटानेवाली है। ख़ैर, यह सब हो ही रहा था कि मध्य-प्रदेश के प्रसिद्ध स्वराजी नेता श्रीयुक्त तांबे ने उक्त प्रदेश की कार्यकारिणी-समिति की सदस्यता स्वीकार कर ली। यह काम उन्होंने अपने दल की सम्मति लिए विना ही किया। जब उनका यह कृत्य सर्वसाधारण पर प्रकट हुआ, तो स्वराज्य-दल के नेता पं० मोतीलालजी ने उनके इस काम की घोर निंदा की। पर बात यहीं तक नहीं रह गई। श्रीतांबे की नियुक्ति पर पूने के प्रसिद्ध स्वराजी नेता श्रीयुत केलकर ने उनको एक बधाई का तार भेजा, और श्रीजयकर ने भी तांबे के कौंसिल में पहुँचने की बात को लेकर प्रसन्नता प्रकट की। इतना ही नहीं, इन दोनों सज्जनों ने यह वक्तव्य भी प्रकाशित किया कि अब समय आ गया है कि देश में प्रतियोगी-सहयोग का प्रारंभ किया जाय। इस प्रकार एक ओर स्वराज्य-दल के नेता ने तांबे के कार्य की निंदा की, और दूसरी ओर श्रीकेलकर और जयकर ने उनके काम को सराहा। इस परस्पर-विरोध से श्रीनेहरू, केलकर और जयकर में वाग्युद्ध आरंभ हो गया। श्रीकेलकर और जयकर ने महाराष्ट्र में स्वर्गीय लोकमान्य तिलक का नाम लेकर प्रतियोगी-सहयोग का झंडा ऊँचा किया, और खुल्लमखुल्ला नेहरूजी की अड़ंगा-नीति का विरोध आरंभ किया। प्रायः एक महीने तक तो यह दशा रही कि जान पड़ता था, स्वराज्य-दल का अंत आ गया। पर एक बार पंडित मोतीलालजी ने फिर बुद्धिमानी का परिचय दिया, श्रीकेलकर और जयकर से मिलकर बातचीत करने के लिये बंबई में एक कानफ़्रेंस की व्यवस्था की। इस कानफ़्रेंस में यह तय पाया कि कानपूर-कांग्रेस तक न तो नेहरू-दल प्रतियोगी-सहयोग के विरुद्ध प्रचार-कार्य करे, और न केलकर-दल कट्टर स्वराज्य-दल के कार्य-क्रम के विरुद्ध। इस प्रकार कुछ समय के लिये स्वराज्य-दल की बढ़ती हुई फूट में कुछ रुकावट पड़ गई है। पर आगे क्या होगा, इसकी बाबत कोई कुछ नहीं कह सकता। इतना स्पष्ट है कि स्वराज्य-दल का संगठन अब पहले के समान दृढ़ नहीं है। मान्यवर लाला लाजपतरायजी ने स्वराजियों की इस आपस की लड़ाई को देखकर ठीक ही कहा है कि यह लड़ाई केवल नाम के संबंध में है, इसमें और कुछ सार नहीं। एक दल आधे दर्जन को ६ न कहकर आधा दर्जन कहने की ज़िद कर रहा है, तो दूसरा दल ६ कहने पर ही डटा है, वह ६ को आधा दर्जन नहीं कहना चाहता। हमारी राय में श्रीकेलकर और जयकर का यह कहना ठीक जचता है कि स्वराज्य-दल अब भी प्रतियोगी-सहयोग की नीति बरत रहा है, पर साथ ही इन दोनों सज्जनों ने कट्टर स्वराज्य-दल का जिस रीति से विरोध किया है, वह अत्यंत आपत्तिजनक है।

× × ×

१०. रुई का कर

भारत में बननेवाले देशी कपड़े पर एक कर लगाया जाता था। इसी को 'काटन इक्साइज़' या 'रुई का कर' कहते थे। इस कर की बदौलत भारतवर्ष में कपड़ा तैयार करनेवाली मिलें विदेशी मिलों का मुक़ाबला नहीं कर पाती थीं। इस कर को उठा देने के विरुद्ध बरसों से आंदोलन जारी था; पर सरकार ने प्रजा की पुकार की कभी परवा नहीं की। व्यवस्थापिका सभा के गत अधिवेशन में इस कर को उठा देने के पक्ष में एक बार फिर प्रस्ताव उपस्थित किया गया, और वह एक-स्वर से पास भी हो गया। पर उस समय भी सरकार यह कहकर टाल गई कि अब वर्ष के बीच में कुछ नहीं किया जा सकता। मार्च में बजट के समय विचार किया जायगा। उस समय बात यहीं तक होकर रह गई, पर बाद को मिलों में असंतोष ने ज़ोर पकड़ा। मिल-मालिकों का माल तो बिक नहीं रहा था, और उधर उनको कुलियों को पूरी मज़दूरी देनी पड़ती थी। आख़िर मिलों के मालिक अधिक समय तक इस भार को उठा

न सके। उन्होंने कुलियों की मज़दूरी में कमी करने का निश्चय किया। इससे असंतोष और बढ़ा। कुलियों ने कम मज़दूरी लेने से इनकार कर दिया, और हड़ताल का आयोजन किया। धीरे-धीरे बंबई की सभी मिलें बंद हो गईं, और दो लाख के लगभग मज़दूर बेकार हो गए। विचार करने की बात है कि जिन बेचारे मज़दूरों का भोजन नित्य की उपार्जित मज़दूरी पर निर्भर था, उनकी कितनी बुरी दशा हुई होगी। फिर भी मज़दूरों ने अद्भुत शांति के साथ हड़ताल जारी रक्खी। मालिक लोग भी टस से मस नहीं हुए। इस भीषण स्थिति का परिचय दिलाते हुए नेताओं ने एक बार सरकार से फिर प्रार्थना की कि रुई का कर उठा दिया जाय। पर फिर भी सरकार ने सुनवाई न की। रुई के कर के विषय में नियम यह है कि जितना कपड़ा बनेगा, उतने पर ही सरकार कर लगा सकेगी। सो मिलों के बंद हो जाने से यह कर आप-ही-आप स्थगित था। दो महीने तक सरकार को कुछ भी प्राप्त न हुआ। तब सरकार की भी आँखें खुलीं। उसने सोचा कि अब सेंत-मेंत का यश लूटना चाहिए। अस्तु, लॉर्ड रीडिंग ने एक आज्ञा निकालकर मार्च, सन् १९२६ तक के लिये यह कर माफ़ कर दिया है, और यह भी वक्तव्य प्रकाशित किया है कि मार्च के बाद इस कर को सदा के लिये उठा देने की भी व्यवस्था की जायगी। इस भाँति से इस कर का अंत हुआ। हमारे देश के लिबरल राजनीतिज्ञ बड़े ही चतुर हैं। जैसे ही यह कर स्थगित हुआ कि उन्होंने यह चिल्लाहट मचाई कि रुई-कर का स्थगित होना वैध आंदोलन की विजय है। इन देशभक्तों की राय में देश के लिये सरकार द्वारा जो कोई भी उपकार होता है, वह वैध आंदोलन की ही बदौलत; मानो भारत के हित का ठेका इस वैध आंदोलन ने ही ले रक्खा है। हम वैध आंदोलन के इस भ्रामक प्रभाव का तीव्र प्रतिवाद करते हैं। हमारी राय में इस कर के स्थगित होने में वैध आंदोलन की करतूत कुछ भी नहीं है। बरन् जो कुछ हुआ है, वह खुली मुठभेड़ (direct action) की बदौलत हुआ है। न मज़दूर लोग हड़ताल करके आप-ही-आप कर को स्थगित कराते और न सरकार का ध्यान इधर जाता। एक बात और है, जापान के बढ़ते व्यापारिक प्रभाव का नियंत्रण करने के लिये भी भारतीय रुई का कर स्थगित किया जा सकता है। कारण कोई भी हो, जब सरकार द्वारा एक ऐसा कार्य हो गया है, जिससे भारत के कपड़े के व्यापार को लाभ पहुँचने की संभावना है, तब हमें सरकार के प्रति कृतज्ञता ही प्रकट करनी चाहिए। हम आशा करते हैं, इस परिवर्तन से मिल के मालिक लाभ उठावेंगे। अंत में हम मिल-मज़दूरों को उनके साहस, संगठन और सफलता पर बधाई देते हैं।

× × ×

११. सभ्यता का स्रष्टा

हाल में लखनऊ-युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर राधाकमल मुखर्जी ने Ground-Work of Economics नाम की एक किताब लिखी है। इसमें मनुष्य के वैषयिक जीवन की जन्म-कथा का वर्णन है। सहयोगिनी उत्तरा में इस संबंध में एक सुंदर नोट निकला है। उसी का रूपांतर पाठकों के लाभार्थ हम यहाँ किए देते हैं—

साधारणतः हम लोग समझते हैं कि वैषयिक उन्नति के साधन और सभ्यता के प्रचार में नारी-जाति का विशेष भाव से कुछ हाथ नहीं है, जगत् में जो कुछ उन्नति हुई है, वह पुरुषों ही के द्वारा। इसी तरह की धारणा बद्धमूल हो रही है। किंतु अच्छी तरह विश्लेषण करके देखने से खूब अच्छी तरह यह समझ में आ जाता है कि सामाजिक सुख और स्वच्छंदता के विधान में स्त्री-जाति की सहायता ही अधिक है, और अगर यह कहा जाय कि सभ्यता की सृष्टि वास्तव में स्त्रियों ही के द्वारा हुई है, तो शायद कुछ अत्युक्ति न होगी। सभ्यता के आदिम युग में मर्द लोग बाघ, भालू, सुअर, मृग आदि का शिकार करते फिरते थे, और इसी में उनका अधिकांश समय बीतता था। उनमें शारीरिक शक्ति अधिक थी, इस कारण जिन कामों में शारीरिक शक्ति का प्रयोजन होता था, उन्हें वे अच्छी तरह कर सकते थे, वैसे ही कामों में उनका अधिक समय बीतता था, और उन्हें आनंद भी अपेक्षाकृत अधिक मिलता था। अतएव ऐसे कामों के अतिरिक्त दुनिया के और कामों में वे उतना मन नहीं लगा सकते थे। गिरस्ती के कामों का भार स्त्रियों के ही ऊपर था। उनकी मा-बहनें और स्त्रियाँ दिन-भर बड़े धैर्य के साथ गिरस्ती के छोटे-बड़े सब कामों को सुश्रृंखला और सहूलियत के साथ करती

रहती थीं। मर्द लोग शिकार करके थके हुए जब घर लौटते थे, तब उस शिकार में मिले हुए मांस आदि को पकाकर स्त्रियाँ उनके आगे उपस्थित करती थीं। पुरुषों के शिकार और युद्ध के शस्त्रास्त्रों को साफ़ करना, ईंधन चुन लाना आदि सब काम स्त्रियों को ही करने पड़ते थे। आजकल मर्द लोग ही घर वग़ैरह बनाते हैं, किंतु शुरू में यह शिक्षा उन्हें औरतों से ही मिली है। आदिम काल में गृह-निर्माण स्त्रियाँ ही करती थीं, पुरुष नहीं। चित्र अंकित करना, कपड़े बुनना, मिट्टी के बर्तन बनाना वग़ैरह काम पहले औरतों ने ही शुरू किए थे। घर के फ़र्श पर नाना प्रकार की फूल-पत्तियों और बेलों के आकार बनाकर वे घर को यथाशक्ति सुंदर रूप से सजाने की चेष्टा करती थीं। इस समय भी गृह-सज्जा का काम अधिकतर औरतें ही करती हैं। इस मामले में मर्दों की अपेक्षा स्त्रियों की ही रुचि अच्छी पाई जाती है। उन्हा को इसकी धुन भी ज़्यादा होती है। हमारे देश की निरक्षर नारियाँ भी, जिन्हें कोई आदमी ही नहीं गिनता, इस विषय में पुरुषों से अधिक निपुणता दिखलाती हैं। देहात के किसी किसान के घर जाने पर भी देख पड़ता है, घर की औरतों ने बड़ी सफ़ाई के साथ गोबर-मिट्टी वग़ैरह से सारा घर लीप-पोत करके झक कर रक्खा है, रविवर्मा के चित्रों, बज़ाज़ के घर से कपड़ों के साथ आनेवाली सस्ती तसवीरों और अनेक प्रकार के खिलौनों के द्वारा सोने या बैठने-उठने के स्थान को मनोहर बना डाला है, अलगनी बाँधकर उन पर धोतियाँ वग़ैरह चुनकर रख छोड़ी हैं। तरह-तरह के सूक्ष्म गृह-शिल्पों की सृष्टि भी स्त्रियों के ही हाथों हुई है। काश्मीरी शालों पर सुई का काम वहाँ की अपढ़ अशिक्षित स्त्रियाँ ही करती हैं। ढाके की विश्वविख्यात महीन मसलिन का सूत वहाँ की स्त्रियाँ ही काता करती थीं। कपड़ा बुनना भी, जान पड़ता है, सबसे पहले औरतों ने ही शुरू किया था। खेत का सब काम पहले ज़माने में स्त्रियों को ही करना पड़ता था। इस ज़माने में भी बहुत-सा खेती का काम औरतें ही करती हैं। जब 'हल' का आविष्कार नहीं हुआ था, उस समय पहले की औरतें ही वृक्ष की नुकीली डालियों की सहायता से खेत जोतती थीं। कुमायूँ-गढ़वाल की तरफ़ और यू० पी० में भी स्त्रियाँ ही अधिकतर खेतों में खाद डालती, बीज बोती और खेतों की सफ़ाई करती रहती हैं। अन्न पक जाने पर खेत भी वे ही काटती हैं। वे ही धान कूटती हैं, वे ही गेहूँ वग़ैरह का आटा पीसती हैं। मर्द लोग केवल धरती में हल चलाकर ही छुट्टी पा जाते हैं। नारी-जाति को यदि हम उसके इन सब कामों का यथोचित पारिश्रमिक देना चाहें, तो हमें निःसंकोच होकर यह स्वीकार करना होगा कि स्त्री-जाति ने ही पुरुष-जाति को सभ्य बनाया है—सामाजिक उन्नति का अधिक अंश नारी-जाति ही के हाथों सुसंपन्न हुआ है, और इस प्रकार सभ्यता का स्रष्टा अगर कोई है, तो नारी ही।

× × ×

१२. लेखकों को टालसटाय के तीन उपदेश

काउंट लियो टालसटाय को ऐसा कौन पढ़ा-लिखा आदमी है, जो न जानता हो? आप रशिया के ही नहीं, सारे संसार के लिये गौरव और गर्व की वस्तु थे। आपकी गणना इस युग के ऋषियों-महर्षियों में होती है। टालसटाय के उपन्यास परम प्रसिद्ध हैं। आपकी एक किताब है What is art? (आर्ट क्या है?)। छपी हुई प्रतियाँ चुक जाने के कारण यह ग्रंथ बहुत दिनों से अप्राप्य हो रहा था। टालसटाय की रचनाओं का अँगरेज़ी-अनुवाद करनेवाले आलमर माड (Aylmer Maude) साहब ने हाल में उक्त पुस्तक का नवीन संस्करण प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तक के साथ ही टालसटाय की और भी कई रचनाएँ छापी गई हैं। ये सब रचनाएँ टालसटाय की प्रौढ़ावस्था की हैं, और इनका विषय है शेक्सपियर तथा मोंपासा के ग्रंथों की समालोचना। यह पुस्तक अँगरेज़ी जाननेवाले पाठकों के पढ़ने-योग्य है। इस किताब में टालसटाय ने तीन बहुमूल्य उपदेश दिए हैं, और वे ये हैं—१—जिस विषय पर लिखा जाय, वह मनुष्यों के प्रयोजन का होना चाहिए; २—उस विषय को ऐसे विशद और स्पष्ट भाव से प्रकट किया जाय कि लोग अनायास ही सहज में समझ लें; ३—लेखक जब कुछ लिखने बैठे, तब वह पहले यह देख ले कि उसका हृदय उस विषय पर लिखने की आवश्यकता का अनुभव करता है या नहीं। बाहर का कोई प्रलोभन लेखक को इस ओर चलाने न पावे, इस पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। महर्षि टालसटाय के

ये तीनों उपदेश आधुनिक लेखकों को अपने हृदय में अंकित कर लेने चाहिए।

× × ×

११. दक्षिण-आफ़्रिका-प्रवासी भारतीय और डॉक्टर फ़िशर

बिशप फ़्रेडरिक फ़िशर एक उदाराशय अमेरिकन सज्जन हैं। आप मेथोडिस्ट मिशन की ओर से कलकत्ते में रहकर बिशप (पादरी) का कार्य करते हैं। आप दक्षिण-आफ़्रिका घूमकर अभी हाल में भारत आए हैं। बंबई में वहाँ के इंडियन डेलीमेल-नामक अँगरेज़ी पत्र के एक प्रतिनिधि ने आपसे मिलकर दक्षिण-आफ़्रिका के संबंध में पूछ-ताछ की थी। आपके साथ उक्त प्रतिनिधि का जो वार्तालाप हुआ था, उसमें दक्षिण-आफ़्रिका-प्रवासी भारतीयों की दशा के संबंध में आपने जो कहा, उसका अनुवाद हम यहाँ पर इसलिये देते हैं कि हमारे पाठक एक निष्पक्ष श्वेतांग के मुख से अपने प्रवासी भाइयों की दुरवस्था का परिचय प्राप्त कर अवश्य ही अपेक्षाकृत अधिक प्रभावान्वित होंगे। बिशप महाशय ने बतलाया—

"मैं दो महीने तक आफ़्रिका में रहा। इस समय में मैंने रोडेशिया और पुर्तगीज़ों के अधिकृत स्थान आदि आफ़्रिका के सभी प्रदेशों में भ्रमण कर डाला। हर केंद्र में भारतीयों की जो समितियाँ हैं, उन्हें भी मैंने देखा है। प्रत्येक नगर के मेयर से भेंट की है, और बहुत-से कौंसिलरों, पार्लियामेंट के सदस्यों और कैबिनेट के मंत्री से परिचय का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ है। मैंने निरपेक्ष भाव से फ़्रेंच, अँगरेज़, पुर्तगीज़, हिंदोस्तानी और आदिम आफ़्रिकावासी आदि सभी के मनोभाव को जानने की चेष्टा की है। मैंने जो जाना है, उससे मुझे यही समझ पड़ा कि यहाँ की समस्या बड़ी जटिल है। आफ़्रिका में वर्ण-विद्वेष इतना ज़बरदस्त है कि दुनिया-भर में और कहीं वैसा नहीं देखा जाता। उदाहरण के तौर पर ट्रांसवाल की बात कही जा सकती है। उस देश में कोई भी भारतीय बिना लाइसेंस के रोज़गार-धंधा नहीं कर सकता, और वह लाइसेंस देना भी एक श्वेतांग के हाथ में है। किसी जगह पर किसी भारतीय की कोई दूकान हो, और वह गोरा-कर्मचारी चाहे, तो उसे अनायास ही दूसरी जगह उठा दे सकता है। भारतीयों को कोई स्थायी भू-संपत्ति नहीं दी जाती, जिससे उन्हें विशेष असुविधा होती है। वे किसी एक निर्दिष्ट स्थान में वास नहीं कर सकते, और चाहे जिस घड़ी उनके पास वहाँ से उठ जाने की आज्ञा सरकार की ओर से आ सकती है। पहले रूस में जैसा व्यवहार यहूदी बाशिंदों के साथ किया जाता था, ट्रांसवाल के भारतीयों के साथ भी आजकल कार्यतः वैसा ही व्यवहार किया जाता है। जिस समय यहूदी सताए जाते थे, उस समय कितने ही सहृदय व्यक्तियों ने इँगलैंड के अख़बारों और मासिक पत्रों में उन सब अत्याचारों का हाल लिखकर यहूदियों के ऊपर संसार की सहानुभूति और रूसी सरकार के प्रति घृणा और विद्वेष के भाव जगाने की चेष्टा की थी। किंतु बड़े ही आश्चर्य की बात है कि वे सब उदार विश्वहितैषी (जो अब तक जीवित हैं) अथवा उनके उत्तराधिकारी परवर्ती लेखक लोग इस समय इन सब असहाय दुर्बल भारतीयों के ऊपर होनेवाले निष्ठुर अमानुषिक अत्याचारों का वृत्तांत किसी प्रकार किंचिन्मात्र प्रकाशित नहीं करते, या यों कहिए कि उस अत्याचार और उत्पीड़न के प्रतिकार के लिये लेश-मात्र प्रतिवाद की आवाज़ ऊँची नहीं करते! यह देखकर क्या समझ पड़ता है? इससे क्या यह नहीं ख़याल होता कि वर्तमान युग के अधिकांश श्वेतांगों का मानव-प्रेम या मानव-हितैषणा उनकी स्वार्थ-सिद्धि की अभिसंधि अथवा चेष्टा के मुक़ाबले में बिलकुल मामूली बात है? क्या यह अनुमान नहीं होता कि उनका विश्व-प्रेम कोरा ज़बानी जमा-ख़र्च है, उनका हृदय इसके साथ नहीं है? एशियाइयों—ख़ासकर भारतीयों—के ऊपर दक्षिण-आफ़्रिका के गोरों का यह विद्वेष क्यों है? इस निष्ठुरता का क्या कारण है? इसके पहले वे कहते थे कि भारतीय मनुष्य बेहद गंदे होते हैं, और सुसभ्य गोरे योरपियन लोग उनके साथ एकत्र किसी तरह नहीं रह सकते। किंतु इस कथन की झुठाई अनेक बार प्रमाणित हो चुकी है। वास्तव में दक्षिण-आफ़्रिका के सभी भारतीयों को हैरान-परेशान करके भगाने के लिये लाचार करना ही आफ़्रिकावासी गोरों की सारी कोशिशों का प्रधान उद्देश्य या लक्ष्य है? आफ़्रिका के गोरे जिन-जिन कारणों से भारतीयों के साथ प्रतियोगिता नहीं कर पाते, उनमें, उन्हीं के कथनानुसार, एक कारण तो यह है कि भारतीय लोग वहाँ के गोरों से अधिक बुद्धिमान् हैं। और, दूसरा कारण यह है कि भारतीय लोग गोरों की अपेक्षा कम ख़र्च में ही अपना गुज़र कर

सकते और कर भी लेते हैं। इस उपनिवेश के गोरे-कालों के आगे प्रतियोगिता में न टिक सककर आईन के सहारे स्वार्थ-साधन का प्रयास कर रहे हैं। वे दक्षिण-आफ़्रिका को केवल अपना ही देश समझते हैं, और वहाँ अपनी ही प्रधानता अक्षुण्ण बनाए रखना चाहते हैं। बुद्धिशाली और अपने प्रतियोगी भारतीयों का दर्प किसी तरह चूर्ण किया जाय, यही वहाँ के गोरों की ज़िद हो गई है। इसी कारण दक्षिण-आफ़्रिका के गोरों ने एशियाइयों की जड़ उखाड़ने के विचार से आईन का एक मसविदा बनाकर वहाँ की व्यवस्थापक-सभा में पेश किया है। यह बिल जब आईन बन जायगा, तब दक्षिण-आफ़्रिका-भर में कहीं भारतीयों के लिये जगह नहीं रहेगी। गोरों के प्रति दक्षिण-आफ़्रिका के आदिम अधिवासियों के मन का भाव भी संतोषजनक नहीं है। तथापि केवल भारतीय ही क्यों गोरों की आँखों में खटकते हैं, इस प्रश्न का उत्तर यही है कि भारतीय लोग अधिक बुद्धिमान् हैं, और इसलिये उन्हीं से उनको अधिक खटका है। भारतीयों की प्रतियोगिता में ही गोरों का टिकना मुश्किल है, आदिम अधिवासियों का नहीं। इसी से भारतीयों को विरोध में बोलने के अधिकार से वंचित करने की चेष्टा हो रही है। इँगलैंड और भारत की सरकारें अगर इस मामले में हस्तक्षेप करें, तो इसका आपस में संतोषजनक फ़ैसला हो सकता है। नहीं तो दक्षिण-आफ़्रिका के भारतीयों को हमेशा गोरों से दबकर रहना पड़ेगा। दक्षिण-आफ़्रिका के ईसाइयों अथवा अन्य धार्मिक संस्थाओं से किसी तरह की सहायता पाने की आशा करना व्यर्थ है। सबसे बढ़कर दुःख की बात तो यह है कि इस मामले में वहाँ के भारतीय एकमत नहीं हैं, उनमें एकता का अत्यंत अभाव है। दक्षिण-आफ़्रिका में जैसा सर्वनाशकर आईन बनने जा रहा है, उसे देखकर सभी श्रेणियों के भारतीयों को मिलकर एकसाथ उसका प्रतिवाद करना चाहिए।"

बिशप महोदय के उद्धृत वाक्यों को पढ़कर भी जिस भारतीय की आँखों में अपने विपन्न भाइयों के लिये आँसू न निकल आवें, भारत के अपमान का ख़याल करके जिसका ख़ून न खौल उठे, वह भारतीय ही नहीं है। इससे बढ़कर भारत का अपमान और क्या होगा? मि० फ़िशर ने प्रतिनिधि से यह भी कहा है कि दक्षिण-आफ़्रिका में सभी भारतीय—चाहे वे शिक्षित हों चाहे अशिक्षित, चाहे धनी हों चाहे निर्द्धन—कुली कहलाते हैं। गोरों के लड़की-लड़के स्कूलों में जिन किताबों को पढ़ते हैं, उनमें भी यही लिखा है कि भारतीय सभी कुली की जाति हैं। वहाँ के किसी भी होटल में भारतीय के लिये स्थान नहीं है। केवल कुली या नौकर के ही रूप में वह वहाँ प्रवेश कर सकता है। ब्रिटिश और भारतीय विश्वविद्यालयों की उपाधि पाए हुए भारतीयों के साथ भी फ़िशर को होटल के बरामदे में खड़े होकर बातचीत करनी पड़ी थी। इस अत्याचार और अन्याय का भी कोई ठिकाना है! क्या भारतवासी लोग अपने भाइयों को इस अपमान से मुक्त करने के लिये, उनका उनके अधिकार दिलाने के लिये कठिन-से-कठिन कष्ट उठाने और स्वार्थत्याग करने को तैयार न होंगे?

× × ×

१४. प्रतिभा की जननी

प्रोफ़ेसर गिडिंग्स का कहना है कि प्रतिभा का जन्म-स्थान देहात में—नगरों और शहरों के बाहर—है। बड़े-बड़े शहरों में लोक-संख्या की वृद्धि होती है—बहुत-से भावों का आदान-प्रदान होता है—कार्यकरी क्षमता की सृष्टि और पसार होता है। प्रतिभाशाली व्यक्तियों के कार्य-क्षेत्र बड़े-बड़े शहर ही होते हैं; किंतु उनकी जन्म-भूमि होने का गौरव बहुधा देहातों को ही प्राप्त होता है। जगत् के प्रधान मतों या धर्मों का अंकुर मरुभूमि या पर्वत के शिखर में ही निकला है। महम्मद साहब अरब के रेगिस्तान में उत्पन्न हुए थे। ईसामसीह ने सीरिया के एक जंगल में जन्म लिया था। बड़े-बड़े आविष्कार करनेवालों में से किसी ने जन्म लिया है प्रकृति की गोद में, किसी ने साधारण मनुष्यों के बीच। हमारे देश भारत के अनेक शक्तिशाली पुरुषों ने भी देहातों में ही जन्म लिया है।

× × ×

१५. राजमाता अलेक्ज़ैंड्रा का स्वर्गवास

हमारे सम्राट् पंचम जॉर्ज की माता महारानी अलेक्ज़ैंड्रा अब इस संसार में नहीं हैं। आप एक रमणी-रत्न थीं। स्वामी की मृत्यु के उपरांत आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, और आप एक प्रकार से एकांत-वास ही किया करती थीं। गत २० नवंबर को एका-

स्वर्गीया महारानी राजमाता अलेक्ज़ैंड्रा

अपार दया और सहानुभूति भरी थी। आप दान देने में भी मुक्त-हस्त थीं। कोई भी दीन-दुखी आपके आगे हाथ पसारकर ख़ाली नहीं लौटता था। ग़रीबों और रोगियों के उपकार के कामों में आप सदा आगे रहती थीं। इन्हीं गुणों के कारण आप लोकप्रिय बनी रहीं। आपके तीन लड़के और तीन लड़कियाँ पैदा हुईं आपका परिवार बड़ा है, और परपोते-परपोतियों तक का मुख देखकर आप मरी हैं। सन् १६०२ में आप पति के साथ राजपद पर सुशोभित हुई थीं, और नव वर्ष तक बनी रहीं। विधवा होने के बाद से आपका अधिकांश समय रोगियों और दरिद्रों की सेवा में ही बीतता रहा। ऐसी आदर्श नारी, आदर्श माता और आदर्श महारानी की मृत्यु पर सारे साम्राज्य में शोक मनाया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। हम अपने महामान्य सम्राट् और महारानी के समस्त शोकाकुल परिवार के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि वह महारानी की आत्मा को परलोक में शांति-प्रदान करें।

एक आपकी तबीयत बहुत ख़राब हो गई, और २१ तारीख़ को आपका कष्ट इतना बढ़ गया कि तीसरे पहर आप इस लोक से चल बसीं। यह डेनमार्क के राजा की बेटी थीं। इनका जन्म सन् १८४४ में, १ दिसंबर के दिन, हुआ था। इस समय अवस्था ८१ वर्ष की थी। इनका विवाह सन् १८६३ में सम्राट् सप्तम एडवर्ड (उस समय युवराज) के साथ हुआ था। आप परम सुंदरी थीं। डीन स्टैनले ने उनके रूप पर मुग्ध होकर युवराज को ये शब्द लिखे थे—"I can truly say that she is as charming and beautiful a creature as ever passed through a fairy tale."

आपके रूप पर सारा देश मुग्ध था, और उन्हें अपने लिये गौरव की वस्तु समझता था। आपने विवाह के उपरांत इँगलैंड की जनता को अपने व्यवहार और आचार-विचार से संतुष्ट करना अपना प्रधान कर्तव्य समझ लिया था। आप एक आदर्श महिला थीं। आपके हृदय में

× × ×

१६. भू-प्रदक्षिणा के शौक़ीन अमेरिकन

अमेरिका धनी देश है। पर वहाँ के धनी हमारे देश के धनी-नामधारी जीवों की तरह अपने धन का दुरुपयोग दुर्व्यसनों में नहीं करते। वे धन कमाना अगर जानते हैं, तो उसका सदुपयोग भी कर सकते हैं। प्रति-वर्ष प्रायः सैकड़ों ही अमेरिकन पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने निकलते हैं। अभी हाल में दि बेलेजनलैंड-नामक रेडस्टार-लाइन का बड़ा जहाज़ ४०० से भी अधिक अमेरिकन यात्रियों को लेकर पृथ्वी-प्रदक्षिणा के लिये दुबारा जाने-वाला है। यह जहाज़ २७,००० टन का है, और पृथ्वी-भर में बड़े आकार के जो जहाज़ हैं, उनमें इसका नवाँ नंबर

है। इसके सिवा और कोई इतना बड़ा जहाज़ पृथ्वी-प्रदक्षिणा के लिये आज तक नहीं निकला। गत वर्ष इसने प्रथम यात्रा की थी। इस बार भी गत वर्ष की तरह अमेरिकन एक्सप्रेस-कंपनी के साथ मिलकर रेडस्टार-लाइन ने इस जहाज़ को चलाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली है। यह जहाज़ १२ फ़रवरी को डायमंड-हारबर में पहुँचकर १६ तारीख़ तक वहाँ ठहरेगा। इस बीच में यात्री लोग इच्छानसार कलकत्ता, दार्जिलिंग, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, जयपुर आदि दर्शनीय स्थानों की सैर कर सकेंगे। जहाज़ १६ को डायमंड-हारबर से चलकर २० को कोलंबो पहुँचेगा, और २३ को वहाँ से चलकर २६ को बंबई पहुँच जायगा। यहाँ पर ख़ुश्की से दिल्ली, लखनऊ आदि की यात्रा करनेवाले मुसाफ़िर आकर अपने साथियों से मिल जायँगे। बंबई से ४ मार्च को मिसर की ओर जहाज़ चल देगा। वहाँ भूमध्य-सागर के किनारे के बंदरगाह वग़ैरह देखने-योग्य स्थानों की सैर करके ये लोग न्यूयार्क लौट जायँगे। इस भ्रमण के लिये एक टिकट के ३५,००० डालर (अमेरिका का सिक्का) देने पड़ेंगे। इसी से यह अनुमान किया जा सकता है कि इसमें धनी लोगों के सिवा औरों के लिये स्थान होना कठिन है। गत वर्ष इस जहाज़ में सवार होकर ४७५ यात्रियों ने यात्रा की थी। यह जहाज़ लंबाई में ६६७ फ़ीट और चौड़ाई में ७८ फ़ीट है। यह गरमियों में अमेरिका से इँगलैंड तक की यात्रा किया करता है। यह जहाज़ सन् १९२३ में आयर्लैंड के बेलफ़ास्ट-शहर में बनाया गया था। इंटरनैशनल मर्केंटाइल मेरीन कंपनी के अमेरिका के हिस्सेदार इसके मालिक हैं, और रेडस्टार-लाइन संचालक। इसको इंटरनैशनल जहाज़ कह सकते हैं। इस जहाज़ का होमपोर्ट एंटिवर्प होने पर भी यह अमेरिका से परिचालित होता है, और इसके मस्तूल पर ब्रिटन का झंडा फहराता है। इस जहाज़ के कप्तान जॉन ब्राडशा अमेरिकन हैं। इसके ऑफ़िसर सब प्रायः अँगरेज़ ही हैं। ख़ानसामा, ख़लासी वग़ैरह अधिकांश बेलजियन अथवा अँगरेज़ ही हैं। जहाज़ में ६०१ माँझी हैं, जिनमें ४० औरतें भी हैं। रसोईघर और भोजनशाला के काम में ३२५ आदमी लगे रहते हैं। इसमें दो सर्जन, एक दाँतों का डॉक्टर, एक व्यायाम-शिक्षक, एक शिक्षा-विषय का डाइरेक्टर, एक जहाज़ के दैनिक पत्र का संपादक, तीन छापनेवाले, एक पादरी तथा और भी बहुत-से कर्मचारी रहेंगे।

× ×

१७. दामस्कस या दमिश्क

समाचार-पत्रों के पाठक जानते हैं, फ़्रेंच जेनरल सराइल ने सीरिया में विद्रोही कहकर सीरियनों पर घोर अत्याचार किए हैं। इस निष्ठुर सैनिक ने आज वहाँ हाहाकार मचवा दिया है। अरबों की ऐतिहासिक अति प्राचीन नगरी दमिश्क का विध्वंस करके इस मनुष्य ने घोर बर्बरता का परिचय दिया है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह नगरी सौंदर्य और ऐश्वर्य में अद्भुत थी। इसके पत्थर-पत्थर में हर्ष और शोक की गाथाएँ अंकित हैं। यह नगरी अनेक बार विध्वंस के दृश्य इसी प्रकार देख चुकी है। इतिहास में प्रसिद्ध राजा डेविड ने जब दमिश्क पर अधिकार स्थापित किया था, तब इस नगरी की बाहरी चहारदीवारी पर २०,००० सीरियावासियों के सिर काटकर चुन दिए गए थे, और यह कहकर उन्हें निश्चिंत किया गया था कि अब सीरियन लोग सहज में विद्रोही होने का साहस नहीं करेंगे (आज का क़त्लेआम और अग्निकांड भी सराइल ने इसी विश्वास पर कराया है कि इससे विद्रोहियों को काफ़ी शिक्षा मिल जायगी, और वे फ़्रांस के विरुद्ध सिर नहीं उठावेंगे)। ख़ैर, डेविड के बाद ईसा के सन् से सात सौ साल पहले टिगलात पेलेशर ने इस नगरी को अपने अधीन करके वहाँ अपना शासन स्थापित किया। इसके बाद ७०० वर्षों तक दमिश्क में वैसी कोई उल्लेख-योग्य घटना नहीं हुई। अस्तु, इन सात सौ वर्षों के बाद रोम-राज्य की विश्वग्रासी राज्य-लिप्सा ने दमिश्क पर हाथ सफ़ा किया। इस्लाम की क्रोध की आग ने सुलग-सुलगकर सन् ६३५ ईसवी में रोम की पराधीनता के बंधन को जलाकर ख़ाक कर दिया। उसके बाद इतने बड़े क्रूशेड-वार में भी दमिश्क की स्वतंत्रता नष्ट नहीं हुई। इस समय सेंट पाल बहुत ही विपत्ति में पड़ गए थे। बेचारे फलों की पेटी के भीतर बैठकर सालादीन के क़िले से निकल भागे, और रोम के प्रतिनिधि के डेरे में पहुँचकर अपनी जान बचाई। सन् १२६० में मुग़लों ने सीरियनों के हाथ से दमिश्क छीन लेने के लिये बहुत घोर युद्ध किया, जिसके फल-

स्वरूप इसका कुछ हिस्सा सीरियनों के हाथ से निकल गया। फिर मुसलमानों का सांप्रदायिक विरोध बढ़ने पर, मौक़ा देखकर, फ्रांस ने दमिश्क को अपने राज्य में मिला लिया। किंतु सीरियनों के पहाड़ी क़िले अमराइट से शत्रुओं पर अग्निवर्षा बराबर होती ही रही। सीरियनों के रक्त में स्वाधीनता की बू बसी हुई है। इसके उपरांत तुर्कों की शक्ति का अभ्युत्थान हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के घटना-चक्र को देखकर इब्राहीम पाशा ने फिर दमिश्क पर अधिकार करने की कोशिश की। इसी समय से योरप की सम्मिलित विभिन्न शक्तियाँ श्येन-दृष्टि से एशिया की इस उर्वर भूमि को ताकने लगीं। किसी तरह कोई बहाना मिल जाय, और हम एशिया के इस रत्न को बाँट लें, यही उनका विचार बना रहा। इब्राहीम पाशा का हठ पाश्चात्य शक्तियों को असह्य मालूम हुआ। उनकी आँख टेढ़ी देखकर, गड़बड़ होते समझकर, इब्राहीम पाशा हाथ समेटकर अलग खड़े हो गए। सीरिया का आंतरिक विरोध ज़ोर पकड़ने लगा। कभी मुसलमानी और कभी ईसाई शक्ति के हाथ में आने-जाने से दमिश्क में ईसाई-जातियों की संख्या भी बढ़ गई थी। सन् १८६० ईसवी में, सेंट बेथलियम की जन्म-तिथि के उत्सव को लेकर, ईसाइयों और मुसलमानों में भारी विरोध उठ खड़ा हुआ। प्राय० ३,००० आदमियों के सिर कटकर गली-गली ठुकराए जाने लगे। इस अशांति की आग प्रायः पचास वर्ष तक जलती ही रही। सन् १९१८ ईसवी में, महायुद्ध के समय, जेनरल अलबेनी की सहायता से तुर्कों को भगाकर शांति-रक्षा की ठेकेदार अँगरेज़-जाति ने दमिश्क में शांति की स्थापना की। युद्ध समाप्त होने पर, राष्ट्रसंघ की राय के माफ़िक़, सीरियावासी ईसाइयों की सम्मति के अनुसार, दमिश्क फिर फ्रांस को सौंप दिया गया। तभी से ईसाइयों और मुसलमानों का विरोध शांत नहीं होने आता। फ्रांस के नाक में दम है। इधर फ्रांस को अब्दुलकरीम के साथ उलझा हुआ पाकर सीरिया के ड्रूज़ों ने फिर सिर उठाया। जेनरल सराइल के पहले और भी दो फ्रेंच जेनरल दमिश्क में शांति-स्थापना के लिये कोशिश करके हार गए थे। इन जेनरलों की सहानुभूति वहाँ के ईसाई-अधिवासियों के साथ ही होना बहुत स्वाभाविक था, और यही कारण है कि वहाँ को मुसलमान-प्रजा फ्रांस के विरुद्ध होने लगी। फ्रांस के प्रधान मंत्री हेरियट ने सुयोग्य समझकर जेनरल सराइल को सीरिया में सुव्यवस्था और सुशृंखला के साथ शांति स्थापित करने को भेजा था। उन्होंने एकदम गोलाबारी और बम-वर्षा करके सीरियन उपद्रवियों का ख़ातमा ही कर डालना बुद्धिमानी का काम समझा। अपने विचार के अनुसार नृशंस हत्याकांड करके आपने फ्रांस को ख़बर भेज दी कि दमिश्क में विद्रोहियों का विध्वंस करके सीरियनों को एकदम शांत कर दिया। फ्रांस के मंत्री ने सारा हाल सुनकर आपको वहाँ से बुला लिया। इस २०,००० प्राणों को मिट्टी में मिला देनेवाले भयानक प्रकृति के क्रूर मनुष्य को सिवा परमेश्वर के और कोई दंड देनेवाला नहीं देख पड़ता।

× × ×

१८. बाइबिल का प्रचार

संसार-भर की धर्म-पुस्तकों में सबसे अधिक प्रचार बाइबिल का ही माना जाता है। इँगलैंड की बाइबिल-सोसाइटी ने अब तक दुनिया की ५७२ भाषाओं में उसके अनुवाद प्रकाशित कर दिए हैं। गत वर्ष बाइबिल की १ करोड़ प्रतियाँ भिन्न-भिन्न भाषाओं में छापी और बाँटी गई थीं। मुसलमानों के तीर्थ-स्थान मक्के और मदीने में ईसाई मिशनरी जाने नहीं पाते। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद हो चुके हैं, और प्रायः सभी प्रांतों और छोटे-से-छोटे स्थानों में बाइबिल का प्रचार किया जा रहा है। बोलशेविक रूस में बाइबिल का भेजना बंद कर दिया गया है, यद्यपि वहाँ के लोग ईसाई ही हैं। गत दस वर्षों में हर डेढ़ महीने एक भाषा में नया अनुवाद करके छापा गया है! इस तत्परता का कुछ ठिकाना है! थाड़ोकूकी सिर्फ़ आसाम के कई हज़ार पहाड़ियों की भाषा है; पर इसमें भी बाइबिल का अनुवाद करके छाप डाला गया है। माडागास्कर-द्वीप में एक भाषा है, जिसका व्यवहार करनेवाले केवल १६,००० आदमी ही हैं। पर इस भाषा में भी बाइबिल छप गई है। भारत में ईसाई अक्सर हिंदू ही होते हैं, मुसलमान नहीं। छोटा नागपुर, आसाम और दक्षिण में हज़ारों हिंदू धर्म-भ्रष्ट हो रहे हैं। उनमें अपने धर्म-ग्रंथ बाँटनेवाली क्या कोई हिंदू-संस्था भी कभी देख पड़ेगी?

× × ×

१९. सबसे निरापद संदूक़

आजकल, ख़ासकर विलायत में, संदूक़ का ताला तोड़ डालनेवाले ऐसे-ऐसे उस्ताद वैज्ञानिक चोर पैदा हो गए हैं कि मज़बूत-से-मज़बूत संदूक़ भी निरापद नहीं कही जा सकती। सिर्फ़ बैंक ऑफ़ इँगलैंड के ख़ज़ाने की संदूक़ ही ऐसी है, जिसमें किसी की कोई चालाकी काम नहीं कर सकती। टेम्स-नदी के नीचे की सतह से भी नीचे भूगर्भ में यह संदूक़ रहती है। पका उस्ताद यद्यपि यह जान ले सकता है कि इस संदूक़ के क़ब्ज़े का जोड़ कहाँ पर है, तथापि उसमें हाथ लगाने का साहस कोई भी नहीं कर सकता। कारण, यदि तनिक भी ग़लती हुई, तो एक ऐसी कल अपना काम करने लगती है, जिसके ज़रिए बात-की-बात में उस जगह दस फ़ीट पानी भर जायगा, और चोर की जान के लाले पड़ जायँगे। कुछ दिन हुए, न्यूयार्क के एक बैंक ने एक कंपनी को एक बहुत मज़बूत संदूक़ तैयार करने का ऑर्डर दिया था। संदूक़ तैयार होने में दो साल लगे। संदूक़ बन जाने पर उसकी जाँच करने के लिये बैंक के डाइरेक्टरों ने पुलीस के बड़े ऑफ़िसर को बुलाकर उससे कहा—अगर कोई ऐसा आदमी हो, जो इस संदूक़ को खोल सके, तो उसे हम ३०,०००) इनाम में देंगे। एक टुकड़े तार की सहायता से ५ मिनट से कम समय में ही किसी उस्ताद ने यह बक्स खोलकर रख दिया था। दरवाज़े के किनारे और संदूक़ की बग़ल के बीच में अगर एक इंच के २०० भाग के एक हिस्से के बराबर भी फाँक हो, तो उसके ज़रिए पक्के चोर का संदूक़ को खोल डालना कोई आश्चर्य की बात नहीं समझी जाती। आजकल के उस्ताद चोर कल-क़ब्ज़े वग़ैरह में सिरमग़ज़ी नहीं करते। वे एक तरह का विस्फोटक चूर्ण उतनी-सी फाँक में रखकर ज़रा अग्नि का स्पर्श करा देते हैं। बस, वैसे ही संदूक़ का ताला मय दरवाज़े के उड़ जाता है। शब्द भी बहुत ही मामूली होता है। एक या दो मिनट में सब काम ख़तम हो जाता है, जैसा कि ऊपर अमेरिका के संदूक़ के बारे में लिखा जा चुका है।

× × ×

२०. दाँतों की सफ़ाई

शरीर में अनेक प्रकार के रोग जो होते हैं, उनमें बहुत-से दाँतों की सफ़ाई न होने के कारण ही होते हैं, यह बात सुनने में अवश्य ही आश्चर्यजनक प्रतीत होगी। किंतु अभी कई वर्ष पहले यह तथ्य जाना जा सका है, और इसमें अब संदेह नहीं रहा कि यह सिद्धांत बिलकुल ठीक है। इस बात को शायद बहुत लोग जानते होंगे कि दाँतों के चारों ओर या बीच में विष पैदा होने से शरीर का रक्त उसे सोखता है, और उसी के कारण बाई, संधिवात, स्नायु-दौर्बल्य, चक्षु-रोग, यहाँ तक कि हृदय के रोग तक पैदा हो जाते हैं। डॉक्टरों की राय है कि दाँतों की ठीक तौर से सफ़ाई और देख-रेख रखने से अक्सर कैंसर-रोग भी अच्छा किया जा सकता है। मुँह और दाँत साफ़ रखने से दाँतों में कोई रोग नहीं होता। साल में कम-से-कम दो दफ़े दाँतों के डॉक्टर को दाँत दिखा देने चाहिए। दाँतों के मसूढ़े फूल जाना ही पाइरिया-रोग का पूर्व-लक्षण समझा जाता है। डॉक्टरों का कहना है कि बच्चा जब दो साल का हो (और जब उसके दूध के दाँत अधिकांश बाहर निकल आते हैं), तभी से बाक़ायदे उसके दाँतों की परीक्षा कराना शुरू कर देना चाहिए। दूध के दाँत अच्छी हालत में बनाए रहने से दुबारा दाँत निकलने में कोई विशेष कष्ट नहीं होता। ऊपर और नीचे के दाँत समान भाव से अगर रगड़ नहीं खाते रहते, दाँतों के बीच में गढ़े पड़ जाते हैं, और उन गढ़ों में जूठन-भर रहती है, तो संक्रामक-रोगों के कीटाणु उन गढ़ों में रहकर स्वास्थ्य और शक्ति को नष्ट करते हैं। स्कूली लड़कों के दाँतों की जाँच करके देखा गया है, दाँतों का कोई रोग रहने से उनमें मानसिक शक्ति का अभाव होता है। लिखने-पढ़ने में जिन सब बालक-बालिकाओं ने अपेक्षाकृत कम उन्नति की है, उनमें दंत-रोग बहुत अधिक देखे गए हैं। प्रौढ़ मनुष्य अक्सर दाँतों के विष को अपने शरीर में फैलने देकर अपनी जीवनी-शक्ति और मानसिक शक्ति को नष्ट करते हैं। दाँतों का क्षय-रोग धीरे-धीरे दाँतों को नष्ट कर देता है, और पाइरिया-रोग मसूढ़ों के मांस को ग़ायब कर दिया करता है। दाँतों का क्षय-रोग शुरू की हालत में जान नहीं पड़ता। जब जान पड़ता है, तब दाँतों की बहुत कुछ हानि हो चुकती है। दाँतों के ऊपर का आवरण अगर दूध के रंग की सफ़ेदी लिए देख पड़े, तो जान लेना चाहिए, दाँतों का क्षय-रोग शुरू हो गया। इसी तरह दाँतों में गढ़ा गहरा होने की पहचान यह है कि शक्कर, मिठाई,

नमक, फल, खटाई और जलन पैदा करनेवाली कोई चीज़ खाने से दर्द पैदा हो जाता है। जो दाँतों को साफ़ नहीं रखता, उसका दाँतों का डॉक्टर को दिखाना अथवा उसकी राय लेना बिलकुल बेकार है। मसूढ़ों में जब थोड़ा-थोड़ा दर्द हो, मसूढ़े लाल पड़ जायँ, या दबाने से नरम जान पड़ें, तो फ़ौरन् दाँत के डॉक्टर के पास जाना चाहिए। ऐसे समय डॉक्टर की राय लेकर दाँतों की सफ़ाई कर डालना ही श्रेयस्कर है। बहुत लोगों के दाँत माँजने या साफ़ करने के समय दाँतों से खून निकलता है। खून गिरने से बहुत लोग डरते हैं; किंतु डरने की कोई बात नहीं है। विशेषज्ञ डॉक्टर की यह राय है कि खून गिरने से पाइरिया-रोग का विष धो जाता है। अच्छी तरह दाँत साफ़ करके और उनके भीतर के जीवाणुओं को नष्ट करके मुँह धोने से दाँतों का क्षय-रोग नष्ट होता है, और पाइरिया-रोग के आक्रमण की आशंका बहुत कम रह जाती है। उँगली या ब्रुश से दाँत माँजने से केवल दाँत ही नहीं साफ़ होते, किंतु मसूढ़ों में खून का दौरा भी बढ़ जाता है। मगर दो दाँतों के बीच का हिस्सा उँगली या ब्रुश से साफ़ नहीं किया जा सकता। वह स्थान रेशम के धागे से घिसकर साफ़ करना चाहिए। दाँतों में जो जूठन भर जाती है, उसे अच्छी तरह बिलकुल साफ़ कर डालना उचित है। जो लोग ब्रुश से काम लेते हैं, उन्हें दो ब्रुश रखने चाहिए। एक दिन एक से काम लेकर उसे धूप में रख देना चाहिए, और दूसरे दिन दूसरे ब्रुश से काम लेना चाहिए। ब्रुश का प्रयोग करनेवालों को उचित है कि दाहनी व बाईं ओर दाँतों को दबाकर ऊपर-नीचे ब्रुश चलाकर सफ़ाई करें; केवल सामने और पीछे के ओर गोलाकार ब्रुश घुमाकर साफ़ करें। इस तरह खूब सफ़ाई होती है। दाँतों के बाहर ही नहीं, भीतर और तालू में भी ब्रुश से घिसना चाहिए। बहुत देर तक ब्रुश चलाकर घिसने से खूब सफ़ाई और खून की चाल तेज़ होती है। दाँतों के जिस अंश से खाने की चीज़ चबाई जाती है, वहाँ अच्छी तरह माँजना चाहिए। वहीं अक्सर अधिक जूठन जम जाती है। दिन-भर में चार दफ़े दाँत सफ़ा करने की ज़रूरत है। सबेरे उठकर और दो बार भोजन करने के उपरांत तथा चौथी बार सोते समय दाँतों की सफ़ाई आवश्यक होती है। सोते समय जूठन लगी रहने से वह सड़कर दाँतों की बड़ी हानि करती है। प्रत्येक बार कम-से-कम दो मिनट तक दाँत माँजने चाहिए। हमारी राय में ब्रुश की अपेक्षा देसी ढंग से नरम दतून की कूची से दाँत सफ़ा करना बहुत अच्छा है। दाँतों की सफ़ाई को मामूली बात समझकर उसकी उपेक्षा करने से पीछे पछताना पड़ता है।

× × ×

२१. जानने-योग्य बातें

१—स्पेन के अंतर्गत वालाडालिड नाम के स्थान में लोरेंजा नाम की एक स्त्री है, जिसके ६८ वर्ष की अवस्था में एक पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह पुत्र उसकी उन्नीसवीं संतान है। मज़ा यह कि इसके लड़की एक भी नहीं पैदा हुई! विशेषज्ञ लोगों का कहना है कि स्त्रियों के साधारणतः ५० वर्ष की अवस्था के उपरांत लड़का-बाला नहीं होता। ३,००० स्त्रियों में कहीं एक स्त्री के ५० वर्ष की अवस्था के बाद बचा होता है। इसके अतिरिक्त एक मर्द का हाल भी सुनिए। आयर्लैंड के टामस बी० आटी नाम के एक व्यक्ति के १०२ वर्ष की अवस्था में एक पुत्र पैदा हुआ है। उस समय इसकी स्त्री की अवस्था कितनी थी, यह नहीं मालूम हुआ।

२—जेनेवा-शहर के निकटवर्ती सेलेवा-पर्वत के ऊपर हाल में एक नया मान-मंदिर बन रहा है। इसका बनना गत २९ जुलाई से शुरू हुआ है। इसके बनने में कुल मिलाकर १२ लाख ५० हज़ार पाउंड ख़र्च होने का तख़-मीना लगाया गया है। मिस्टर दीना नाम के एक हिंदू और उनकी अमेरिकन स्त्री मेरी वालेस ने यह मान-मंदिर बनवाकर फ़्रेंच-सरकार को उपहार में देने का विचार कर रक्खा है। इस मान-मंदिर में एक १०५ इंच के घेरे की दूरबीन रहेगी। पृथ्वी-भर पर और कहीं इतनी बड़ी दूरबीन नहीं है। इसके सिवा और भी अनेक छोटी-मोटी दूरबीनें आर मशीनें वहाँ रक्खी रहेंगी। मान-मंदिर जिस जगह पर बनेगा, वह ४,५०० फ़ीट ऊँची है। मिस्टर दीना एक बड़े भारी इंजीनियर हैं, और अपनी ही देख-रेख में इस इमारत को बनवा रहे हैं।

३—मिस्टर फ़्रांक आलड्रिव ने एशियाटिक रिव्यू में एक लेख लिखकर यह सूचित किया है कि एक प्रकार के तेल का इंजेक्शन करके कुष्ठ-रोग में अद्भुत सफलता पाई गई है। उन्हें जान पड़ता है कि इस ओषधि के

द्वारा शीघ्र ही पृथ्वी पर से इस दारुण व्याधि का नामो-निशान मिटा दिया जा सकेगा। छः से लेकर नव महीने तक चिकित्सा करने पर देखा जाता है कि रोगी के शरीर से इस व्याधि के सब लक्षण दूर हो गए। शिशु और युवक रोगियों की चिकित्सा अगर आरंभिक अवस्था में इस विधि से की जाय, तो शायद वह कभी निष्फल ही नहीं होती। फ़िलिपाइन द्वीप-पुंज, हवाई-द्वीप, जापान, कोरिया, स्याम आदि देशों में हज़ारों कोढ़ी इस चिकित्सा से आराम हो चुके हैं।

४—बर्लिन से यह ख़बर आई है कि प्रुशिया के अर्थ-सचिव ने अपने साथियों का सलाह लेकर क्षति-पूर्ति के तौर पर भूतपूर्व कैसर को इतना धन और संपत्ति देना स्वीकार किया है—नक़द ३ करोड़ मार्क, खेती के लायक़ १ लाख ८० हज़ार एकड़ भूमि, ३ राजमहल और बर्लिन में स्थित कैसर के कईएक घर। प्रुशिया की गवर्नमेंट ने कैसर की निम्न-लिखित संपत्ति ले ली है—सब राजदुर्ग, बर्लिन का अजायबघर, सेकगैलरी की सब शिल्प-कला की सामग्री, म्यूनिच के सब राजकीय मणि-मुक्ता-रत्न आदि, होहेनजालर्न का अजायबघर और पुस्तकालय, राजकीय थिएटर और उसमें शामिल ७२ हज़ार एकड़ भूमि तथा जंगलात, बर्लिन के कई राजभवन और राजा की ज़मींदारी का स्वत्व। पूर्वोक्त संपत्ति कैसर के दावा करने पर देना तय पाया है।

५—चाँदी के बर्तन वग़ैरह कुछ दिनों के लिये उठाकर बक्स वग़ैरह में रख दीजिए, और फिर कभी निकालिए, तो वे बदरंग हो जाते हैं। अगर उस बक्स में बर्तनों के बीच कपूर के कुछ टुकड़े रख दीजिए, तो उनकी चमक नष्ट नहीं होती। ऊनी वस्त्रों की तह में कपूर रख देने से उनमें कीड़े सहज में नहीं लगते। क्रोधी और चंचल प्रकृति के लोगों को कपूर का सेवन कराने से उनकी प्रकृति शांत रहती है।

६—अन्य देशों के मुक़ाबले हिंदुस्तान में शिक्षितों की संख्या कितनी कम है, यह नीचे दिखाया जाता है—

देश	सन् १८६१	१६०१	१६११	१६२१
	शिक्षितों की संख्या	प्रतिशत		
हॉलैंड	८१	८६	६४·५	१००
नार्वे	८२	८७	६५	१००
जर्मनी	८३	८८	६६	१००
फ़्रांस	८४	८८	६२	६४
अमेरिका	८५	८६	६६	६५·४
इँगलैंड	८१	८६	६७	६३·५
जापान	६५	८०	६५	६७·८
फ़िलीपाइन	२६	४७	५८	७०·५
ब्रिटिश भारत	३	३·८	४·५	५·२
ट्रावनकोर		११	१६	२८·२
बरोदा	४.२	६·६	१३	२१·५
निज़ाम		५·५	६·७	१५·७

७—आसाम में ईसाइयों और मुसलमानों की धार्मिक लूट ज़ोरों से जारी है। देखिए, सन् १६११ में वहाँ ४३ लाख ६२ हज़ार ५७१ हिंदू थे; पर सन् १६२१ में घटकर २५ लाख ४१ हज़ार २६७ ही रह गए! इस समय आसाम में १, ५६, ११६ ब्राह्मण, २,६८,५८२ राजवंशी, ८२,१८६ नमःशूद्र, १,६०,३०८ पाटनी, ४५,६६४ जोगी,१,५६,४०८ शूद्र, १,६२,५७० मेघ, ६७,०६६ गोरा, ११,४०३ कातीरा, १,४६,१६० खेवट, ६३,६२६ अहोम, २,००,४६० काछी, ६३,२८२ कछरी, १,२६,६२७ कोच, २,२३०,३१ मिकिर, १,०६,७५३ नागा, २,१५, १६३ चुटिया ८८,४२२ नडियल, १४,३२५ खसी, १,१५, ६४० लुशाई, २४,६३४ जैन-सिख आदि।

८—अमेरिका में सभ्यता और धन की बढ़ती के साथ-साथ आत्महत्या का रवाज भी बढ़ता जा रहा है। गत वर्ष केवल न्यूयार्क में ही १,२०,००० आत्महत्याएँ हुईं। इनमें ८६ करोड़-पती, ४६ धनी औरतें, ८८ महाजन, ३८ विद्यार्थी, ५० शिक्षक, १६ धर्मप्रचारक, ५२ वकील और विचारक, और १०० सौदागर थे। इन मनुष्यों में स्त्रियों की संख्या ४०,००० थी। इन आत्महत्या करनेवालों में सबसे बड़े की आयु १०० वर्ष की और सबसे छोटे की ५ वर्ष की थी! एक मनुष्य ऐसा था, जो १० दफ़े आत्महत्या की चेष्टा कर चुका था। ये आत्महत्याएँ ऐसे साधारण कारणों से होती हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। एक लड़की के बाल कुछ बेडौल थे, बस, उसने आत्महत्या कर ली! एक स्त्री को गल्फ़ नाम का खेल खेलने को नहीं मिला, इसलिये उसने दो बार गाड़ी से कूदकर जान दे देनी चाही।

६—सीमा-प्रांत के डेराइस्माइलख़ाँ, बन्नू, कोहाट और पेशावर में सरहद्दियों के छापा मारने, लूट-मार करने और आदमियों को उठाकर ले जाने की वारदातें अक्सर सुनाई

पड़ा करती हैं । इसका एक लेखा सरकार ने प्रकाशित किया है । उसके अनुसार सन् १९२४-२५ में कुल ५४ वारदातें ऐसी हुईं । इतनी वारदातों की रिपोर्ट हुई । हुईं तो शायद इससे अधिक ही होंगी । सन् १९१९ में २१लाख से अधिक की रक़म लुटी थी । इस साल १५,५५७) का माल ही लुटेरे ले गए । इस साल कुल २३ आदमी ही लुटेरों के हाथों मारे गए । सन् १९२१-२२ में ८० मरे थे, और उसके पहले साल १९२ । इस साल २७ आदमी घायल हुए । पहले साल घायलों की संख्या १५७ थी । सन् १९१९-२० में ४६३ आदमियों को डाकू उठा ले गए थे । गत वर्ष केवल ३० अभागों की ही यह गति हुई ।

१०—भारत की खानों के चीफ़ इंस्पेक्टर की रिपोर्ट के अनुसार सन् १९२४ में २,५८,२१७ मनुष्य खानों में काम करते थे, जिनमें १,६७,७१९ भीतर रहते थे, और ९०,४९८ बाहर । इनमें मर्द १,६४,४०२ थे, और स्त्रियों की संख्या २७,४३४ थी । कोयला खानों से २,०२,५६,००० टन निकला । कोयले की खानों में १,८७,०८८ आदमी काम करते थे । कोयले की खानों के नीचे काम करनेवाली औरतों की संख्या अब ३५,००० हो गई है । कोयला काटने की मशीन का प्रयोग भी दिनोदिन बढ़ता जाता है । इस साल लोहे की खुदाई में ४८ फ़ी सदी, माइका में २८ फ़ी सदी और मेगानीज़ की निकासी में २२ फ़ी सदी बढ़ती हुई है । सन् १९२४ में खानों में २३३ दुर्घटनाएँ हुईं । २८१ जानों पर बीती । ३७ स्त्रियाँ भी इनमें थीं । १८९ दुर्घटनाएँ केवल कोयले की खानों में हुईं ।

× × ×

२२. दानवी लीला का प्रतिवाद

भाद्र-मास की माधुरी के विविध विषय में दानवी लीला-नामक एक नोट लिखा गया था । नोट में जिस घटना की सूचना थी, वह अँगरेज़ी के भी बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पत्रों में छपी थी, और हिंदी के तो प्रायः सभी समाचार-पत्रों ने उसे प्रकाशित किया था । माधुरी के उस नोट को पढ़कर खाम-गाँव, बरार के रहनेवाले श्रीयुत विहारीलाल-रामगोपालजी राठी ने श्रीवार्की को पत्र भेजकर घटना की सत्यता के संबंध में पूछ-ताछ की । वार्की महादय ने राठीजी को पत्र के उत्तर में लिख भेजा कि समाचार बिलकुल झूठ और बेबुनियाद है । एक विद्यार्थी ने क़िस्सा गढ़कर द्वेष-भाव से वार्कीजी को बदनाम करने के लिये छपवा दिया था । वार्कीजी ने राठीजी को यह भी लिखा है कि माधुरी-संपादक को मेरा पत्र दिखला दो, और उनसे कहो कि घटना के असत्य होने का समाचार माधुरी में प्रकाशित कर दें । राठीजी ने वार्कीजी के उक्त पत्र की नक़ल और अपना पत्र हमारे पास भेजा है । तदनुसार इस नोट द्वारा हम दानवी लीला के असत्य होने की सूचना सहर्ष प्रकाशित करते हैं । हम जानना चाहते हैं कि क्या वार्कीजी को इस घटना के गढ़नेवाले विद्यार्थी का पूरा पता लग गया है, और अगर लग गया है, तो उन्होंने उसको दंड दिलाने का क्या प्रबंध किया ? ऐसे उद्दंड विद्यार्थी को दंड दिलाने की अवश्य व्यवस्था होनी चाहिए ।

× × ×

२३. कानपूर में एक ही अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन

इधर अर्से से कानपूर का साहित्यिक वातावरण गंदा हो रहा था । कवियों की दो पार्टियाँ बन गई थीं, और दोनों में मनोमालिन्य और स्पर्द्धा के भाव इतने प्रबल हो उठे थे कि एक ही नगर में, एक ही समय, एक ही उद्देश से दो कवि-सम्मेलन—और दोनों ही अखिल-भारतवर्षीय—होने का आयोजन किया जा रहा था । हमारे मित्र और परिचित दोनों ही पार्टियों में सम्मिलित थे । हम नहीं चाहते थे कि यह धड़ेबंदी की गंदी पाबंदी काव्य-क्षेत्र में अपना स्थायी स्थान बना ले । साहित्य-परिषद् के मनोनीत सभापति बाबू जगन्नाथदासजी बी० ए० "रत्नाकर" को इससे बड़ा खेद था, और उन्होंने यहाँ तक कह दिया था कि अगर दोनों दल मिलकर एक ही सम्मेलन नहीं करते, तो मैं सभापति का पद कभी नहीं स्वीकार करूँगा । अस्तु, रत्नाकरजी के साथ पं० दुलारेलाल भार्गव ने कानपूर जाकर दोनों पार्टियों के मुखियों को जमा किया, और मेल कराने की चेष्टा की । हर्ष की बात है, भार्गवजी और रत्नाकरजी को अपने उद्योग में पूर्ण सफलता मिली । दोनों दलों के ज़िम्मेदार व्यक्तियों ने परस्पर मिल जाने की प्रतिज्ञा काग़ज़ पर लिखकर उस पर हस्ताक्षर भी कर दिए हैं । हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि यह मेल सदैव स्थायी रहे, और दोनों पार्टियों के कवि-गण मिल-जुलकर इस क्षेत्र में स्मरणीय, आदरणीय कार्य

कर दिखावें। आशा है, अब यह कानपूर का कवि-सम्मेलन अभूतपूर्व सफलता से संपन्न होगा। तथास्तु। इस सम्मेलन में भारत की भिन्न भिन्न भाषाओं के सभी प्रसिद्ध कवियों को निमंत्रण दिया गया है, और कांग्रेस का समय होने के कारण अधिकांश के उपस्थित होने की भी पूरी आशा है। कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर को सभापति-पद स्वीकार करने के लिये लिखा गया था। परंतु अस्वस्थता के कारण आपने उक्त पद स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट की है। साथ ही सफलता का आशीर्वाद और सहानुभूति का संदेश भेज दिया है। कवियों को इस कवि-सम्मेलन के उत्सव में यथेष्ट संख्या में उपस्थित होकर प्रत्येक प्रांत के सहृदय कवियों के दर्शन और परिचय का सौभाग्य अवश्य प्राप्त करना चाहिए। ऐसे अवसर सर्वदा नहीं प्राप्त होते रहते।

× × ×

२४. पं० राधाचरणजी गोस्वामी का गोलोक-वास

हिंदी-जगत् में यह समाचार बड़े दुःख के साथ सुना जायगा कि भारतेंदु के समकालीन और अस्तंगत भारतेंदु मासिक पत्र के संपादक, षोड़श हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष, वयोवृद्ध पं० राधाचरणजी गोस्वामी अब इस संसार में नहीं रहे। अभी वृंदावन के सम्मेलन में जिन लोगों ने आपके दर्शन किए थे, आपके युवकोचित परिश्रम और उत्साह को जिन्होंने देखा था, उन्होंने स्वप्न में भी यह न सोचा होगा कि आप इतनी जल्दी हिंदी-संसार को सूना करके सुरधाम की यात्रा कर देंगे। गोस्वामीजी की मृत्यु गत १३ दिसंबर, रविवार को हुई।

आप बड़े ही मिलनसार, विद्याव्यसनी, निरभिमान, सरल और सज्जन थे। यद्यपि इधर आप अनेक आपत्तियों से हतोत्साह होकर लेखनी को विश्राम दे चुके थे, तथापि समय-समय पर अब भी कुछ-न-कुछ लिख ही डालते थे। अपनी युवावस्था में तो आपने हिंदी की यथेष्ट सेवा की थी। आपकी कृपा माधुरी पर शुरू से ही रही, और आप हमें केवल शाब्दिक उत्साह ही नहीं देते रहे, बल्कि समय समय पर छोटे-मोटे नोट आदि लिखकर भेजने की कृपा भी करते रहे। वृंदावन के साहित्य-सम्मेलन की सफलता

स्वर्गीय पं० राधाचरणजी गोस्वामी

का श्रेय बहुत कुछ आप ही को प्राप्त हुआ। आप वृद्ध होकर भी युवकों का-सा उत्साह रखते थे। आपका पद्यबद्ध अभिभाषण ही आपकी अंतिम रचना है।

खेद है कि हिंदी-जगत् ने पं० बालकृष्णजी भट्ट की तरह आपको भी साहित्य-सम्मेलन का सभापति बनाने में देर करके अपनी असावधानता का परिचय दिया। आपका उत्तराधिकारी ११ वर्ष का एक पौत्र है। ईश्वर उसे अपने पितामह के पदांक का अनुसरण करने की शक्ति देकर चिरजीवी करें। हमें गोस्वामीजी की इस अप्रत्याशित मृत्यु का हार्दिक दुःख है। हम गोस्वामीजी के शोक-तप्त परिवार के प्रति समवेदना प्रकट करते हुए गोस्वामीजी की आत्मा की शांति के लिये गोलोकविहारी कृष्णचंद्र के चरणों में प्रार्थना करते हैं।

माधुरी

विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र

मासिक पत्रिका

वर्ष ४, खंड १

श्रावण-पौष, ३०२ तुलसी-संवत् (१९८२ वि०)

जुलाई-दिसंबर, १९२५ ई०

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

प्रकाशक

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

वार्षिक मूल्य ७॥)] [छमाही मूल्य ४)

लेख-सूची

१—पद्य

२—गद्य

चित्र-सूची

क—रंगीन

ख—व्यंग्य

ग — सादे

इँगलैंड में आश्चर्यकारी आविष्कार

बिजली के द्वारा रोग निवारण

बिजली लँगड़े को चला सकती है—बहरे को सुना सकती है—अंधा देख सकता है—बिजली क्या नहीं कर सकती है ! और ऐसे हज़ारों काम कर सकती है, जो १९वीं शताब्दी में असंभव माने जाते थे ।

रोगों की दवा और फैलनेवाली बीमारियों से रक्षा का निवारण

गालवैनिक रिंग—Galvanic Ring

दोबारा ज़रूरत न पड़ेगी, दोबारा बिजली चार्ज कराने की भी ज़रूरत नहीं ।

... ...

जब तक उपकरण रहेगी, शक्ति पूरी रहेगी ।
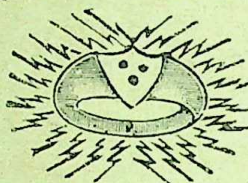
जवान, बूढ़े और बच्चे सभी व्यवहार में ला सकते हैं ।

... ...

बाएँ हाथ की किसी अँगुली में पहनी जा सकती है ।

[१५ दिन में फल न हो तो वापस ली जायगी]

लगभग ४६,७५,६०० गालवैनिक रिंग इँगलैंड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी आदि सभ्य देशों में व्यवहार में हैं ।

लंडन गालवैनिक रिंग कंपनी इस बात की सूचना देती है कि उनकी गालवैनिक रिंग की परीक्षा स्वर्गीय महारानी विक्टोरिया, क्वीन मांड ऑफ़ नारवे, ड्यूक ऑफ़ हामिल्टन, लॉर्ड डिग्बी, लॉर्ड रॉथ काउंसिल इत्यादि बड़े-बड़े महापुरुषों ने की है ।

हमारी गालवैनिक रिंग भिन्न-भिन्न धातुओं के मिश्रण से बनाई गई है और उसके बाद उसके प्रो० गालिवनी के नियमानुसार उसमें बिजली चार्ज की गई है । शौक़ीन पुरुषों और स्त्रियों की इच्छानुसार उस पर सुंदर पॉलिश भी की गई है ।

रिंग कैसे काम करती है ?—जिस समय रिंग पहनी जाती है, उसकी बैटरी में अँगुली लगते ही बिजली की एक सरल धारा उत्पन्न हो जाती है जो कि बदन के रक्त, नसों और पट्ठों को बिजली की शक्ति से भर देती है । बीमारी के कीड़ों को नाश कर देती है और कमज़ोर और सुस्त शरीर को नई शक्ति से भर देती है !

विशेष प्रयोग—गालवैनिक रिंग बिजली एक उत्कृष्ट परिष्कारक है । कोई मनुष्य या बच्चा जब तक इस आश्चर्यकारी बिजली की रिंग पहने रहता है तब तक हर प्रकार की बीमारी और लगधगे के रोगों से जैसे—मलेरिया, चेचक, प्लेग, इंफ्लूएंज़ा और श्वेतकुष्ठ या दमा इत्यादि भयंकर रोगों से बचा रहता है । इससे प्रत्येक युवक, वृद्ध और बालक को इसे लगातार व्यवहार करना चाहिए ।

आनंद का एक महान् स्रोत—विवाहित नवयुवकों और वृद्ध पुरुषों को चाहे वे स्वस्थ हों या कमज़ोर, इसकी बिजली स्तंभन-शक्ति प्रदान करेगी ।

Dr. Griffiths, P. H. D. डॉ० ग्रिफ़िथ पी० एच्० डी० वर्तमान समय के सबसे बड़े बिजली के चिकित्सक कहते हैं कि रिंग की परीक्षा हर प्रकार कर ली गई है और इसका परिणाम आशायुक्त गुणकारी है जिससे इसका आविष्कार एक बुद्धिमत्तायुक्त और सच्चा है । इस रिंग से नसों की कमज़ोरी, सिर-दर्द, बदहज़मी, अरुचि, फैलनेवाली बीमारियाँ, डायबिटीज़, गठियाबाई, बदगठियाबाई, दर्द, बदज़ायक़ापन, पानी उतरना, चर्म-रोग, श्वास-रोग, तपेदिक़ इत्यादि और प्रत्येक तरह के कठिन-से-कठिन विषाक्त रोग इससे अच्छे हो जाते हैं । (लंडन गालवैनिक कंपनी की रिपोर्ट से उद्धृत)

सावधानता—जिस रिंग का उपयोग किसी आदमी ने एक घराने में अधिक देर तक किया हो, उसे किसी दूसरे आदमी को न पहनाना चाहिए ।

शर्त—अगर कम-से-कम १५ दिन के व्यवहार से लाभ होता न मालूम हो, तो रिंग को मिलने के १५ दिन के अंदर सूचना दो । हम रिंग वापस लेकर रुपया वापस कर देंगे ।

दाम—१ रिंग का १॥=), ३ का ३॥≋), ६ का ५=), १२ का ८=), २४ का १२॥=), ३६ का १६॥≋); डाक-ख़र्च माफ़ । वी० पी० केवल हिंदुस्थान, बर्मा और सिलोन को ही भेजी जायँगी । अन्य देशों के लिये पोस्टल ऑर्डर के अनुसार मूल्य पेशगी भेजना चाहिए । अँगूठी के साथ व्यावहारिक नियम छपे हुए भेजे जाते हैं ।

हज़ारों प्रशंसापत्र मौजूद हैं । नक़्क़ालों से सावधान !

सच्ची बिजली की रिंग शीघ्र इस पते से मिलेगी (पत्र-व्यवहार अँगरेज़ी या हिंदी में)।

P. Datta & Co., (Deptt. 56. D.)
Watch Merchants and Jewellers,
Bagh Bazar, Calcutta.

पी० दत्त एंड कंपनी (Dept. 56. D.)
वाच मर्चेंट्स और जेवलर्स,
बागबाज़ार, कलकत्ता ।

एंटीरैट

चूहे भगाने की शर्तिया दवा है।

डॉ० एस्० एल्० सिविल सर्जन मुरादाबाद—"दरहक़ीक़त आपके एंटीरैट से डरकर चूहे भाग जाते हैं। कोई चूहा नहीं मरा।" साहब चेयरमैन बहादुर, म्युनिसिपलबोर्ड हरदोई—"मैंने एंटीरैट चूहों के भगा देने में मुफ़ीद पाया। कोई मरा हुआ चूहा नहीं पाया गया।"

दाम फ़ी डिब्बी ॥।), डाक-व्यय आदि ॥), तीन डिब्बी तक ॥-)
६२७

पता—नेशनल मेडिकल हाल, फ़र्रुख़ाबाद।

ख़राब हारमोनियम ख़रीदकर अपना पैसा ख़राब न कीजिए। यदि शौक़ है, तो

मोहिनी फ़्लूट ख़रीदिए।
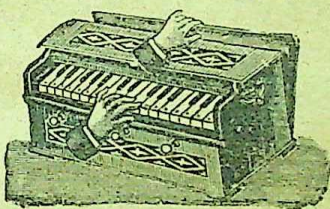
अत्यंत प्रसिद्ध होने के कारण इसकी बाबत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। केवल यही एक हारमोनियम है, जो हिंदुस्थानी गानों और ऋतु के अनुकूल है। स्वर मीठा, बनावट मज़बूत और देखने में मनोहर है। सिंगल रीडवाले का मूल्य २५), ३०) और ३५), डबल रीडवाले का ४०), ४५) और ५०) है। **सितार, इसराज और तबले भी हमारे यहाँ सस्ते और बढ़िया बनाए जाते हैं। सूचीपत्र मुफ़्त।** ५) ऑर्डर के साथ पेशगी भेजिए और समीप के रेलवे-स्टेशन का पता लिखिए। सिर्फ़ नीचे-लिखे पते पर मँगाइए—नक़ली से सावधान। २२३

पता—Mohini Flute Co.,
9-2 (M), Arpuli Lane, Calcutta.

ग्यारह वर्ष के पश्चात् संतानोत्पत्ति।

यदि आपके घर में संतान उत्पन्न न होती हो, तो आप निराश न हों। हमारे पास अपना तथा अपनी पत्नी का वृत्तांत लिखकर भेज दें। प्रायः इसका कारण स्त्रियों का कोई रोग-विशेष होता है। हमारे यहाँ स्त्री-पुरुषों के विशेष रोगों की चिकित्सा ख़ास तौर पर की जाती है।

लाला केवलराम पत्तूलाल जाडया थाना तिकोना फ़र्रुख़ाबाद से लिखते हैं—"मैं बड़ी ख़ुशी से आपको इत्तला देता हूँ कि आपकी कृपा से मेरे घर में पुत्र उत्पन्न हुआ है। मैं ११ वर्ष तक कई अँगरेज़ी डॉक्टरों और मेमों का इलाज करा चुका था एलाट्रियस कारडियल की अनेक शीशियाँ पिलाईं, पर आपकी दवाई वंग-चतुर्थक और अवरोधनाशक वटी से लाभ हुआ। हम इसकी जितनी प्रशंसा करें थोड़ा है।"

वंग-चतुर्थक

श्वेत प्रदरनाशक, शक्तिप्रदायक, संतानोत्पादक। मूल्य ३० मात्रा २।≡) डाक-व्यय सहित।

अवरोधनाशक वटी

मासिक रुधिर के न्यून आने तथा दर्द के साथ आने में प्रयोग की जाती है। मूल्य ३२ मात्रा १।≡) डाक-व्यय सहित।

नोट—१६ वर्ष की परीक्षित हैं। अन्य प्रशंसा-पत्र देखने हों, तो सूचीपत्र मँगाकर देखें।

पथप्रदर्शक (वैद्यभूषण) आयुर्वेद-विज्ञान का अपूर्व मासिक पत्र। मूल्य केवल १) वार्षिक वी० पी० से १।) नमूना विना मूल्य।

पता—
वैद्यराज धर्मदेव कविभूषण वैद्यरत्न, मालिक आयुर्वैदिक राजेंद्र औषधालय, लाहौर।
६८३
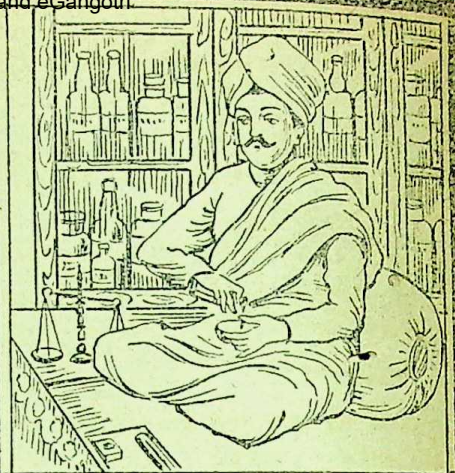
डी० कुमार एण्ड को०
TRADE MARK
D.K.
इटावा की
बढ़ियां, सस्तीं दवाइयां।
कलेण्डर मुफ़ मंगाओ
ताकत की गोलीं
की० १)
महिलामृत स्त्रीरोग
की दवा
की० १॥)
बालमित्र
की० ॥)
नमक सुलेमानी
हाजमे की अक्सीरदवा
की० ॥)
केश तैल
की० १)
दंत मंजन
की० ॥)
दाद की दवा
की० ॥)
सालसा
की० २)
सौंदर्य प्रभा
की० ॥)
नारायन तैल
गठिया की दवा
की० १)
सुजाक की दवा
की० १)
शिर दर्द की दवा
की० ॥)
अर्क कपूर
हैजे की दवा
की० ॥)
खांसी की गोली
की० ॥)
ज्वर की दवा
की० ॥)
काला खिजाब
की० १)

वंगसेन-संहिता अर्थात् अगस्त्य-संहिता

वैद्याचार्य श्रीवंगसेन-विरचित और वैद्यराज पं० जीयारामजी शास्त्री-कृत भाषा-टीका-सहित। इसमें ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, बवासीर, अजीर्ण, कृमि, पांडु-रोग, रक्त-पित्त, राजयक्ष्मा, क्षत-क्षय, कास, हिक्का, श्वास, स्वर-भेद, अरोचक, छर्दि, तृष्णा, मूर्च्छा, मदात्यय, दाह, उन्माद, अपस्मार, वात-व्याधि, वात-रक्त, ऊरु-स्तंभ, आम-वात, शूल, परिणाम-शूल, उदावर्त, आनाह, गुल्म, हृद्रोग, उरोग्रह, मूत्र-कृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, प्रमेह, मेदक, उदर-रोग, शोथ, अंत्र-वृद्धि, बध्म, गल-गंड, गंड-माला, ग्रंथि, अर्बुद, श्लीपद, विद्रधि, व्रण-रोग, आगंतुक-व्रण, भग्न, नाड़ी-व्रण, भगंदर, उपदंश, शूक-दोष, कुष्ठ, उदर्द, अम्ल-पित्त, विसर्प, विस्फोटक, स्नायुमसूरिका, क्षुद्र-रोग, मुख-रोग, कर्ण-रोग, नासा-रोग, नेत्र-रोग, शिरोरोग, स्त्री-रोग, बाल-रोग, विष-रोग, जल-दोषादि-योग, रसायन, वाजीकरण, स्नेह-पान, स्वेद, वमन, विरेचन, बस्ति-कर्म, धूम-पान, कवल, नस्य, स्वस्थ-वृत्त, द्रव्य-गुण, द्रव्य-गण-पाठ, वर्ग, ऋतु-चर्या, धान्य-वर्ग, मांस और फल-वर्ग, व्यंजन और मत्स्य-गुण, द्रव-द्रव्य, अरिष्ट और दीपन-पाचन-द्रव्य-लक्षण इन पंचानबे अध्यायों द्वारा रोगों का निदान, लक्षण और एक-एक रोग की अनेक अचूक ओषधियाँ वर्णित हैं। अतएव केवल इसी एक ही ग्रंथ के अनुशीलन से मनुष्य पूरा वैद्य हो सकता है। उत्तम काग़ज़, सुंदर मोटे अक्षरों में विशुद्ध छपी हुई, बड़ी साँची के १००२ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल ६)

नयनानंद-बोधिनी

वैद्य-विद्या-विशारद पं० कालीचरणजी-कृत मूल और भाषा-टीका-सहित। इसमें चरक, सुश्रुत, वाग्भट, वैद्य-रत्नाकर, वैद्य-रहस्य, वैद्य-मनोत्सव, वैद्य-कल्पद्रुम, भैषज्य-रत्नावली, शार्ङ्गधर आदि वैद्यक-ग्रंथों तथा अनेक डॉक्टरी और यूनानी-ग्रंथों को मथकर नेत्र के समस्त रोगों की उत्पत्ति, लक्षण और उपाय तथा सैकड़ों आज़माए हुए अचूक नुस्खे दिए गए हैं। अतएव नेत्र-चिकित्सा करने-वाले वैद्यों, हकीमों और डॉक्टरों को इसकी एक प्रति अवश्य संग्रह कर लेनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या २२२ ; मूल्य ॥)

अर्क-प्रकाश

वेद-भाष्य-कर्ता श्रीरावणाचार्य-प्रणीत मूल और पं० देवीसहायजी-कृत भाषा-टीका-सहित। इसमें संपूर्ण ओषधियों के अर्क निकालने की विधि, सब धातुओं की मारण-शोधन-विधि और अनुपान के साथ समस्त रोगों पर इनका प्रयोग-विधान अति सुगम रीति से वर्णित है। पुस्तक वैद्यक के विद्यार्थियों, वैद्यों तथा शिक्षकों के बड़े काम की है। पृष्ठ-संख्या १७२ ; मूल्य ।=)

पाक-शास्त्र

श्रीक्षेमशर्माजी-कृत मूल और सिद्धांत-वागीश पं० माधव शास्त्री पुरोहित-कृत भाषा-टीका-सहित। इसमें खाने-पीने के सब प्रकार के अत्यंत स्वादिष्ठ भोजन बनाने की विधि वर्णित है। पृष्ठ-संख्या १२५; मूल्य १)

अन्यान्य पुस्तकों के लिये -) का टिकेट भेजकर बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए।

मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ।

रामानुरागियों के लिये अपूर्व ग्रंथ

राम-निवास-रामायण

[ठा० जानकीप्रसादजी-रचित]

इसमें ग्रंथकार ने गो० तुलसीदासजी की रामायण के सातों कांडों की कथाएँ—सात चरित्रों में विभक्त करके—दोहा, चौपाई, सोरठा, कुंडलिया, तोमर, त्रिभंगी, बरवा, कवित्त, चतुष्पद, चौबोला, चामर, नाराच, गीत आदि अनेक छंदों में और भैरव, सारंग, परज, काफ़ी, रामकली, जैजैवंती, बिहाग, बिलावल आदि अनेक राग-रागिनियों में अति मनोरम रीति से वर्णन की हैं। यह पुस्तक प्रत्येक रामानुरागियों एवं राम-भक्त संगीत-प्रेमियों के अवश्य देखने-योग्य है। काग़ज़ रेशमी; पृष्ठ-संख्या २०४; मूल्य १)

रामायण-रामाश्वमेध

(पद्यानुवाद)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजी ने लंका-विजय करने के बाद अयोध्या में जो अश्वमेध-यज्ञ किया था, उसका वर्णन इस पुस्तक में बड़ी रोचक रीति से दोहा-चौपाइयों में किया गया है। पुस्तक सभी के लिये उपयोगी है। इसकी कथा बड़ी ही वीर-रस-पूर्ण है तथा ग्रंथ के अंत में, ५४ पृष्ठों में, वर्ण-क्रमानुसार कठिन-शब्द-सूची लगाकर उनका अर्थ सरल हिंदी में लगा दिया गया है। पृष्ठ-संख्या १२८; मूल्य ॥=)

पौराणिक-इतिहास-सार

[स्वामी ब्रह्मानंदजी-संगृहीत]

इसमें ध्रुव, प्रह्लाद, जड़भरत, ऋभु और निदाघ, नारद, मांधाता, यम और यमकिंकर, कच और बृहस्पति, भरत, कागभुशुंडि, सतोव्रत और भरत के पुत्र आदि २२ महापुरुषों के इतिहासों का विस्तार-सहित वर्णन है। इसके पढ़ने से अनेक भगवद्भक्तों के चरित्र के ज्ञान के साथ-साथ मुक्ति के साधनों का भी परिज्ञान हो जाता है। पृष्ठ-संख्या ३१०; मूल्य १)

रामायण-रामानुरागावली

[अयोध्या-निवासी पं० जानकीवरशरणजी के शिष्य बाबा वैदेहीशरणजी-कृत]

इसमें उक्त बाबाजी ने रामानुरागियों के चित्त-विनोदार्थ ध्रुपद, बिहाग, चंचरीक, सोरठ, लावनी, ठुमरी, मलार, होली, बसंत, ग़ज़ल और ख़्याल आदि अनेक मनोरम रागों में भगवद्भक्ति-विषयक पद्यों का निर्माण किया है। अतएव भगवद्भक्तों को चाहिए, इसकी एक कॉपी मँगाकर अवश्य पढ़ें और आनंद-लाभ करें। पृष्ठ-संख्या १२०; मूल्य ।)

संक्षिप्त-रामाश्वमेध

[श्रीयुत कामताप्रसादजी स्कूल-मास्टर-कृत]

इसमें रामाश्वमेध के कथा-भाग का संकलन दोहा, त्रिभंगी, मत्तगयंद, कुंडलिया, हरिगीतिका, मनहर, सोरठा, ग़ज़ल, चौपाई, छप्पै, सखी, चौपैया, चंद्रायण, बरवा, दिक्पाल, सरसी, तोमर, सार, ताटंक और राधिका आदि के ४६८ पद्यों में किया गया है। पुस्तक रामानुरागियों के बड़े काम की है। पृष्ठ-संख्या ८०; मूल्य ≡)

सीताराम-विवाह-संग्रह

अर्थात्

श्रीसीताराम-विवाह-विषयक पद्यों का अपूर्व संग्रह

[जयपुर-निवासी रामप्रताप चित्रकार-संगृहीत]

इसमें केशव, तुलसी, सूर, रघुनाथदास, रीवाँ-नरेश विश्वनाथसिंह, रघुराजसिंह आदि सुप्रसिद्ध ३० कवियों द्वारा वर्णित श्रीसीतारामजी के विवाह-विषयक पद्यों का अपूर्व संग्रह किया गया है। पुस्तक प्रत्येक रामानुरागियों, कथा बाँचनेवाले पंडितों आदि के लिये विशेष उपयोगी है। पृष्ठ-संख्या ४८०; मूल्य १)

भक्ति-शिरोमणि

(सातों कांड)

[रामघाट, अयोध्या-निवासी बा० वैष्णवदासजी के शिष्य बाबू भगवंतसिंहजी-प्रणीत]

इसमें तुलसीदास-कृत रामायण के अनुसार दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित्त, सवैया, कुंडलिया, हरिगीतिका आदि सुललित छंदों में रामायण की समस्त कथाएँ सात कांडों द्वारा वर्णन की गई हैं। पुस्तक प्रत्येक रामानुरागियों के देखने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या ४४६; मूल्य ॥।)

अन्यान्य पुस्तकों के लिये डाक-व्यय के वास्ते -) का टिकट भेजकर बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए!

मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ।

मुहूर्त-गणपति

[दैवज्ञवर गणपति-विरचित मूल और ज्योतिर्विद् पं० सूर्यनारायणसिद्धांती-कृत भाषा-टीका-सहित]

इस ग्रंथ के अंत में ग्रंथकार ने लिखा है—"मैंने, ज्योतिर्विदाभरण, वसंतराज, ज्योतिर्निबंध, गणक-मंडन, रत्न-माला, मुहूर्त-तत्त्व-प्रदीप, मुहूर्त-मार्तंड, मुहूर्त-चिंता-मणि और मुहूर्त-कल्पद्रुम आदि ग्रंथों एवं सद्गुरु-कृपा-प्राप्त रहस्यों का सारभूत, अत्यंत सरल और भाव-पूर्ण यह 'मुहूर्त-गणपति'-नामक निबंध ज्योतिष-विद्यानुरागियों के चित्त-भवन में स्थान-प्राप्ति के निमित्त लिखा है।" भाषा-टीका तो इतनी सरल है कि साधारण ज्योतिषी भी मुहूर्तों का विचार बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। प्रत्येक ज्योतिषी के अवश्य संग्रह करने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या ४१२ ; मूल्य केवल ॥।≈)

अद्भुत-तरंगिणी मूल

[पकरिया, ज़िला सीतापुर-निवासी पं० बलभद्रजी मिश्र-संगृहीत अपूर्व ज्योतिष-ग्रंथ]

इसमें दिशा-विभाग द्वारा शृगाल आदि के शब्दों का शुभाशुभ फल और शांति ; दिशा, अयन, मास, राशि, नक्षत्र आदि का फल ; उल्का, बिजली और वज्र आदि का फल और शांति सप्रमाण और सविस्तार वर्णित है। अतएव यह ग्रंथ फलित-ज्योतिष के संस्कृतज्ञ विद्वानों के लिये अति उपयोगी है। पृष्ठ-संख्या २२४ ; मूल्य ॥)

बीज-गणित

[श्री ६ भास्कराचार्य-प्रणीत और जयपुर-राजकीय संस्कृत-पाठशालाध्यक्ष, गणित और ज्योतिःशास्त्र के प्रधानाध्यापक, महामहोपाध्याय पं० दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी-कृत विलासि-नामक संस्कृत-भाष्य और भाषा-भाष्य-समेत]

यह बीज-संज्ञक अव्यक्त गणित कलकत्ता, बनारस आदि युनिवर्सिटियों की ज्योतिष-मध्यमा और आचार्य-परीक्षा देनेवाले छात्रों, एवं पुरातत्त्व-खोजियों के लिये विशेष उपयोगी है, क्योंकि प्राचीन शिला-लेखों या ताम्र-पत्रों में कहीं-कहीं बीज-गणित के अनुसार शक-संवत् आदि का उल्लेख रहता है। आधुनिक गणितज्ञों की प्रवृत्ति पाश्चात्य गणित की ओर झुकती जाती है, यही देखकर टीकाकार महोदय ने इस ग्रंथ की टीका की है, जिसमें लोग प्राचीन गणित-शैली से लाभ उठावें। पृष्ठ-संख्या ४८० ; मूल्य २)

मुहूर्त-चिंता-मणि

[दैवज्ञवर अनंतदैवज्ञ-सुत, रामदैवज्ञ-कृत मूल और ज्योतिर्विद् पं० श्रीरामरत्न अवस्थी-कृत भाषा-टीका-सहित]

यह ग्रंथ त्रिस्कंधात्मक ज्योतिष-शास्त्र में मुहूर्त-मात्र-बोधक ग्रंथों का शिरोमणि है। टीका भी इतनी सरल है कि साधारण ज्योतिषी भी प्रत्येक मुहूर्तों का विचार अति सुगमता से कर सकते हैं। पुस्तक प्रत्येक ज्योतिषियों के बड़े काम की है। पृष्ठ-संख्या २५६ ; मूल्य ॥।-)

यही ग्रंथ प्रमिताक्षरा-नामक संस्कृत-टीका-सहित बादामी काग़ज़ पर भी छपा है। पृष्ठ ४३० ; मू० ॥=)

चलनकलन

[महामहोपाध्याय स्व० पं० सुधाकरजी द्विवेदी-लिखित]

गणित द्वारा एक प्रश्न-विशेष के उत्तर देने की विधि को "चलनकलन" और जिस ग्रंथ में उन विधियों का वर्णन हो, उसे भी "चलनकलन" कहते हैं। पाश्चात्य गणितज्ञों में न्यूटन और लेब्निज़ ने तथा देशीय ज्योतिर्विदों में भास्कराचार्य ने इस विषय में प्रकाश डाला है। द्विवेदीजी ने दोनों का आशय लेकर और बीच-बीच में बहुत-सी नई बातें लिखकर, एम्० ए० के विद्यार्थियों के उपकारार्थ, इस ग्रंथ को, हिंदी में लिखा है, जिसमें उन्हें ज्योतिष-शास्त्र के गहन विषयों का ज्ञान हो जाय। काग़ज़ और छपाई उत्तम ; पृष्ठ-संख्या ५०० ; मूल्य १।)

लग्न-चंद्रिका

भाषा-टीका-सहित। इसमें सरल रीति से जन्म की तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण का फल ; संवत्सर तथा उत्तरायण-दक्षिणायन का फल ; ऋतु और मास-फल ; संपूर्ण ग्रहों का फल ; भावाध्याय ; एकग्रह और द्विग्रह आदि योग ; राजयोग ; अरिष्टाध्याय ; चंद्र-निर्याण ; विंशोत्तरी आदि दशाएँ तथा जन्मपत्र का फल भली भाँति लिखा गया है। पुस्तक ज्योतिषियों के बड़े काम की है। पृष्ठ-संख्या १४८ ; मूल्य ।-)

अन्यान्य ग्रंथों के लिये डाक-व्यय के वास्ते -) का टिकट भेजकर बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए।

मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ

खेल, तमाशे, तिलिस्म, जादू पुस्तक ही से कीजिये

जगत् प्रसिद्ध सच्चा चमत्कारिक पुस्तक

इसको पढ़ कर आप सुगमता पूर्वक बड़े बड़े बाजीगरों के आश्चर्य में डालने वाले खेलों को तुरन्त समझ जांयगे और तत्काल स्वयं कर दिखावेंगे।

किसी और से सीखने की आवश्यकता न होगी।

जैसे मुखसे आग निकालना, आँखमें कटारी चढ़ाना, पेटमें या गलेमें या जीभमें छुरी मारना, डोरा तोड़कर नाकमें से साबित निकालना, कन्या या पुत्र बताना, अण्डा उड़ाना, रात्रिमें अक्षर दीखें, बोतलमें सेशब्द होना, बिना अग्नि ज्वार भूनना, चूहोंका पकड़ना, वायु पर चित्र बनाना, बिच्छूका विष दूर करना, अनेक प्रकारकी धातु भस्म करना, तत्काल पानी का दूध बिना देना, छल्ला गायब कर दूसरेके पाससे निकालना, घड़ीका चूरा कर दिखाना और फिर साबित कर देना, कटे हुए मुण्डसे बातें करवाना, बिना अग्नि के अग्नि पैदा करना, नोट, रूमाल, तास जलाकर फिर नया बना देना, तत्काल वृक्ष लगा देना, हाथपर आग जलाना कपड़े के अन्दरसे आग के भरे धधकते हुए कटोरे निकालना, घरमें भूतोंका दिखाना, तत्काल दही जमा देना, गुलाबके फूल की चिड़िया बना देना, मृतको सामने खड़ा कर दिखाना, लोहेको तांबा बनाना, लकड़ी की चिड़ियें उड़ाना इत्यादि खेलों (तमाशों) के अलावा बिजली बनाना, कांच पर, लोहे पर चित्रकारी करना, टीन पर कलई करना, मिश्रका नवीन खेल और फोटोग्राफी शिक्षा भी पूरी तरह लिखी गई है तथा तास के आश्चर्य में डालदेनेवाले खेल भी लिखे हैं। मूल्य डाँकव्ययसहित २)

वीरश्रेष्ठ जितेन्द्रिय पञ्जाब भूषण।

प्रातः स्मरणीय हिन्दू हितैषी

यशवन्तसिंह

यह उन्हीं महान् आत्माओं में से एक मारवाड़ाधिपति थे, जिन्होंने अपने हिन्दूधर्म के लिए, जातीय गौरव के लिए अपना सर्वस्व त्याग किया था, अनेकानेक कष्ट तथा दुःख सहकर भी अत्याचारी यवन बादशाह औरङ्गज़ेब से जब के वो भारतवर्ष से हिन्दू नाम तक को मिटा देने लिए के कटिबद्ध था, हिन्दू-धर्म तथा भारतीय वीर विदुषियों की रक्षा करी थी। उसका समस्त वृत्तान्त तथा प्रसिद्ध फतेहाबादका भीषण संग्राम, जिसके कारण ही बादशाह शाहजहाँ को अपने पुत्रका ही बन्दी (कैदी) बनना पड़ा था, दाराशिकोह को भारत के सिंहासन से च्युत होना पड़ा था यह सब वृतान्त भी इसीमें हैं। मूल्य ऐसे ग्रन्थका डांकव्यय सहित १॥) मात्र है।

—o—

तांत्रिकों का प्रसिद्ध प्यारा प्रयोग

उल्लूकल्प

भाषाटीका

इस पुस्तक में उल्लू (पक्षी) के नाना प्रकार के प्रयोग लिखे हैं, जिसके करने से अनेकानेक प्रकार के आश्चर्य जनक कार्य हो जाते हैं। जैसे अञ्जन लगा कर पृथ्वी के भीतर की चीजें देखना, रात्रि में दिनकी समान देखना, अन्तर्धान होना, विद्याधरों की नाईं देखना, ज्वर को दूर करना, अपने शत्रु के घर में लड़ाई कराना स्तम्भन आदि बहुत से प्रयोग लिखे हैं। मूल्य ॥)

मंगाने का पता—हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

भगवत् भक्ति के अगाध प्रेम-गायनोंका

भजन संग्रह ।

यदि आप सर्व प्रकार के गायनों का आनन्द लेना चाहते हैं, भगवत् भक्ति सुख लेना चाहते हैं, तो इस पुस्तक के मँगाने में विलम्ब न करें, इतना उत्तम संग्रह और कहीं न मिलेगा। इसमें रागरागनी, भजन प्रभाती, आरती, विनय स्तुति, भैरवी, सारंग, ठुमरी, दादरे, धनाश्री, होली, काफ़ी, गाने थियेटर आदि हैं, जो स्त्री, पुरुष, बालक बालिकाओं सब के पढ़ने योग्य हैं, मूल्य ॥।) मात्र है।

मशहूर, मशहूर, शायरों की चोज़ भरी गज़लों का

ग़ज़ल संग्रह ।

जिन ग़ज़लों को एक बार सुनलेने पर ही, वे साख्ता मुँह से वाह वाह निकल पड़ती है, बारम्बार गाने पर भी तृप्ति नहीं होती, उन गज़लोंका बड़े परिश्रम से संग्रह करा कर छापा है, जिसमें हरसमयके गाने की; हर तरह की गज़लें हैं। इतनी सुन्दर ग़ज़लों का संग्रह और कहीं भी न मिलेगा, मू० ॥)

जिन शैरों को सुनकर तमाम उम्र भूलते ही नहीं, उन्हीं माने खेज़ (मतलब भरे हुए) चुह चुहाते हुए शैरों को जहां-तहां से पढ़ कर, सुन कर, लिख कर यह अभूतपूर्व संग्रह किया गया है। प्रेमियों को अपनाने के लिये अलभ्य पुस्तक है। इसमें प्रायः सभी चुने हुए उर्दू शायरों जैसे मीर, दाग़, अमीर, सादी, ग़ालिब, ज़ौक, चिरकीन, ज़फर, नज़ार, बरबाद, अकबर आदि के बढ़िया शैरों का संग्रह है। एक दो शैरों का नमूना तो देखिये —

ख़ाकसारी ज़ाहिदों की बेसबब होती नहीं।
ख़ाक में मिलता है दाना सब्ज़ होने के लिये॥
अफ़शाए राज़े इश्क में गो ज़िल्लतें सहीं।
लेकिन उसे जता तो दिया, जान तो गया॥

पुस्तक मोटे अक्षरों और बढ़िया काग़ज़ पर छापी गई है। प्रत्येक शैर ख़ूबसूरती के साथ अलग-अलग सजा कर रक्खा गया है। मूल्य ॥)

पूरनमलभक्त

धर्मतत्परता, जितेन्द्रियता में और पितृ-भक्ति पर बलिदान होने वाले वीर पूरनमल का उपन्यास के रूप में साक्षात् चित्र खींचा गया है। पुस्तक पढ़ने और प्रत्येक गृहस्थ के पास रहने योग्य है, शिक्षा के साथ साथ पाठकों का मनोरंजन भी भली प्रकार होता है, एक बार हाथ में उठाते ही चित्त आद्योपान्त पढ़ने को चाहता है, भाषा भी इतनी सरल और रोचक है, कि चित्त पढ़ते २ उकताता भी नहीं है। अभीतक साङ्गीतों में ही यह पढ़ने को मिलता था, किन्तु साहित्य की शोभावृद्धि के लिए तथा हिन्दी के गौरवार्थ उपन्यास रूप में तैयार किया गया है, एकबार मँगा कर अवश्य पढ़िये मूल्य सजिल्द १॥)

प्रख्यात सुन्दरी

नूरजहां

रहस्य मय

ऐतिहासिक—उपन्यास

मूल्य १॥) डाँक व्यय माफ़।

—०—

हिन्दी उर्दू कोष

(हिन्दी उर्दू डिक्शनरी) अकारादि क्रमसे यह हिन्दी उर्दू कोष है। हिन्दी उर्दू शब्दों का अर्थ है। विद्यार्थी वकील मुख्तार और सर्व साधारण के काम की चीज़ है मू० ॥)

मंगाने का पता-हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

हिन्दी संसार में अद्वितीय आविष्कार

स्त्रीशिक्षा का भण्डार, धर्म का आगार, पौराणिक तथा ऐतिहासिक उपहार
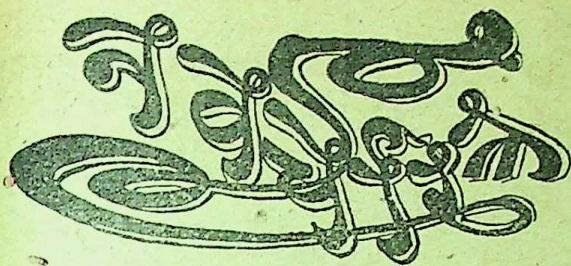
इसमें उन प्रातःस्मरणीय सती—साध्वी भारतीय-ललनाओंके जीवन चरित्र हैं, जिनके पढ़ने तथा सुनने से हृदय पवित्र हो जाता है, बड़े बड़े धार्मिक ग्रंथों की धार्मिक तथा पातिव्रत-धर्म की शिक्षाओं से कहीं अधिक इस की शिक्षायें हैं। सुन्दर सुन्दर रोचक उपन्यासों से बढ़ चढ़ कर इस ग्रंथ की रोचक शिक्षाप्रद लेखनी है, इस पुस्तक को प्रारम्भ करने पर बिना आद्योपान्त (पूरी) पढ़े हुए छोड़ना ही असम्भव है—

इसमें निम्नलिखित दृढ़ प्रतिज्ञ पतिपरायणा वीर विदुषियों के सविस्तृत जीवन चरित्र हैं-शकुन्तला, कादम्बरी, मालतीमाधव, नल-दमयन्ती, रत्नावली, चञ्चल कुमारी, सती सावित्री, महारानी शैव्या, सती विमला,

ऐसे आदर्श नव चरित्रों का मूल्य डांक सहित १॥) मात्र है।

हँसोड़, विदूषक दोनों पुस्तकें साथ मँगाने से १≈) में मिलेंगी।

विदूषक

इस में सैकड़ों मन को प्रसन्न करने वाली उत्तमोत्तम कहानियाँ चुन चुन कर रक्खी गई हैं। जिन को एक बार पढ़ लेने पर समस्त आयु भूलना असम्भव है, एक कहानी सुनादी जाय बस मिनटों तक हँसी का बाज़ार गरम रहेगा। अपने विषय की यह भी अद्वितीय पुस्तक है। मूल्य ॥।)

हँसाने की अद्वितीय पुस्तक

हँसोड़

हँसाते-हँसाते लोट पोट कर देने वाले चुट कुलों का संग्रह मूल्य ॥) मात्र।

भैरवी चक्र।

भाषाटीका

प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे-
वर्णा द्विजोत्तमाः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे-
वर्णाः पृथक्पृथक् ॥

शाक्तों का परम धन परम गोप्य भैरवीचक्र छापकर प्रकाशित कर दिया। इसमें घटस्थापन यन्त्रलेखन पूजाविधान शाक्तगायत्री शुक्रशापमोचन ब्रह्मशाप-मोचन मुद्रामीन आदि पञ्चमकारशोधन पात्र-स्थापन वटुकबलि क्षेत्रपाल—पूजन बलिप्रदान तीर्थ आदि साधक उच्छिष्ट भैरवपूजन शांतिस्तोत्र वीरवन्दनादि संपूर्ण आवश्यकीय विषय विस्तारपूर्वक वर्णन किये हैं। मूल्य ॥।) आना।

बैतालपच्चीसी

इसमें स्त्री पुरुष, बालक सब के पढ़ने योग्य शिक्षाप्रद २५ कहानियाँ हैं। मूल्य केवल मात्र ॥।) है।

यक्षिणीसाधन

—:भाषाटीका सहित:—

इस पुस्तक में वटवासिनी, मदन मेखला, विकला, लक्ष्मी, मानिनी, सुलोचना, शोभना, कपालिनी, विलासिनी, महानटी, कामेश्वरी, स्वर्णरेखा, सुरसुन्दरी, कनकावती, रतिप्रिया, पिशाचिनी आदिका साधन भले प्रकार वर्णित है। एक विधान भूमिगत धन प्राप्ति का भी वर्णित है। पुस्तक के अन्त में कर्ण पिशाचिनी का जो विधान है, वह बहुत आवश्यकीय है। इसके सिद्ध होने पर जो वार्त्ता पूछी जाती है, वह तत्काल कर्ण में कह देती है, इसी पुस्तक में रक्त मुण्डा का साधन भी है। मूल्य केवल ।=)

मंगाने का पता—हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

यौगिक, पैशाचिक, दानवी, राक्षसी, मायावी विद्याका अपूर्व सच्चा ग्रन्थ

मैस्मेरिजम शिक्षक

इसी ग्रन्थके साधन द्वारा मदोन्मत्त हस्ती महाविकराल गर्जते हुए केहरी सिंहको दृष्टिमात्र [देखने भर] से ही स्तंभित करके स्थिर करदेना, शेर और बकरी को एक घाट पानी पिला देना, आकाश में स्वच्छन्द विचरण करते हुए पक्षियों को खेंच लेना तथा बड़े बड़े क्रूर कर्माओं को तृणवत् बनादेना, अपरिमित धनको जो चिर काल से घरों जङ्गलों और पवर्तो में निरकर्थ गढ़ा पड़ा है जान लेना, अपने पूज्यपूर्वज पिता पितामहों की पवित्र आत्माओंको चक्र रचना द्वारा आकर्षित करके गुप्त बातों को पूँछना तथा उनसे वर्तालाप करके अपने को धन्य धन्य मानना तथा इसीके साधनों से रात्रि दिन चिन्तित रखनेवाले मुकदमों के परिणाम को जानना, विछोह से दुःखित परिणाम को जानना विछोह से दुःखित गृह से पलायमान, विदेश गये अपने प्रिय [प्यारे] को विदित करके बुलाना, अत्यन्त क्लेशित आर्त्तनाद करते हुए रोगियों को क्षण मात्रमें निरोग करके आनंद से बिदा करना, भूत भविष्य और वर्त्तमान समय की वार्त्ताओं को जानलेना तथा इसके द्वारा स्त्री पुरुष आदि सबजीवोंको मोहित [वशीकरण] करके इच्छानुसार कार्य कराय लेना, जिस पात्र [मनुष्य] पर योग [मैस्मेरिजम] किया हो, उसके द्वारा चोरी गये द्रव्य [पदार्थ] का पूछना और चुराने वालेको जानलेना, विदेशोंकी बात आदि सैंकड़ों हजारों आश्चर्य कारक कार्यों को केवल दृष्टि मात्र से बना देना, मनुष्य के हृदयके वचारों को जानलेना आदि इसीसे सिद्धहोते हैं मूल्य १।।) डाँकव्यय सहित।

प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान

देवयानी और शर्मिष्ठा

महर्षि शुक्राचार्य जी की माननी कन्या का असुरराज वृषपर्वाकी कन्या से वैमनस्य होना और उसका परिणाम तथा जिस कठोर परिश्रमसे महर्षि वृहस्पतिके पुत्र कच ने सञ्जीवनी होना विद्याऽध्ययन करी थी, उसका भी रोमाञ्चकारी वृत्तान्त इसी में है। मूल्य ।=)

प्रसिद्ध भिल्ल सरदार, डांकू शिरोमणि, शक्तिशाली

तांतिया

भील।

यह उसी पराक्रमी डांकू का चरित्र है, जिसके पकड़ने के लिये भारत सरकार ने लाखों रुपया व्यय करके बड़े २ यत्न किये। यहाँ तक कि इसी के उपद्रवों के कारण बड़े २ चतुर जासूसों (डिटेक्टिवों) की अध्यक्षता में तांतिया पुलिस नाम का विभाग खोलना पड़ा था। इसको पहिले ही पहिले कई बार दो दो लोहे के द्वार वाले सुदृढ जेलखानों में रक्खा था, लेकिन यह वीर वहां से भी मय अपने साथियों के भागजाता था, इस का आत्मिकबल, साहस, शौर्य्य प्रतिहिंसत्व देखकर भारत सरकार भी दङ्ग थी। कारण तांतिया डांकू था किन्तुअधर्मी नहीं था। तांतिया चोरथा, किंतु दरिद्र पीड़क नहीं था, ताँतिया हत्या कारी था किन्तु निर्दय नहीं था, तांतिया समस्त दोषों की खान था, परन्तु कंगालका सहायक, दरिद्रियों का आश्रय, रोगियों का चिकित्सक और बूढ़ोंकी लकड़ी था। तांतिया अपने शत्रुका यम, कृपण का शत्रु अंग्रेजों का विपक्षी, पुलिस तथा उसके सहायकों का काल था, तांतिया अपनी जाति का बड़ा भक्त था। यह जहाँ २ अपने विरुद्ध षड्यन्त्र पाता था, वहीं पहुंच अपना नाम सुना कर उन ग्रामों के ग्रामों को भस्मी भूत करदेता था, ऐसे वीर पुरुष का जीवन चरित्र अवश्य पढ़ना तथा सुनना चाहिये। इसकी किस किस प्रकार जेलखानोंसे भागा आदि आश्चर्य जनक घटनायें पढ़ना चाहें, तब ऐसे अलभ्य ग्रन्थ को मंगाने में देरी न करें, इस पुस्तक की भाषा बड़ी ही मनोहर तथा रोचक है, तिस पर भी मूल्य भी डांक व्यय सहित १।।) मात्र है।

मंगाने का पता—हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

प्रत्येक भारतवासी स्त्री पुरुष बालक बालिकाओंके पढ़ने योग्य

स्वाधीन भारत का अन्तिम इतिहास

क्षत्रियकुल दिवाकर भारतीय अन्तिम सम्राट्

ऐसा कौन भारतवासी है, जो इनकी वीरता के गुणों से तथा भारत वर्ष पर सत्रह बार मोहम्मदगौरी के भीषण आक्रमणों के नाम से भली प्रकार परिचित न हो? यह उसी वीरका चरित्र है, जो बारम्बार मौहम्मद गौरीको पकड़ कर उसके मैं तुम्हारी गऊ हूं इतनी क्षमा माँगनेपर ही छोड़ देता था, उसके सब दृश्योंका सविस्तार वृत्तान्त तथा दिल्ली पर अधिकार संयोगिता हरण देश द्रोही जयचन्द की पराजय आदि रहस्यमयी घटनाएं बड़ी मनोरञ्जक चित्ताकर्षक और वीरता पूर्ण ऐतिहासिक गाथायें इसी ग्रन्थ में हैं और इस महाबलशाली शब्दवेधी विद्या के ज्ञाता का प्रधान सेनानायक चामुण्डराय था, जिस के नेत्रों से केवल युद्ध के समय ही पट्टी खोली जाया करती थी, इस के युद्धों का विवरण भी पढ़ने योग्य है तथा निर्जीव आत्माओं को सजीव कर देने वाला पृथ्वीराज रासे के रचयिता महाराज के सच्चे सुहृद आशु कविवर भाट चन्दवरदाई की वीरता तथा स्नेहता आदर्श है और दिल्लीपति पृथ्वीराज का सच्चा चरित्र न जानने के कारण जो किम्वदन्ती हैं, उन सबका इसी ग्रंथ में शङ्का समाधान भी कर दिया गया है, तथा भारत का भविष्य फल (आगे को क्या होगा) जो समरसिंह को अंतिम युद्ध के समय देवादिदेव महादेव के गण वीरभद्र ने सुनाया था, वह भीमय सरल भाषा टीका के इसी ग्रंथ में है। मूल्य डांकव्यय सहित २) है।

जादू-विद्या

इस पुस्तक में अँग्रेज़ी ढँगके जादूके खेल हैं जो अँग्रेज़ दिखाते हैं। मूल्य।)

बाल चिकित्सा

इसमें बालकों को होने वाले समस्त रोगों की चिकित्सा तथा उनसे बचने का उपाय बड़ी उत्तमता से समझाया है तथा बलीहोनेका प्रकार भी लिखा है। प्रत्येक गृहस्थके लिये अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य केवल।)

* नवनिद्धि *

[१] अन्नपूर्णा तन्त्र [२] वैदिक कल्प [३]गायत्री तन्त्र [४]हनुमत दुर्ग [५]बाहर चिन्तामणि [६]पुत्र कामिक तन्त्र [७] सरस्वती तन्त्र [८] विनाकल्पयक [९] दश महाविद्या तन्त्र ये पुस्तकें भाषाटीका सहित हैं मूल्य ॥-)

दुर्गा सप्तशती।

भाषाटीका।

सम्पूर्ण दुर्गा अर्गला, कीलक कवच प्रयागविधि सम्पूर्ण रहस्य आदि आदि आवश्यकीय विषयहैं। जेवी गुटके रूप में छाप कर सुंदर जिल्द बँधवाई है। मूल्य केवल ॥)

संस्कृत हिन्दी कोष

संस्कृत-हिन्दी कोष अकारादि क्रमसे संस्कृत शब्दोंका हिंदी भाषा में अर्थ प्रथम संस्कृत शब्द कौन है यह बतलाया है।फिर लिङ्ग वाचक हिंदी भाषा में जितने शब्द हैं सब अर्थ लिखे हैं। मूल्य जिल्दस हित पुस्तक का १)

देवी गीता

मुमुक्षुओं के वास्ते मूल्य ॥) हैं

अवधूतगीता।

भाषाटीका सहित मूल्य ॥)

ज्ञान-भक्ति उपदेश

यह पुस्तक कवितामें है, ज्ञान, तथा उपदेश दोहे छँदराग आदि में वर्णन किये हैं। जिन्हें पढ़कर मनुष्य ज्ञान भक्ति में लय हो जाता है। मूल्य ।≶)

षट्चक्र

इस पुस्तक में छहों पद्मों का पृथक् २ वर्णन है। योगके जिज्ञासुओं का यह पुस्तक अद्वितीय है अवश्य देखना चाहिये। मूल्य।)

योगबीज मूल्य।)

मंगाने का पता—हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

अलभ्य ग्रन्थ छपकर तय्यार होगया है मंगाने में शीघ्रता करें।

कौक विना जो रति करे, सो नर पशु समान

* महात्मा सिद्ध नागार्जुन प्रणीत *

रतिशास्त्र

(भाषाटीका सहित)

जिस रति शास्त्र (कोक शास्त्र) को मनुष्य बड़ा ही गुप्त रखते थे जिस रतिशास्त्र की प्रत्येक गृहस्थी को आवश्यकता है, जिसकी प्राप्ति की आशा में मनुष्य लाखों पुस्तकों में अपना द्रव्य और समय खो बैठे। हमने उसी "रतिशास्त्र" को बड़ी कठिनता से प्राप्तकर भाषाटीका सहित सुन्दर टाइप में छापकर प्रकाशित किया है। इसमें वह सम्पूर्ण आवश्यक विषय हैं, जो कोक शास्त्र में होने चाहियें। विज्ञापन में उनका लिखना व्यर्थ है।

महाकवि जयदेव कृत।

रतिमञ्जरी

(भाषाटीका सहित)

जिन महाकवि जयदेव की भक्ति और काव्य रचना से मुग्ध होकर स्वयं कृष्णचन्द्र गोपियों के पीछे २ फिरे थे, जिनकी मधुर कविता ने राधा और श्रीकृष्ण के रहस्य मय शृंगारों का वर्णन किया था, जिसके अवर्णनीय वर्णन से महाकवि को कुष्ट रोग होगया था और फिर वे अगाध भक्ति से निरोग होगये थे। यह ग्रंथ उन्हीं महाकवि जयदेव का बनाया हुआ है। इसमें उत्तम रीति से गुप्त से गुप्त रति सम्बन्धी बातों का वर्णन है। इसमें जिन २ विषयों का वर्णन है, वह अन्य कोकशास्त्रों में नहीं है।

इस कारण हमने बहुत सुन्दर अक्षरों में अच्छे कागज़ पर एक जिल्द में छापकर तय्यार करी हैं।

इन दोनों पुस्तकों को घर बैठे २) में मय डांक खर्च के पहुंचादेते हैं। मंगाने में देरी न करें।

मंगाने का पता-हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

छप गया ! प्रकाशित हो गया !! शीघ्र मँगाइए !!!

व्यर्थ समय न खोइए !

पैसे की बचत कीजिए !!

सुप्रसिद्ध
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ
का
नया और बड़ा

सूचीपत्र *

आरोग्य, चिकित्सा, चित्र-ग्रंथ, धर्मशास्त्र इत्यादि

सभी प्रकार की पुस्तकें हमसे मँगाइए !

हिंदी की सभी विषयों की पुस्तकें हमारे यहाँ मिलेंगी !!

राष्ट्रीय
धार्मिक
इतिहास
विज्ञान
खेती

सभी प्रकार की हिंदी की पुस्तकें
हमसे मँगाइए

नाटक
कहानी
उपन्यास
प्रहसन
मनोरंजन

पुस्तक-विक्रेताओं
को
हमारे स्थानीय एजेंट बनने पर पूरा
कमीशन दिया जाता है।

—:०:—

5) जमा करके स्थानीय एजेंट बनिए !

1) प्रवेश-फ़ी देकर स्थायी ग्राहक बनिए !!

स्थायी ग्राहकों को माला की प्रकाशित पुस्तकों पर पचीस रुपए सैकड़े और अन्य प्रकाशकों की पुस्तकों पर एक आना रुपया कमीशन दिया जाता है।

हमारा पता नोट कर लीजिए—

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय,
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

* यह सूचीपत्र एक आना का टिकट भेजकर मुफ़्त मँगाइए।

सुप्रसिद्ध गंगा-पुस्तकमाला के कुछ उत्कृष्ट और रखने-योग्य ग्रंथ

भूकंप

[प्रणेता – सुप्रसिद्ध हिंदी-लेखक बाबू रामचंद्र वर्मा]

यह अपने विषय का हिंदी में पहला और अद्वितीय ग्रंथ है। भूकंप क्या है? वह क्यों और कैसे आता है? जल और स्थल आदि पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है? आदि-आदि भूकंप संबंधी अनेक ऐसे प्रश्न हैं, जिन का उत्तर जानने की उत्कंठा बहुत-से लोगों को हो सकती है। इन प्रश्नों के उत्तर केवल जानने योग्य ही नहीं हैं, बल्कि बहुत ही मनोरंजक, कौतूहल-जनक और उपयोगी भी हैं, और इन्हीं का सीधे, सरल और सुस्पष्ट ढंग से इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। भाषा इसकी बड़ी ही सुंदर, शुद्ध और सरल है। लेखन-शैली ऐसी मनोरंजना है कि पढ़ने में तिलस्मी उपन्यास का-सा मज़ा आता है। इसमें १९ रोमांचकारी और नेत्र-रंजक चित्र भी दिए गए हैं जिनसे पुस्तक की शोभा दूनी हो गई है। काग़ज़ और छपाई बहुत बढ़िया। मूल्य सजिल्द प्रति का १।=) सादी १)

आत्मार्पण

[ले०—पं० द्वारकाप्रसाद 'गुप्त रसिकेंद्र']

प्रस्तुत ग्रंथ एक ऐतिहासिक खंड-काव्य है। इसका कथानक टॉड-राजस्थान और मेवाड़ के इतिहास से लिया गया है। राणा राज-सिंह, प्रभावती या चंचलकुमारी और वीर चूड़ावत सरदार के अपूर्व चरित्रों के आधार पर इस अत्यंत रोचक, उत्कंठा-वर्धक और कवित्व स्वदेश-प्राणता, निःस्वार्थता, पवित्रता, सहानुभूति और क्षमा आदि सभी गुणों में आदर्श काव्य की रचना हुई है। घटा मूल्य ।)

भारत-गीत

[लेखक—कवि-सम्राट् पं० श्रीधर पाठक]

पाठकजी हिंदी-कवियों के आचार्य माने जाते हैं। अपने समय-समय पर देश संबंधी जो उपयोगी और उत्तम कविताएँ लिखी और पत्रों में प्रकाशित कराई हैं, उन्हीं का यह नयनाभिराम बड़ा संग्रह है। घटा मूल्य ।)

द्विजेंद्रलाल राय

इस पुस्तक के लेखक माधुरी के युगल संपादक हैं। सुप्रसिद्ध नाट्यकार स्वर्गीय डी० एल्० राय एम्० ए० को कौन नहीं जानता? उनके नाटक के हिंदी-अनुवाद बहुत ही लोक-प्रिय हुए हैं उन्हीं का यह संक्षिप्त जीवन-चरित है। लेखकों के नाम ही इसकी उपयोगिता और श्रेष्ठता के प्रमाण हैं। मूल्य ≡)

बंकिमचंद्र चटर्जी

[लेखक— पं० रूपनारायण पांडेय]

इस पुस्तक में भारत के सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक स्वर्गीय राय बंकिमचंद्र चटर्जी बहादुर सी० आई० ई० का जीवन-वृत्तांत है। इसके लिये सभी साहित्य-प्रेमी वर्षों से लालायित हो रहे थे। इस पुस्तक के संबंध में केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि इसके मुक़ाबिले के बहुत कम जीवन-चरित निकलेंगे। अनेक हिंदी-समाचार-पत्रों ने इस पुस्तक की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। घटा मूल्य १)

बिलकुल नया, बड़ा सूचीपत्र डाक-व्यय के लिये -) का टिकट भेजकर मुफ्त मँगाइए

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

अध्यात्म और दर्शन

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
राजयोग	।=), १॥)	विचार-सागर	२)	वैज्ञानिक अद्वैतवाद	१॥=)
राम की उपासना	।)	,, ,,	६)	वैराग्य-शतक (सचित्र)	४), ५)
रामकृष्ण परमहंस के उपदेश	।=)	विवेक-वचनावली	।)	वैशेषिक दर्शन	।=)
रामकृष्ण-वाक्य-सुधा	१।)	विश्वप्रपंच (दो भाग)	२)	,, ,,	१॥)
राम बादशाह के छः हुक्मनामे	१।)	वृत्ति-प्रभाकर	२॥)	शास्त्र-रहस्य (दो भाग)	१)
वर्क्ले और कैंट का तत्त्व-ज्ञान	॥)	वेदांत का विजय-मंत्र	-)॥	शांति और आनंद का मार्ग	।)
विकाशवाद	२)	वेदांत-दर्शन	४॥)	शांति और सुख	॥)
विकाश-चंद्रोदय	२)	वेदोपदेश (दो भाग)	२)	शांतिदायी विचार	।)
विचार-दर्शन	१।)				

आरोग्य, चिकित्सा और वैद्यक

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
अनुभूतशतक	।)	क्षय-रोग	=), ॥)	ताक़त की दवाइयाँ	।)
अमृत-सागर	२)	गद-तिमिर-भास्कर	६)	तैल-चिकित्सा	॥)
,, ,,	३॥)	गर्भ और गर्भिणी	॥)	दीर्घायु	२॥), ३)
आकृति-निदान	१।)	गर्भाधान-विधि	≡)	दुग्ध-चिकित्सा	=)
आघातों की प्रारंभिक चिकित्सा	॥)	गुप्त-प्रकाश	३)	दोष-विज्ञान	=)
आजकल का वीर्य-नाश	≡)	गृह-रोग-चिकित्सा	१।-)	धातु-विज्ञान	=)
आयुर्विज्ञान	॥)	गृह-वस्तु-चिकित्सा	॥)	निघंटु-भाषा	॥)
,, ,,	।)	गृहिणी-चिकित्सा	२॥)	निघंटु-शिरोमणि	१=)
आयुर्वेदनिदान-समीक्षा	=)	गोरसादि औषध	-)	निर्बलता	॥)
आयुर्वेद-मीमांसा	॥)	चक्रदत्त	६)	पथ्य	।)
आरोग्य-दर्पण	।=)	चरक-संहिता	२०)	पंच-कर्म-विवेचन	।-)
आरोग्य-दिग्दर्शन	।≡)	चंद्रोदय बनाने की विधि	≡)	प्रयोग-शतक	।)
आरोग्य-प्रदीप	॥=)	चारु-चिकित्सा	॥)	प्रसूत-काल	॥=)
आरोग्य-विद्या	॥)	चिकित्सा-चंद्रोदय (७ भाग)	३५)	प्रसूति-शास्त्र	३)
आरोग्य-विधान	।-)	चिकित्सा-सोपान	१)	प्राकृत ज्वर	≡)
आरोग्य-साधन	।=)	छूतवाले रोग और उनसे बचने के उपाय	१)	प्राकृतिक-चिकित्सा	।=)
इलाजुलगुर्बा	१=)			प्लेग-प्रतिबंधक उपाय	॥=)
उत्तम संतति	१॥)	जर्राही-प्रकाश	१॥)	बालक	१)
ऋतुचर्या	१।)	जल-चिकित्सा	।-)	बच्चों की रक्षा	।-)
औपसर्गिक सन्निपात	।=)	जीवनी-शक्ति	।=)	बाल-चिकित्सा	॥)
औषध-कल्पलता	।=)	ज्वर निदान, शुश्रूषा और चिकित्सा	=)	बुढ़ाई के रोग और दीर्घ जीवन	≡)
काम तथा रति-शास्त्र	६)			बृहन्निघंटु-रत्नाकर	४०)
कोष्ठबद्धता	॥)	तमाखू से हानि	।≡)	ब्रह्मचर्य	।)

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २६-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

भारत में प्लेग	=)	राम-विनोद	।≡)॥	संक्षिप्त शरीर-विज्ञान	॥
भारत में [illegible]	१॥)	रूपवान्, बुद्धिमान् संतान उत्पन्न करने की विधि	।)	संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा	॥=)
भारतीय ललनाओं को गुप्त संदेश	॥)	रोगोत्पादक मक्खी	≡)	सुगमचिकित्सा	=)
भाव-प्रकाश	१२)	बनौषधि-विज्ञान	॥=)	सुश्रुत-संहिता	२४)
भू-लोक का अमृत दूध	।)	वागभट्ट	८)	सोज़ाक	॥)
भैषज्य-रत्नावली	२)	वाजीकर-कल्पतरु	॥)	सौरी-सुधार	
मनुष्य का आहार	१)	वीर्य	॥=)	स्त्रियों के रोग	≡)
मलावरोध-चिकित्सा	।≡)	वैद्य-वल्लभ	।–)	स्वप्न-दोष	२)
मलेरिया	॥=)	व्यभिचार	२।)	स्वाभाविक जीवन	१॥=)
माधव-निदान	२॥)	शरीर विज्ञान	॥)	स्वास्थ्य	≡)
मानव-संतति-शास्त्र	१।)	शार्ङ्गधर	३)	स्वास्थ्य के १० नियम	॥=)
मानषी अंग तथा स्वास्थ्य	।॥)	शिक्षितों का स्वास्थ्य-व्यतिक्रम	।)	स्वास्थ्य-दीर्घ जीवन	॥=)
मीठी निद्रा	१।)	शिशु-पालन	१)	स्वास्थ्य-रक्षा	३॥)
मैं निरोग हूँ या रोगी	।)	शीघ्रपतन	।=)॥	स्वास्थ्य शरीर	४।), ५।)
योग-चिकित्सा	=)	शीतला	१)	स्वास्थ्य-साधन	=)
रजस्वला-दीक्षा	।॥)	शुश्रूषा	१)	स्वास्थ्योपदेश	।)
रजस्वला के धर्म-नियम	।)	सरल-चिकित्सा (तीन भाग)	१॥)	हमारे शरीर की कथा	=)॥
रस-तरंगिणी	५)	सरल व्यायाम	।=)	हमारे शरीर की रचना (दोभाग)	६।)
रस-परिज्ञान	॥)	संतान-कल्पद्रुम	१)	हैज़ा का इलाज	॥)
रस-रत्नाकर	२=)			होमिओपैथिक-चिकित्सा	४॥)

चित्र-ग्रंथ

चित्रमय-जापान (८४ चित्र)	१)	चित्रावली (दू० भा०)	१॥)	रमेश-चित्रावली (१६ चित्र)	२)
चित्रमय-वर्मा	॥)	चौक पूरने की पुस्तक	।॥)	राजा रविवर्मा के प्रसिद्ध चित्र (८८ सुंदर चित्र)	१)
चित्रमाला	।॥)	दयानंद-चित्रावली	२॥)	वंदेमातरम्-चित्राधार	२)
चित्रमय-रामायण	३॥)	प्रेम-चित्रावली	२)	सती-चित्रावली	२।)
चित्र-विहारी	१॥)	भाव-चित्रावली (१००चित्र)	४)		
चित्रावली (प० भा०)	१।)				

धर्मशास्त्र तथा कर्मकांड

अथर्व-वेद-संहिता	१॥)	आर्याभिविनय	≡)	ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका	१।≈)
अष्टादश-स्मृति	३)	आर्योद्देश्य-रत्नमाला	꠲)।	धर्म-कल्पद्रुम	५)
अष्टोपनिषद्	२)	ऋग्वेद-भाष्य	१२॥)	धर्मचंद्रिका	१)
आपस्तंब-गृह्यसूत्र	।)	,, ,,	४८)	धर्म-प्रश्नोत्तर	।)
आर्यसामाजिक धर्म	॥)	ऋग्वेद-संहिता	४)	धर्म सोपान	।)

नित्यकर्म-चंद्रिका	-)	मूर्ति-पूजा-मंडन	।।।)	सत्यार्थ-प्रकाश	
नित्य-कर्म-विधि	=)	यजुर्वेद-भाष्य	१५)	संध्या-प्रयोग	=)
निरुक्त	४।)	यजुर्वेद-भाषाभाष्य	४)	संध्या भाषा-सहित	-)
पंचमहायज्ञ-विधि	।)	यजुर्वेद-संहिता	।।।=)	संध्या-संक्षेप	-)
पारस्कर-गृह्यसूत्र	१।।।)	याज्ञवल्क्य-स्मृति	१।।)	संस्कार-चंद्रिका	३।।)
पाराशर-स्मृति	।।)	विवाह-पद्धति	।=)	संस्कार-विधि	।।)
ब्रह्मयज्ञ	।।।)	विष्णु-सहस्रनाम	।)	सामवेद-संहिता	।।।)
मनु-स्मृति	२।।।)	श्राद्ध-मीमांसा	।।।)	स्तोत्र-कुसुमांजलि	।)
मंत्र-योग-संहिता	१)	षोडश संस्कार-विधि	२।।)		

विविध विषय

अद्वैतामृत	।।=)	धर्म-विज्ञान	२)	महाभारत-मीमांसा	६)
अनुप्रास का अन्वेषण	।)	धील-गीता	१)	मातृ-भाषा	।।)
अँगरेज़ी सेट (तीन भाग)	७।)	नवीन भारत में प्रवीण भारत	१)	राज्य-प्रबंध-शिक्षा	।।)
आदर्श ग्राम	=)	नाट्य-कथामृत	।=)	रामायण के कुछ उपदेश	=)
आधुनिक गायन	-)	नाट्य-शास्त्र	।)	रामायण-रहस्य	१)
उर्दू-शतक	=)	न्याय-प्रकाश	।।।)	रामायणी-कथा	१)
काल-प्रबोध	।।=)	पतित-पावन	।।।)	राष्ट्र-भाषा	।), ।।)
काल-बोध	≡)	पत्र-संपादन-कला	१।)	रूस का पंचायती राज्य	।।।)
कुरान	३)	पंचामृत	।-)	लंडन के पत्र	≡)।।
कुरानादर्श	६)	प्रवीण दृष्टि में नवीन भारत	२)	लेखक और नागरी-लेखक	=)
गद्य-माला-दर्शन	।।।)	प्रेम	।=)	लोक-परलोक-हितकारी	।।।=), १।=)
गीतावली	।।।)	प्रेम-सागर	२)	लोकोक्ति-संग्रह	।)
गुरुगीता	१)	प्रैक्टिकल फ़ोटोग्राफ़ी	२)	वक्तृत्व-कला	१।)
गुरुदत्त-लेखावली	२)	बर्क्ले और कैंट का तत्त्व-ज्ञान	।।)	,, ,,	।=)
ग्राम-सुधार (दो भाग)	१।=)	भारतवर्ष में पश्चिमी शिक्षा	।=)	वंशी-मंजरी	१)
तपस्वी अरविंद के पत्र	।=)	भारतवर्षीय संस्कृत-कवियों		विक्रमांक-देव-चरित्र-चर्चा	।)
ताल-मंजरी	।।=)	का समय-निरूपण	१।।)	विदुर-नीति	।-)
तीन रत्न	।।=)	भारतीय लिपि-तत्त्व	।।)	विधवा-विवाह-मीमांसा	२)
त्रिदेव-निरूपण	।-)	भाषा	≡)।।	विधवोद्वाह-मीमांसा	१।)
दरिद्रता से बचना	=)	भिन्न-भिन्न देशों के अनोखे		विश्राम-सागर	४)
दर्शन परिचय	२।।)	रीति-रिवाज	।।।)	विश्वविद्या-भंडार	१।।)
दशावतार-कथा	।।)	भू-मंडल के प्राणी	।।)	वृक्षों में जीव है	१।।।), २)
दृष्टांत-समुच्चय	≡)	म० टालस्टाय के विचार	।)।।	वैदिक विवाहादर्श	१।)
दृष्टांत-सागर (दो भाग)	२)	महाकवि अकबर और उनका		व्रतोत्सवचंद्रिका	३)
देशी केरवा	।।।≡)	काव्य	।≡)	शक्ति-गीता	१)

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

शंभु-गीता १)
शिक्षा-भूषण =)॥
शिक्षा-सुधार ॥)
शुक-सागर २॥), ४॥), ५)
शुक्र-नीति २॥)
शृंगार-दान ≡)
शृंगार-शतक (सचित्र) ४॥), ५)
शैव सर्वस्व ।)
शौचीय दर्पण ।)
सत्य-निबंधावली ॥=)
समाज १)
,, ॥।=)
संगीत-सुदर्शन २)
संगीत सुधा ॥)
संन्यास-गीता ॥।)
संसार की सबसे बहुमूल्य वस्तु ~)
संस्कृत-कवियों की अनोखी सूझ ।=)

साधारण धर्म १)
सितार-शिक्षक ।=)
चिकागो-वक्तृता ॥=)
सिंहावलोकन ।)
सुधार १॥)
सुधारणा और प्रगति १॥।)
सुधार-रहस्य ॥)
सूर्य-गीता ॥)
स्त्रियों की पराधीनता ॥।)
स्वामी रामतीर्थ-ग्रंथावली (२८ भाग) ॥=)
हारमोनियम-फुलझरी १)
हारमोनियम-मास्टर १)
,, ,, (१५ भाग) ३)
हिंदी का संक्षिप्त इतिहास ।=)
हिंदी का संदेश ।)
हिंदी की हस्त-लिखित पुस्तकों के खोज की रिपोर्ट सन् १९०६ से १९०८ तक ३)
,, १९०९ से १९११ तक ४)

हिंदी-महाभारत १॥)
हिंदी में इनकम-टैक्स ।)
हिंदी-मोटर-गाइड १॥)
हिंदी-रामायण १॥।)
हिंदी-लिंग-विचार ≡)
हिंदी-लेक्चर ~)
हिंदी-शार्टहैंड २)
हिंदी-सिद्धांत-प्रकाश ॥)
हिंदी-सुभाषित १)
हिंदुस्तानी माप-विद्या ॥।)
हिंदू-धर्म-मीमांसा १)
हिंदू-धर्म की विशेषता =)
हिंदू-विवाह ॥=)
होमर-गाथा १)

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन-परीक्षा की पुस्तकें

प्रथमा-परीक्षा

अलंकार-प्रबोध ॥=)
आरोग्य-साधन ।-)
गीतावली ।)
गुप्त-निबंधावली ।=)
ताप ।=)
पद्य-संग्रह ।≡)
प्रथमालंकार-निरूपण =)
भारतवर्ष का इतिहास १ भाग १॥)

भारतीय शासन ॥।=)
भाषा-सार भाग १ ॥।)
रचना-प्रबोध ॥=)
रचना-विचार १ भा० १)
विज्ञान-प्रवेशिका १ भा० ।)
व्याकरण की उपक्रमणिका १)
वृत्त-चंद्रिका =)
शालोपयोगी भारतवर्ष १)

शिवाबावनी ≡)
सत्य-हरिश्चंद्र ≡)
सरल पिंगल ।)
साहित्य-सुमन ॥=)
सूर-पदावली ।)
हिंदी-कौमुदी ॥=)
हिंदी-पद्य-रचना ।)

मध्यमा-परीक्षा

अनुवाद-दीपिका १)
अर्थ-विज्ञान २)
अँगरेज़-जाति का इतिहास २॥)
अलंकार-प्रकाश ३॥)
अलंकार-मंजूषा १॥)

आरोग्य-विधान १॥)
इतिहास-तत्त्व ≡)
कवितावली रामायण ॥=)
,, ,, १=)
क़ानून-दर्पण १॥)

काव्य-निर्णय १॥।), १)
कृषि-शास्त्र १॥)
खाद १)
गीता-दर्शन २॥)
ग्रीस का इतिहास १=)

गो-धन २)
छंद-प्रभाकर २)
ज्योतिष-शास्त्र १)
द्वितीय, तृतीय और त्रयोदश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापतियों के भाषण ।),।=),।)
देशी हिसाब ॥=)॥
नवरस ॥)
नागरी अंक और अक्षर ।)
नाड़ी-विज्ञान =)
निबंध-नवनीति ॥।)
न्यायालय-कार्य-पत्र-संग्रह २)
पद्मावत १), १॥)
पार्लमेंट ॥=)
पंच-तंत्र १।), २॥)
बही-खाता =)॥
" " ३।)
बाग़बानी ॥)
भारतवर्ष का इतिहास (दो भाग) ३॥।)
भारतवर्ष के इतिहास का भौगोलिक आधार ॥।)
भारतीय दर्शन १॥)
भारतीय शासन-पद्धति ३॥)
भौतिक विज्ञान १)
मदनपाल-निघंटु ३)
मनु-स्मृति २॥)
" १।)
" ३।)
मरहठों का उत्कर्ष १॥)
महाजनी =)॥
मालती-माधव नाटक १)
मेवाड़ का इतिहास १॥।)
रस-राज ।=), =), ।)
राजनीति-प्रवेशिका ।=)
राजनीति-विज्ञान १।=)
राजनीति-शास्त्र २।=)
रामचंद्रिका २)
रोम का इतिहास ।)
विज्ञान-प्रवेशिका (२ भाग) ।)
विहारी की सतसई १ भाग ३)
शार्ङ्गधर-संहिता ४॥)
शासन-पद्धति १)
शिवसिंह-सरोज (छप रही है)
समालोचना =)
संक्षिप्त हिंदी-व्याकरण ।।=)
साहित्यालोचन ३), २)
सुजान-चरित्र ३)
सूर्य-सिद्धांत १)
हमारे शरीर की रचना ६॥।)
हिंदी का संक्षिप्त इतिहास ।=)
हिंदी-भाषा का विकास ॥=)
हिंदी-व्याकरण-चंद्रोदय १।), १)

उत्तमा-परीक्षा

अलंकार-मंजूषा १॥)
उत्तर राम-चरित १)
कबीर-वचनावली १)
कर्पूर-मंजरी =)
कवि-कीर्तन ॥।=)
काव्य-निर्णय १)
काश्मीर-कुसुम ॥।)
क्षत्र-प्रकाश ॥।)
गीतावली ॥=)
चंद्रकला-भानुकुमार (छपने पर)
चंद्रावली ।)
चौरासी वैष्णवों की वार्ता १॥)
छंद-प्रभाकर २)
जगद्विनोद ॥)
नीलदेवी =)
परीक्षा-गुरु १॥)
पृथ्वीराज-रासो की समय १॥)
प्रेम-चंद्रिका (छपने पर)
प्रेम-माधुरी -)
प्रेम-सागर २)
भारत-दुर्दशा -)॥
मुद्राराक्षस १)
रणधीर-प्रेममोहिनी ॥=)
रसिक-प्रिया २॥)
राम-चंद्रिका ३)
" २॥)
ललितललाम ॥=)
विद्यापति ठाकुर की पदावली २)
विद्यासुंदर ≡)
शकुंतला १)
संक्षिप्त सूर-सागर २)
सुजान-सागर ॥।)
हिंदी-व्याकरण २)
पद्मावत १), १॥)

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय की प्रकाशित

पुस्तकें मिलने के
मुख्य-मुख्य स्थान

अकोला—राजस्थान बुकडिपो

अजमेर—हिंदी-साहित्य-मंदिर, प्रधान कोआपर-टिवस्टोर, जयनारायण डागी व्यापारिक महाविद्यालय बाज़ार-आगरा-दरवाज़ा

आगरा—साहित्य-रत्न-भंडार

आज़मगढ़—गंगाप्रसाद श्रोत्री, न्यूज़पेपर मरचैंट

इटावा—श्रीराम आर्य, ग्रा० औ० पो० अहेरीपुर स्टेशन भर्थना

इलाहाबाद—साहित्य-भवन लिमिटेड, हिंदी-मंदिर, सर्वेंट्स आफ़ इंडिया बुक-एजेंसी

इंदौर—साहित्य-उद्यान-कार्यालय, पिपली बाज़ार

कनखल (हरद्वार)—सरस्वती-पुस्तकमाला कार्यालय

कलकत्ता—हिंदी-पुस्तक एजेंसी, पाठक एंड को०, निहालचंद एंड को०, आर० डी० बाहिती एंड को०, एस० आर० बेरी एंड को० और आर० एल बर्मन-एंड को०

करांची—हिंदू-प्रेस (पुस्तक-विभाग) निकलरोड

कानपुर—प्रकाश-पुस्तकालय, प्रताप-पुस्तकालय और भीष्म एंड को०

गढ़वाल—श्रीमोहनलाल साह बुकसेलर

गया—विधु-साहित्य-मंदिर और रामसहायलाल बुकसेलर

गुड़गाँवाँ—सर्व-हितैषी पुस्तकालय-खोरी

चिरगाँव (झाँसी)—साहित्य-सदन

जबलपुर—एज्युकेशनल बुकडिपो, मिश्रबंधु-कार्यालय-दीक्षितपुरा

दमोह—श्री० पं० गोविंदशंकर मेहता, लक्ष्मी बुकडिपो (लक्ष्मी-प्रेस)

दिल्ली—सर्वहितैषी व्यापार मंडल, पं० गोपीनाथ भार्गव, ४४४ जुम्मा मसजिद, गुप्ता एंड को० (जनरल-बुकडिपो) हिंदीपुस्तक एजेंसी, और बेताबप्रिंटिंग वर्क्स

देहरादून—भारतीय पुस्तकालय,

नागपुर— रवबुकडिपो

नैनीताल—श्रीकर्नाटक बुकसेलर

पटना—श्रीराम मास्टर, जीवन सुधार-बाढ़, हिंदी-साहित्य एजेंसी-मुरादपुर, सरस्वती-भंडार मुरादपुर

पीलीभीत—सत्य-व्यापार-मंडल

पूर्णियाँ—राघवप्रसाद गुप्त, आनंद-पुस्तकमाला-कार्यालय, मधुवनी। बाज़ार

फ़ैज़ाबाद—नागर एंड को०-जमुनियाँबाग, मिसर्स मूलचंद एंड ब्रदर्स चौक

बनारस—चौधरी एंड ब्रादर्स-नीचीबाग, मास्टर खेलाड़ीलाल-कचौड़ी गली, ज्ञानमंडल-पुस्तकभंडार, लहरीप्रेस, हिंदी-पुस्तक एजेंसी, मुकुंददास एंड को० और उपन्यास बहार आफ़िस

बरेली—श्रीराधेश्याम-पुस्तकालय, श्रीश्यामलालआर्य

बड़ौदा—जयदेव ब्रादर्स-करेली बाज़ार

बांदा—मथुराप्रसाद खरे, अध्यक्ष श्रीनृसिंह पुस्तक भंडार

बिजनौर—कृष्णदास बुकसेलर

बेतिया—गाँधी भंडार

बंबई—हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, हरिबाग़ और ग्रंथभंडार माटुंगा

मुज़फ्फ़रपुर—मैनेजर, हिंदी-साहित्य भंडार और बर्मन कंपनी

मुरादाबाद—पं० शंकरदत्त शर्मा

मुंगेर—मेसर्स गोविंदप्रसाद एंड संस-चौक बाज़ार

मैनपुरी—कमथान ट्रेडिंग भंडार

मोतीहारी (चंपारन)—पं० रघुनाथप्रसाद असिस्टेंटटीचर, डोकाक एकेडेमी स्कूल

राजकोट (काठियावाड़)—राष्ट्रीय खादी प्रचारिक मंडल

राजमहेंद्री—श्रीमल्लिकार्जुन रावपेंडिरी

रायबरेली—श्रीमंगलाचरन मिश्र, बुकसेलर-स्टेशन रोड

राँची—श्री एल० बारला, लोकल आडिटर ८४ गोविंदपुर पो० गरियागढ़

रुड़की—मेसर्स मोहनचंद एंड ब्रदर्स

लहरियासराय—श्रीवैदेहीशरण हिंदी-पुस्तक भंडार, श्रीआनंदविहारी हिंदी साहित्य भंडार

लाहौर—हिंदी-भवन,-हास्पिटल रोड, मोतीलाल बनारसीदास-पंजाब संस्कृत पुस्तकालय, मेहरचंद लक्ष्मणदास, संस्कृत पुस्तकालय, लाजपतराय सहानी एंड को०, मेसर्स नारायणदत्त सहगल एंड को०

होशंगाबाद—श्रीटीकाराम तिवारी-नरमदा साहित्य-सदन

नोट—इसके अतिरिक्त भी सभी पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ हमारी पुस्तकें मिलती हैं। हमारे ट्रैविलिंग एजेंट भी समय-समय पर सभी स्थानों पर जाया करते हैं। उनसे भी हमारी प्रकाशित सभी पुस्तकें मिल सकती हैं।

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २६-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

नाटकों की बहार

रत्नावली नाटक

[बरेली-पाठशालाध्यापक पं० देवदत्ततिवारी-कृत संस्कृत-रत्नावली का सरल हिंदी-अनुवाद]

यह गवर्नमेंट-प्रेस, इलाहाबाद में प्रकाशित ; कवि-चूड़ामणि श्रीहर्षदेवजी-प्रणीत; संस्कृत-प्राकृत-गद्य-पद्य-रूप; बालोपयोगी, ओज और लालित्य-पूर्ण रत्नावली नाटक का अविकल एवं सरल हिंदी-अनुवाद है। प्रस्तावना में सूत्रधार ने नाटक के विषय में कहा है—"श्रीहर्ष निपुण कवि है, यह सभा गुणग्राहिणी है, संसार में वत्सराज का चरित्र मनोहर है और हम सब नाट्य करने में प्रवीण हैं। इन चारों में से एक-एक वस्तु अपने-अपने मनोरथ की सिद्धि का स्थान है......।"

इसके पहले अंक में मदन-महोत्सव, दूसरे अंक में चित्रावलोकन, तीसरे अंक में वासवदत्तादेवी का रोष, और चौथे अंक में इंद्रजालिक के व्याज से राजा उदयन की इष्ट-प्राप्ति का मनोरम रीति से विशद वर्णन है, और पुस्तक के अंत में कठिन शब्दों की सूची लगाकर प्रत्येक शब्दों का अर्थ सरल हिंदी में लिख दिया गया है। यह ग्रंथ प्रत्येक काव्य-वासना-पूर्ण सरस-हृदय हिंदी-नाटकों के प्रेमियों, एवं रत्नावली-पाठी विद्यार्थियों को अवश्य देखना चाहिए। पृष्ठ-संख्या १०४; मूल्य ।-)॥

अनिरुद्ध-परिणय-कथा

[फर्रुखाबाद-निवासी ठुमरी-बनायक, सुप्रसिद्ध कवि ललनपियाजी-कृत]

इसमें शिवजी का बाणासुर को अमर होने के लिये वरदान देना, स्वप्न में ऊषा का अनिरुद्ध को देखना, चित्रलेखा द्वारा अनिरुद्ध को पलँग-सहित उठवा मँगाना, बाणासुर और अनिरुद्ध का युद्ध, अंत में भगवान् कृष्ण का आना और बाणासुर को पराजित कर अनिरुद्ध का ऊषा के साथ विवाह होना इत्यादि विषय, बड़ी उत्तमता से, अनेक प्रकार के छंदों में, वर्णन किए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ७६; मूल्य =)॥

मयंकमंजरी नाटक

[संपादक—श्रीकिशोरीलालजी गोस्वामी]

शृंगार-रस से भरा हुआ यह अपूर्व नाटक है। इसमें वीरेंद्र का सच्चा प्रेम, मयंकमंजरी का अपने सतीत्व-धर्म की रक्षा करना, दुर्जन बंधु को अपने पाप का फल मिलना, आनंदवल्लभ और अनुरागवल्लभ-जैसे सच्चे मित्रों का होना और अंत में वीरेंद्र से मयंक का, आनंदवल्लभ से कामिनी का और अनुरागवल्लभ से सौदामिनी का विवाह होना आदि अनेक मनोहर विषय, नाटक-रूप में, दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या १६०; मूल्य ।-)

अभिज्ञानशकुंतला नाटक

[संस्कृत के विख्यात महाकवि कालिदास-कृत मूल और पं० लक्ष्मीनारायणजी-कृत भाषा-टीका-सहित]

कवि-शिरोमणि कालिदास-कृत नाटकों में 'शकुंतला नाटक' अति प्रसिद्ध है। इसमें कण्व ऋषि के आश्रम में राजा दुष्यंत का शकुंतला से भेंट होना, शकुंतला का काम-पीड़ा से आतुर हो, गांधर्व-विवाह करना, दुर्वासा ऋषि का शाप, ऋषिजी की आज्ञानुसार शकुंतला का हस्तिनापुर को बिदा होना, राजा का शाप-वश शकुंतला को न पहचानना, धीवर द्वारा अँगूठी मिलने पर शकुंतला के वियोग में राजा का व्याकुल होना और फिर पुत्र-सहित शकुंतला से संयोग होना आदि विषय बड़ी उत्तमता से नाटक-रूप में वर्णन किए गए हैं। नाटक पढ़ने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या २६२; मूल्य ॥)

प्रबोधचंद्रोदय नाटक

[महात्मा आत्मरामजी-कृत]

संस्कृत-साहित्य में यह एक प्रसिद्ध नाटक है, किंतु सर्व-साधारण इस ज्ञान से भरे हुए नाटक को सहज ही में समझ सकें, इसीलिये यह हिंदी-भाषा में छापकर प्रकाशित किया गया है। इसमें महाविवेक और महामोह के द्वंद्व-युद्ध में महाविवेक के जय पाने का वर्णन किया गया है। वेदांत-विषय में रुचि रखनेवालों को यह नाटक अवश्य पढ़ना चाहिए। पृष्ठ-संख्या १२८; मूल्य ।)

हनुमान्नाटक भाषा

[रतलाम-निवासी महंत श्रीरामाजी चतुरदास-कृत]

इसमें श्रीभगवान् रामचंद्रजी का चरित, जन्म से लेकर राजगद्दी-पर्यंत, नाटक-रूप में, अति मनोहर दोहे, चौपाई और सवैया आदि छंदों में, वर्णन किया गया है। भगवद्भक्तों को यह नाटक अवश्य देखना चाहिए। पृष्ठ-संख्या १३८; मूल्य ।-)

भ्रमजाल नाटक

[लेखक—इलाहाबाद, हाईकोर्ट के वकील बा० रत्नचंदजी]

यह नाटक शेक्सपियर की कॉमेडी ऑव् एरर्स के आधार पर लिखा गया है। इसमें देवदत्त-नामक साहूकार के एक साथ एक ही शक्ल के दो लड़कों का पैदा होना और संयोग-वश उन दोनों का एक ही नाम रक्खा जाना, घटना-क्रम से एक दूसरे का वियोग होना, उनके उनकी स्त्रियों को न पहचानकर भ्रम में पड़ना आदि अनेक विचित्र विषयों का दृश्य दिखाया गया है। नाटक अपूर्व घटनाओं से भरा हुआ पढ़ने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या १०६; मूल्य ॥)

अन्यान्य पुस्तकों के लिये डाक-व्यय के हेतु -) का टिकट भेजकर बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगा लीजिए।

मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ।

वैद्यक के सुप्रसिद्ध ग्रंथ

भाव-प्रकाश

(तीनों खंड)

भावमिश्र द्वारा संगृहीत और कैनिंग कॉलेज के भूतपूर्व संस्कृत-प्रोफ़ेसर पं० कालीचरणजी-कृत भाषा-टीका-सहित। यह आर्ष-वैद्यक-ग्रंथों का पूर्ण संग्रह और परम प्रतिष्ठित ग्रंथ है। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अति उत्तम। बड़ी साँची के १२२८ पृष्ठोंवाली पुस्तक का मूल्य केवल ७॥)

राम-विनोद भाषा

[पं० सुरेंद्रनाथ तिवारी द्वारा संपादित]

श्रीपद्मरंग-शिष्य रामचंद्रजी-रचित। इसमें रोगी की परीक्षा, शुभाशुभ शकुन, साध्यासाध्य-लक्षण, ज्वर आदि समस्त रोगों की उत्पत्ति, लक्षण और औषध तथा चूर्ण, तैल, अंजन, अवलेह, क्वाथ, गोली, यंत्र-मंत्र और गंडा आदि अनेक विषय वर्णित हैं। इस विषय की इससे सरल और उपयोगी पुस्तक आपको दूसरी न मिलेगी। पृष्ठ-संख्या २२४; मूल्य केवल १)

हंसराज-निदान

कविवर हंसराजजी-रचित और वैद्यक-ग्रंथों के सुप्रसिद्ध टीकाकार पं० दत्तरामजी माथुर-कृत भाषा-टीका-सहित। इसमें ज्वर, संग्रहणी, बवासीर, भगंदर, राजयक्ष्मा, तृष्णा और मूर्च्छा आदि अनेक रोगों के निदान और लक्षण, नाड़ी-परीक्षा आदि अनेक विषय सविस्तार वर्णित हैं। पृष्ठ-संख्या १६०; मूल्य ॥)

निघंटु-रत्नाकर भाषा

[संस्कृत-निघंटु-रत्नाकर का हिंदी-अनुवाद]

इसमें ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, अजीर्ण, कास, श्वास, प्रमेह, कुष्ठ आदि रोगों के लक्षण और औषधियाँ दी गई हैं। अतएव वैद्यों को इसे अवश्य ख़रीदना चाहिए। पृष्ठ-संख्या १३४०; मू० ६॥)

गद-तिमिर-भास्कर

[पं० गौरीशंकर शर्मा राजवैद्य-रचित]

चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि वैद्यक-ग्रंथों तथा अनेक डॉक्टरी और यूनानी-ग्रंथों को मथकर इस महाग्रंथ की रचना हुई है। इसमें मनुष्य-शरीर के समस्त रोगों की उत्पत्ति, लक्षण, यत्न और चिकित्सा-संबंधी समस्त ज्ञातव्य बातों का अति विस्तार-पूर्वक वर्णन है। नवीन शैली से आज तक जितने वैद्यक-ग्रंथ छपे हैं, उन सबसे यह श्रेष्ठ है और इस एक ही ग्रंथ के अनुशीलन से मनुष्य पूरा वैद्य बन जाता है। अतएव प्रत्येक वैद्यों और गृहस्थों को अवश्य संग्रह करना चाहिए। काग़ज़ बढ़िया; आकार बड़ा; पृष्ठ-संख्या ११६६; मूल्य ६)

औषध-पीयूष

[लाला ज्वालाप्रसादजी-रचित]

इसमें वैद्य-परीक्षा, दूत-परीक्षा आदि का निर्णय करके संपूर्ण रोगों के लक्षण और उनकी औषधियाँ तथा अभ्रक आदि धातुओं की मारण-शोधन-विधि और समस्त औषधियों के अर्क निकालने की विधियाँ सविस्तार वर्णित हैं। अतएव यह ग्रंथ प्रत्येक वैद्यों के लिये उपयोगी है। पृष्ठ-संख्या ३१६; मूल्य १॥)

बृहत्पाकावली

[वैद्याचार्य पं० श्यामसुंदर शुक्ल द्वारा संपादित]

मूल श्लोक और भाषा-टीका-सहित। राजवैद्य पं० गंगाप्रसादजी द्वारा संगृहीत। इसमें सुपारीपाक, विजया-पाक, सौभाग्यसुंठी-पाक, गोक्षुर-पाक, सालिम-पाक, आम्र-पाक, मूसली-पाक और जातीफल आदि अनेक पाकों के बनाने की विधि का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। कौन-सा पाक किस रोग में खाया जाता है, यह भी इसमें अच्छी तरह बतलाया गया है। यह पुस्तक प्रत्येक गृहस्थ को पढ़ना चाहिए। पृष्ठ-संख्या ९८; मूल्य ॥)

अन्यान्य पुस्तकों के लिये -) का टिकट भेजकर बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए!

मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ।

सहस्र-रजनी-चरित्र (अलिफ़लैला)

यह अपूर्व औपन्यासिक ग्रंथ पहले अरबी-भाषा में था। अरबी से फ़ारसी, फ़ारसी से उर्दू और उर्दू से हिंदी में अनुवादित हुआ। इसका प्लाट यों बाँधा गया है—पारस्य-देश के बादशाह शहरयार को, अनेक कारणों से, स्त्री-जाति के सतीत्व पर अविश्वास हो गया। अतः वह प्रतिदिन एक कुमारी से ब्याह करता और रात-भर उसके साथ रहकर प्रभात में उसे क़त्ल करा देता। इस तरह सहस्रों सुंदरियों की अकारण हत्या हो गई। बादशाह को इस व्यर्थ रमणी-वध से विरत करने के लिये उसके महामंत्री की परम रूप-राशि और बुद्धिमती कन्या शहरज़ाद ने उसके साथ अपना ब्याह किया और पहली रात उसके साथ वास करके, रजनी के अवसान के कुछ पूर्व, एक ऐसी कहानी सुनाना आरंभ कर दिया कि सवेरा होते-होते उसमें से एक दूसरी कथा आरंभ हो गई। बादशाह ने पूछा—"उसका परिणाम क्या हुआ ?" शहरज़ाद ने कहा—"प्राण-दान किए जायँ, तो कल फिर बताऊँगी।" बादशाह ने एक दिन के लिये प्राण-दान किए। दूसरी रात उसने फिर वैसा ही किया। इसी प्रकार सहस्र रातें बीतीं और अंतिम रात्रि में उसने बादशाह के मन का कुविचार दूर कर दिया। इन सहस्र कथाओं में अलाउद्दीन का चिराग़, सिंदबाद जहाज़ी और अलीबाबा चालीस चोर आदि कहानियाँ तो बड़ी ही मनोरंजक हैं। यह ग्रंथ ऐसा प्रसिद्ध है कि इसके अँगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन आदि संसार की लगभग समस्त बड़ी-बड़ी भाषाओं में कई-कई अनुवाद हो गए हैं। हमारे यंत्रालय में, विशुद्ध हिंदी में, इसका सचित्र संस्करण छपा है। इसमें २४ अति सुंदर लीथो-चित्र हैं। काग़ज़ बढ़िया ; टाइप मोटा ; आकार बड़ा ; पृष्ठ-संख्या ६१० ; मूल्य ३।) मात्र।

विचित्र चरित्र

यह एक अपूर्व पुस्तक है। जो लोग ऐयारी और तिलिस्मी उपन्यासों को पसंद करते हों, उन्हें इस विचित्र ग्रंथ को अवश्य पढ़ना चाहिए। इसमें शत्रुंजय-नामक वीर राजा का वर्णन है, जिसने सहस्रों वर्ष मायावी म्लेच्छों से युद्ध करके उनका विनाश किया। इस ग्रंथ में माया से रचे हुए सहस्रों देश, वन, बाग़, उपवन, वाटिका, दुर्ग, प्रासाद, मंदिर, नदी, ग्राम और सभाओं की विचित्र सुंदरता ; माया-कृत लाखों नदी, सरोवर और समुद्रों की शोभा ; सहस्रों मायावी म्लेच्छ-म्लेच्छियों के अद्भुत स्वरूप ; नाना प्रकार के मायावी अस्त्र-शस्त्र, घोर युद्ध, मार-काट, सहस्रों सुंदर और सुंदरियों की नख-शिख-शोभा और श्रृंगार तथा उनके परस्पर मोहित और कामासक्त होने का सरस वर्णन; करोड़ों प्रपंच, छल-रचना, बहुरूप-धारण, विरह-वेदना आदि का विचित्र वर्णन है, जिसे पढ़कर आप दंग रह जायँगे, दाँतों-तले अँगुली दबाएँगे ; बीच-बीच में अनेकों कवित्त आदि के उद्धृत कर देने से पुस्तक और भी मनोरंजक हो गई है। आकार बड़ा; पृष्ठ-संख्या १४६४ ; मूल्य केवल ३)

अद्भुत सृष्टि-चरित्र

[फ़ारसी "अजायबुलमख़लूक़ात" का सचित्र हिंदी-अनुवाद]

यह ग्रंथ सचमुच एक अजायबघर या अद्भुतालय है। इसमें आ[illegible]शीय ग्रहों तथा इस पृथ्वी पर जितनी थलचर, जलचर, नभचर, वृक्ष, कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि सृष्टि है, इसका मनोरंजक वर्णन है; और विशेषता यह कि सबके सुंदर लीथो-चित्र भी दिए हुए हैं। इन चित्रों की संख्या ४६३ है। इसके द्वारा आप परमेश्वर की विचित्र रचना का हाल जानकर आश्चर्य में डूब जायँगे। आकार बड़ा ; पृष्ठ-संख्या ७२८; मूल्य केवल ३।)

फ़िसाना अजायब

[लखनऊ-निवासी मिर्ज़ा रज्जबअली सरूर-लिखित अति मनोहर कहानी का विशुद्ध हिंदी-अनुवाद]

इसमें शाहज़ादा जानआलम का एक तोते के मुख से शाहज़ादी अंजुमनआरा के रूप की प्रशंसा सुनकर उस पर मोहित होने और अनेक विपत्तियों को झेलकर उसे प्राप्त करने का अत्यंत मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ-संख्या २१८ ; मूल्य केवल ।-)॥

हमारे बुकडिपो की अन्य पुस्तकों के लिये -) का टिकट भेजकर बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए।

मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ।

हिंदूधर्मदर्पणम्

इस पुस्तक में युक्तियों और प्रमाणों के साथ हिंदू शब्द और हिंदू धर्म के सिद्धांतों और संस्कारों, रीति और रिवाजों, मेले और त्योहारों, तीर्थों और व्रतों, पुराणों और इतिहासों की व्याख्या की है। पुराणों की अनेक विचित्र और आश्चर्यकारक कथाओं को—मत्स्य, कूर्म और नरसिंह आदि विरूप और विलक्षण अवतारों का होना, अगस्त्य मुनि का समुद्र का समग्र जल पान करके उसको शुष्क कर देना, जल-तूफ़ान का आना और मनु महाराज की नाव को मत्स्य भगवान् का रक्षा करना—मानने योग्य और सायंस (Science) के अनुसार संभव सिद्ध किया गया है। मनुजी का नाम ही बिगाड़कर नूह बन जाना, जल-ओघ में मार्कंडेय ऋषि को गयाजी में अक्षयवट के पत्र पर एक दिव्य बालक का दर्शन होना, आर्य लोग भारतवासी हैं कहीं बाहर से नहीं आए, प्राचीन काल में फ़ारस, यवन और मिश्र देशों में हिंदुओं का राज्य, शुद्धि, विधवा-विवाह, तलाक के रिवाज के अवगुण, हिंदू एक ब्रह्म के उपासक हैं, ईश्वर की प्राप्ति का उपाय, यज्ञ होम श्राद्ध का लाभ, प्रेतनदि और प्रेतलोक कहाँ हैं, शिखा-सूत्र और संध्या की मीमांसा, हिंदुओं का अधःपतन और उद्धार इत्यादि अनेक विषय हैं। इस देश के पंडितों और समाचारपत्रों ने अत्यंत प्रशंसा की है। मूल्य ३) डाक-ख़र्च ज़िम्मे ख़रीदार। नारीधर्मदर्पणम् ॥)

समालोचना

लखिए माधुरी क्या लिखती है:—प्रथम भाग के आरंभ में धर्म के लक्षण, सदाचार, शौचाचार आदि का, × × × आगे कच्ची-पक्की रसोई का भेद प्रचालित होने के कारण आदि का विवेचन किया गया है। लेखक के मत से खान-पान की छुवाछूत कोई वैर-विरोध के कारण नहीं। एक वैद्यक वसूल के कारण होती है। × × × आगे चलकर मूर्ति-पूजा-विषयक अध्याय श्रुति और स्मृति के प्रमाणों तथा युक्ति से, वास्तव में, बहुत अच्छी तरह लिखा गया है। पंचांग का क्या अर्थ है, वे कितने प्रकार के हैं, और राशिचक्र, नवग्रह, मलमास तथा त्योहारों का समीचीन विवेचन तथा श्रुति और निरुक्त से भी बहुत-सी बातों के प्रमाण दिए गए हैं। दूसरे भाग में गणेश तथा ओम् शब्द की व्याख्या × × × भारत का एकदेशत्व-प्रतिपादन बड़ी मनोहर रीति से किया गया है। पौराणिक अनेक कथाओं का नवीन ढंग से सामंजस्य दिखाने की शैली की विलक्षणता प्रतीत होती है। सार यह कि सनातन धर्म की छोटी-से छोटी बात को युक्ति-सम्मत दिखाने का प्रयास किया गया है। अनेक स्थलों पर लेखक ने अपनी तीव्र गवेषणा का अच्छा परिचय दिया है। पुस्तक महत्त्व की है और विषय की गंभीरता के कारण सर्वथा संग्रहणीय है।

पता—पं० मूलराज नागर, बाग भैया रामकुमार, स्यालकोट शहर (पंजाब)